सूर्यरहस्य - प्रथम अधिकार

॥अथ चैत्राधिकारः॥
मगं प्रसूनमिश्राख्यं सुप्तं मार्त्तण्डभैरवम्।
स्वप्ने निदर्शयामास रहस्यं कश्यपात्मजः॥०१॥
सोऽब्रवीदग्रदिवसे निग्रहं मे निबोधय।
स्वप्ने दृष्टं रहस्यं विस्मृतमस्ति मयाधुना॥०२॥

सोये हुए, प्रसूनमिश्र के नाम से प्रसिद्ध मगविप्र मार्तण्डभैरव को कश्यपपुत्र भगवान् सूर्य ने अपने रहस्य का स्वप्न में दर्शन कराया। उन्होंने अगले दिन निग्रहाचार्य को कहा कि स्वप्न में जो रहस्य मैंने देखा, उसे मैं भूल गया हूँ, आप उसे मुझे बतायें।

रहस्यं नैव जानेऽहमाह निग्रहदेशिकः।
विज्ञातुं यामि देवस्थानस्थसूर्यालयं प्रति॥०३॥
इत्युक्त्वा निग्रहाचार्यो देवं गत्वा समुत्सुकः।
स तपस्तप्तुमारेभे भास्कराह्लादहेतवे॥०४॥

तब गुरु निग्रहाचार्य ने कहा कि मैं भी उस रहस्य को नहीं जानता हूँ किन्तु देव नामक स्थान में स्थित सूर्यमन्दिर में उसे जानने की इच्छा से जाता हूँ। इस प्रकार कहकर उत्सुक निग्रहाचार्य ने देव जाकर सूर्यदेव की प्रसन्नता हेतु तपस्या करना आरम्भ किया।

स जजाप महावाक्यं सौरञ्चैव चतुष्पदाम्।
आथर्वणीञ्च सूर्यस्य प्राणायामपरायणः॥०५॥
ततश्चाविरभूद्देवो निग्रहस्य कलेवरे।
स मूर्च्छितश्च कृष्णोऽभूत्प्रदग्धः सूर्यतेजसा॥०६॥

वे प्राणायामपूर्वक सूर्यसम्बन्धी महावाक्य, चतुष्पदा (गायत्री) एवं सूर्यसम्बन्धी आथर्वण मन्त्रों का जप करने लगे। तब निग्रहाचार्य के शरीर में सूर्यदेव ने अपना आवेश किया, जिसके फलस्वरूप उनका शरीर काला पड़ गया एवं वे सूर्य के तेज से दग्ध होकर मूर्च्छित हो गये।

तं त्यक्त्वा त्वं तपोवृद्धिं कुरुष्वेति दिवाकरः।
उवाच विप्ररूपेण निग्रहश्च निवर्तितः॥०७॥
किञ्चित्कालान्तरेऽतीते स पुनर्देवमागमत्।
सूर्यमभ्यर्च्य पादाम्बुं पीत्वारेभे जपं पुनः॥०८॥

तब उन्हें छोड़कर सूर्यदेव ने ब्राह्मण का रूप धारण करके कहा कि तुम अभी अपनी तपस्या की और वृद्धि करो। इसके बाद निग्रहाचार्य लौट गये। कुछ समय व्यतीत होने पर वे देव में लौटे एवं सूर्यदेव की पूजा करके, उनका चरणोदक पीकर पुनः जप प्रारम्भ किया।

युगवत्सरसङ्ख्यानि महावाक्यानि निग्रहः।
जजाप तुल्यमानाञ्च स गायत्रीं चतुष्पदाम्॥०९॥
हृदि तस्य तदा देवो भास्करोऽनिलसंस्थितः।
उवाच ब्रूहि मे विप्र किं तेऽभिलषितं वद॥१०॥

बारह सहस्र की संख्या में निग्रहाचार्य ने महावाक्य का एवं इतनी ही संख्या में चतुष्पदा गायत्री का जप किया। तब उनके हृदय में वायुतत्व का आश्रय लेकर सूर्यदेव ने कहा कि हे ब्राह्मण ! तुम्हारी जो इच्छा हो, वह मुझसे कहो।

निग्रह उवाच
ॐ नमोऽस्तु ते परमपित्रे भास्कराय प्रकटनारायणाय पद्मपाणये कालचक्रप्रणेत्रे सर्वभूतान्तरात्मन आदित्याय सवित्रे॥११॥ ॐ

नमोऽस्तु ते याज्ञवल्क्याभिलषितदात्रे भोजकार्चिताय साम्बवरप्रदायाकाशगामिन आरोग्यदाय॥१२॥ ॐ नमोऽस्तु तेऽमिततेजसे द्वादशात्मकायादितिसम्भवायैकचक्ररथगामिने मन्देहशत्रवे हिरण्मयाय॥१३॥ ॐ नमोऽस्तु ते महायोगेश्वराय ग्रहेश्वराय जगदीश्वरायान्धकारनिर्मूलनाय लोकदर्शनाय खगाय परमात्मने लोकसाक्षिणे॥१४॥ ॐ नमोऽस्तु ते कर्मफलदात्रे व्योमस्थितायानिलस्थितायानलस्थितायाम्बुस्थितायाचलास्थितायादिपुरुषाय॥१५॥ ॐ नमोऽस्तु ते महामण्डलाय पवित्राय पवित्रकर्त्रे आञ्जनेयशिक्षकाय सैंहिकेयछलभेदनाय पावकाय शुचिष्मते॥१६॥ ॐ नमोऽस्तु ते त्रिदशार्चिताय दुष्प्रेक्ष्यायास्थिराय त्रयीमयायामोघाय कल्पान्तकाय भानवेऽलक्ष्यगतये॥१७॥

निग्रहाचार्य ने कहा - ओङ्कारस्वरूपी ब्रह्म के लिए नमस्कार है। परमपिता, प्रकाश करने वाले, प्रकट नारायण, हाथों में पद्म धारण करने वाले, कालचक्र का प्रणयन करने वाले, सभी प्राणियों के हृदय में स्थित, आदित्यसंज्ञक सविता के लिए नमस्कार है। ओङ्कारस्वरूपी ब्रह्म के लिए नमस्कार है। याज्ञवल्क्य मुनि को उनका अभीष्ट देने वाले, भोजकों के द्वारा पूजित, साम्ब को वरदान प्रदान करने वाले, आकाश में गमन करने वाले, आरोग्य प्रदान करने वाले के लिए नमस्कार है। ओङ्कारस्वरूपी ब्रह्म के लिए नमस्कार है। जिसके तेज का परिमाण नहीं है, द्वादश स्वरूपों को धारण करने वाले, अदिति के पुत्र, एक चक्र वाले रथ से चलने वाले, मन्देह राक्षसों के शत्रु, स्वर्णमय सूर्यदेव के लिए नमस्कार है। ओङ्कारस्वरूपी ब्रह्म के लिए नमस्कार है। महान् योगियों के ईश्वर, ग्रहों के ईश्वर, संसार के ईश्वर, अन्धकार का नाश करने वाले, लोकों को दृष्टि देने वाले, गगनगामी, पूरे विश्व के साक्षी परमात्मा के लिए नमस्कार है। ओङ्कारस्वरूपी ब्रह्म के लिए नमस्कार है। कर्म का फल प्रदान करने वाले, आकाश में स्थित, वायु में स्थित, अग्नि में स्थित, जल में स्थित, पृथ्वी में स्थित आदिपुरुष के लिए नमस्कार है। ओङ्कारस्वरूपी ब्रह्म के लिए नमस्कार है। विस्तृत मण्डलवाले, पवित्र, पवित्र करने वाले, अञ्जनापुत्र हनुमान् को शिक्षा प्रदान करने वाले, सिंहिकापुत्र राहु के छल का भेदन करने वाले, पावक शुचिष्मान् के लिए नमस्कार है। ओङ्कारस्वरूपी ब्रह्म के लिए नमस्कार है। देवताओं के द्वारा पूजित, कठिनाई से देखे जाने वाले, गतिशील, तीनों वेदों से युक्त, अमोघ, कल्प का अन्त करने वाले अलक्ष्यगति भानु के लिए नमस्कार है।

मयाय दानवेन्द्राय यथा त्वं कृपयान्वितः।
प्रददौ सूर्यसिद्धान्तं स्वरहस्यञ्च देहि मे॥१८॥
तव प्रसाददीप्तेभ्यः किञ्चिन्मन्ये न दुर्लभम्।
एतच्छ्रुत्वा तदादित्य उवाच प्रति निग्रहम्॥१९॥

जिस प्रकार दानवराज मय को आपने कृपा से युक्त होकर सूर्यसिद्धान्त प्रदान किया था, उसी प्रकार मुझे अपना रहस्य प्रदान करें। आपकी कृपा से जो लोग आलोकित हैं, उनके लिए मैं कुछ भी दुर्लभ नहीं मानता। इस प्रकार सुनकर सूर्यदेव ने निग्रहाचार्य से कहा।

सूर्य उवाच
अजोऽहं वाङ्मनोबुद्धेरतीतश्च पुरातनः।
मय्यैव जायते सर्वं मय्यैव प्रविलीयते॥२०॥
अहं ब्रह्मा मुकुन्दश्च शङ्करश्च शतक्रतुः।
वह्निरापस्तथा व्योमो मातरिश्वा च मेदिनी॥२१॥

सूर्यदेव ने कहा - मैं अजन्मा हूँ। वाणी, मन और बुद्धि से परे हूँ, सबसे प्राचीन हूँ। मुझमें ही सभी उत्पन्न होते हैं और सभी मुझमें ही लीन हो जाते हैं। मैं ब्रह्मा हूँ, मैं ही पृथ्वी को आनन्दित करने वाला विष्णु, कल्याण करने वाला शिव एवं सौ यज्ञ करने वाला इन्द्र हूँ। मैं ही अग्नि, जल, आकाश, वायु एवं पृथ्वी हूँ।

व्याप्तोऽपि सन् समस्तेषु भूतग्रामेषु निर्गुणः।
तनोमि सगुणं रूपं स्वेच्छया योगमायया॥२२॥
पुरा दाक्षायणी तेपे मां सुतेच्छासमन्विता।
तस्यास्तपस्यया तुष्टोऽहं तथास्त्वब्रवं तदा॥२३॥

सभी प्राणियों में निर्गुण रूप से व्याप्त होते हुए भी मैं अपनी इच्छा एवं योगमाया से सगुण रूप का विस्तार करता हूँ। पूर्वकाल में मुझे पुत्ररूप से प्राप्त करने की इच्छा से दक्ष की पुत्री (अदिति) ने तपस्या की थी, जिससे सन्तुष्ट होकर मैंने 'ऐसा ही हो' कहा था।

मम प्रेरणया ब्रह्मा ब्रह्माण्डाद्यत्परं तु तत्।
तेजः प्रवेशयामासादितेर्गर्भेऽण्डरूपिणम्॥२४॥
वर्द्धमाने तु तद्गर्भे महत्तापो व्यजायत।
तत्प्रदाहेन निस्तेजाः सर्वे देवाः प्रदुद्रुवुः॥२५॥

मेरी प्रेरणा से ब्रह्मदेव ने ब्रह्माण्ड के बाहर का (अप्राकृतिक) तेज अण्डे के रूप में अदिति के गर्भ में प्रविष्ट करा दिया। उस बढ़ते हुए गर्भ में महान् ताप का सृजन हुआ जिसके दाह से निस्तेज होकर सभी देवता भागने लगे।

उचुश्चतुर्मुखं गत्वा देवा दग्धकलेवराः।
नष्टप्राया वयं सर्वे त्वमस्मान् त्रातुमर्हसि॥२६॥
त्वया सृष्टानि सर्वाणि स्थावराणि चराणि च।
यास्यन्ति विलयं सर्वेऽदितेर्गर्भस्य तेजसा॥२७॥

चतुर्मुख ब्रह्मदेव के पास जाकर उन दग्ध शरीर वाले देवताओं ने कहा कि हम सभी नष्ट हो रहे लोगों की रक्षा करने में आप समर्थ हैं अन्यथा आपके द्वारा यह जो चराचर संसार निर्मित है, वह सब कुछ अदिति के गर्भ के तेज से नष्ट हो जायेगा।

देवानां भयग्रस्तानां वचः श्रुत्वा पितामहः।
ताडयामास गर्भाण्डं तेजःसंहरणेच्छया॥२८॥
ब्रह्मणश्च प्रहारेणाण्डं बभूव द्विखण्डितम्।
एकैके च बलं तेजो विभक्तं ब्रह्मणा कृते॥२९॥

तब भयभीत देवताओं के वचन को सुनकर ब्रह्मदेव ने गर्भस्थित उस अण्डे के तेज को हरण करने की इच्छा से उसपर प्रहार किया। ब्रह्मा के प्रहार से वह अण्डा दो भागों में खण्डित हो गया। फिर ब्रह्मदेव ने एक अण्डे में बलशक्ति और दूसरे में तेजःशक्ति को विभाजित कर दिया, उसके बाद ...

द्वौ भ्रूणौ तत्र जज्ञाते निष्प्राणौ निष्क्रियात्मकौ।
तेजःप्रधानमुद्यम्यादितये प्रददौ विभुः॥३०॥
अन्यमिरावतीगर्भेऽक्षिपत् स जननेच्छया।
तया जाताश्च चत्वारो दिग्गजेन्द्रा महाबलाः॥३१॥

क्रिया एवं प्राण से हीन वहाँ दो भ्रूण बन गये। जो भ्रूण तेजःप्रधान था, उसे ब्रह्मदेव ने अदिति को दे दिया। दूसरे (बलप्रधान) भ्रूण को उन्होंने उत्पन्न करने की इच्छा से इरावती के गर्भ में प्रक्षेपित किया। उस इरावती से चार महाबलशाली दिग्गज उत्पन्न हुए।

ऐरावतोऽथ कुमुदश्चाञ्जनो वामनस्तथा।
क्रोडेऽदितेश्च यो खण्डोऽण्डस्य निष्प्राणवानिव॥३२॥
मार्त्तण्ड आदित्य इति कथ्यते सोऽहमेव च।
तस्मान्निरालोकमिदं मां विना सम्भवेज्जगत्॥३३॥

उन चार दिग्गजों के नाम हैं - ऐरावत, अञ्जन, कुमुद एवं वामन। अण्डे का जो निष्प्राण (मृत) खण्ड अदिति की गोद में था, उसी प्रकाशवान् पिण्ड को मार्त्तण्ड एवं आदित्य कहते हैं, वही मैं हूँ। अतएव मेरे बिना यह विश्व प्रकाशहीन हो जायेगा।

स्थित्वा व्योम्नि निरालस्यो भूत्वा विश्वं प्रकाशयन्।
नित्यं चराम्यहं वत्स लोकानुग्रहकाङ्क्षया॥३४॥
तत्र सन्तानका लोका यत्र खे मम संस्थितिः।
नातिनीचञ्च नात्यूर्द्ध्वं मम लोकः प्रतिष्ठितः॥३५॥

हे वत्स ! मैं आलस्यरहित होकर आकाश में स्थित हो विश्व को प्रकाशित करता हुआ, विश्व के ऊपर कृपा करने की इच्छा से नित्य भ्रमण करता हूँ। जहाँ आकाश में मेरी स्थिति है, वहीं सन्तानक नामक लोक हैं। मेरा लोक न तो बहुत अधिक ऊपर है और न बहुत अधिक नीचे।

मम योनिर्निमेषादिः सङ्ख्या वै चक्षुषी मम।
मूर्तिर्मम दिवारात्री वत्सरश्च क्रिया तथा॥३६॥
भ्राम्यावोऽहं तथा सोम आकाशे यावदेव हि।
प्रकाशैस्तु भवान्विद्धि सप्तद्वीपवतीं महीम्॥३७॥

निमेष आदि मेरी योनि (जात्यर्थक) हैं, इनकी संख्या मेरे दोनों नेत्र हैं। दिन और रात मेरी मूर्ति हैं तथा वर्ष मेरी क्रिया है। मैं और चन्द्रमा आकाश में अपने प्रकाश के माध्यम से जितने दूर परिभ्रमण करते हैं, उतनी दूर ही आप सात द्वीपों वाली पृथ्वी को जानें।

सप्तानाञ्चैव द्वीपानां सागराणां तु विस्तरः।
तत्साम्यपरिमाणेन दिवश्चापि प्रकीर्तितः॥३८॥
स्वाधिकारानुसारेण महीं भुञ्जन्ति जन्तवः।
सिद्धानामप्यगम्यैषा सर्वद्वीपवती धरा॥३९॥

सात द्वीप और सात सागरों का जो विस्तार है, उसके के समान परिमाण वाला नभोमण्डल भी है। (सम्भवतः यहां भगवान् ने क्रान्तिवृत्त का सङ्केत किया है)। सभी प्राणी अपने अपने अधिकार के अनुसार इस पृथ्वी का उपभोग करते हैं। सभी द्वीपों वाली इस पूरी पृथ्वी में तो सिद्धजन भी नहीं जा सकते।

पृथ्व्यम्बुवह्निवायूनामाकाशस्य स्वयम्भुवा।
मर्यादा स्थापिता पूर्वे व्यवहारविवक्षया॥४०॥
अवामि त्रीनिमाँल्लोकानहं यस्मात्परिभ्रमन्।
प्रकाशार्थञ्च ह्यवनाद्रविर्लोके तु नामधृक्॥४१॥

पूर्वकाल में ब्रह्माजी के द्वारा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश की मर्यादा व्यवहार की दृष्टि से स्थापित कर दी गयी थी। (किस तत्त्व के कितने भाग तक किस स्तर के जीव की गति हो सकती है, यह निश्चित है)। मैं तीनों लोकों को प्रकाशित करने के लिए भ्रमण करता रहता हूँ, इसीलिए (अव् धातु के अनुसार) मेरा नाम 'रवि' है।

नवयोजनसाहस्रेणालोकेऽहं वसुन्धराम्।
मण्डलेन तु दीर्घेणात्रेयो द्विगुणितेन वै॥४२॥
चतुर्दिक्षु च लोकेशाः स्थिता इन्द्रादयस्तथा।
तत ऊर्ध्वं स्थितो भूत्वाऽलोकयामि चराचरम्॥४३॥

नौ सहस्र योजन के मण्डल के द्वारा मैं पृथ्वी को देखता हूँ तथा अत्रि के पुत्र चन्द्रमा इससे दुगुने मण्डल के माध्यम से देखते हैं। (तात्पर्य है कि सूर्य के सम्पूर्ण रश्मिराशि में नौ सहस्र योजन की रश्मि पृथ्वी पर पड़ती है और इससे दुगुनी चन्द्रमा की, क्योंकि अपेक्षाकृत छोटी वस्तु भी निकट होने से बड़ी दिखती है तथा चन्द्रमा सूर्य की अपेक्षा पृथ्वी से सन्निकट हैं)। चारों दिशाओं में इन्द्र आदि लोकपाल स्थित हैं, उनके लोकों से ऊपर स्थित होकर मैं चराचर जगत् को प्रकाशित करता हूँ।

इन्द्रलोकोपरि यदा खे रथः संस्थितो मम।
तदा दक्षिणदेशानामुदयेति निगद्यते॥४४॥
यमलोकोपरि यदा खे रथः संस्थितो मम।
तदा पश्चिमदेशानामुदयेति निगद्यते॥४५॥

जब मेरा रथ इन्द्रलोक के ऊपर होता है, तब दक्षिण दिशा में स्थित देश के लोगों के लिए सूर्योदय होता है, ऐसा कहा जाता है। जब मेरा रथ यमलोक के ऊपर होता है, तब पश्चिम दिशा में स्थित देश के लोगों के लिए सूर्योदय होता है, ऐसा कहा

जाता है।

जलेश्वरस्य लोकोर्द्ध्वं यदा मे संस्थितो रथः।
तदोदयेत्युत्तरस्थदेशानां सम्भविष्यति॥४६॥
यक्षेश्वरस्य लोकोर्द्ध्वं यदा मे संस्थितो रथः।
तदा वै पूर्वदेशानामुदयेति निगद्यते॥४७॥

जब मेरा रथ जल के स्वामी वरुण के लोक के ऊपर होता है, तब उत्तर दिशा में स्थित देश के लोगों के लिए सूर्योदय होगा। जब मेरा रथ यक्षों के स्वामी कुबेर के लोक के ऊपर होता है तो पूर्व दिशा में स्थित देश के लोगों के लिए सूर्योदय होता है, ऐसा कहा जाता है।

(तात्पर्य है कि जिस लोक के ऊपर सूर्यदेव का रथ है, उस लोक के लिए मध्याह्न है, उसके दाहिने लोक के लिए सूर्योदय और बायें लोक के लिए सूर्यास्त है। उदाहरण, सूर्यदेव का रथ पूर्वदिशा में स्थित इन्द्रलोक के ऊपर जब होगा, तो उस समय पूर्वदिशा के लोगों के लिये मध्याह्न, दक्षिण दिशा के लोगों के लिए सूर्योदय तथा उत्तर दिशा के लोगों के लिए सूर्यास्त होगा। इसी प्रकार शेष के विषय में समझना चाहिए)

उदयास्तमयाभ्याञ्च स्मृता पूर्वा च पश्चिमा।
चतुर्दिक्षु समानेन व्यनज्मि किरणानि मे॥४८॥
पृष्ठभागे पुरस्ताच्च पार्श्वयोश्च तथैव हि।
तापयामि जगत्सर्वं सर्वदैव न संशयः॥४९॥

उदय और अस्त के कारण ही पूर्व और पश्चिम दिशा का बोध होता है। मैं चारों दिशाओं में अपनी किरणों को समान रूप से व्यक्त करता हूँ। मैं अपने पीछे, सामने और बगल में भी उसी प्रकार से (समान रूप से) संसार को सर्वदा तप्त करता हूँ, इसमें संशय नहीं है।

पूर्वाह्णे चापराह्णे द्वौ स्मृतौ देवालयौ मम।
मध्याह्ने पूर्णरूपोऽहं दुर्निरीक्ष्यः सुरैरपि॥५०॥
उदयास्तमये काले हारियोजनमण्डले।
रक्ताभोऽहं तदा प्रेक्ष्यो नेतरेषु कदापि वा॥५१॥

पूर्वाह्न और अपराह्न, ये दोनों मेरे मन्दिर हैं। मध्याह्न में मैं अपने पूर्ण रूप में होता हूँ, उस समय देवताओं के लिए भी मुझे देखना कठिन हो जाता है। जब हारियोजनमण्डल में (जहाँ आकाश और पृथ्वी मिलते हुए दिखते हैं) सूर्योदय तथा सूर्यास्त हो रहा हो एवं मेरी आभा रक्तवर्ण की हो गयी हो, उस समय मेरा दर्शन करना चाहिए, अन्यत्र नहीं।

न वस्तुतः स्थितोऽहं वै हारियोजनमण्डले।
चतुःसहस्रक्रोशोर्द्ध्वस्थस्ततो खेऽहमीक्षितः॥५२॥
अर्द्धोदये तथार्द्धास्ते मण्डले ग्रहणे तथा।
मध्याह्ने नैव पश्येत मां कल्याणोत्सुको जनः॥५३॥

मैं हारियोजनमण्डल (Horizon) में जहाँ दिखता हूँ, वस्तुतः मेरी स्थिति उस स्थान पर न हो कर ऊपर की ओर चार सहस्र कोश के अन्तराल पर होती है। जब आधा सूर्योदय तथा आधा सूर्यास्त हुआ हो, (सूर्य आधे दिख रहे हों और आधे नहीं), जब मेरे चारों ओर मण्डल बन गया हो, जब ग्रहण लगा हो एवं जब मध्याह्न हो तो अपने कल्याण की कामना करने वाले व्यक्ति को मुझे नहीं देखना चाहिए।

वैद्युतोऽथ शुचिस्सौरस्त्रिधाहं जगति स्थितः।
दिने सौरश्शुची रात्रौ मेघाच्छिन्ने तु वैद्युतः॥५४॥
लीयन्ते रश्मयः सर्वा व्योम्नि दूरीगते मयि।
वह्निमाविशते रात्रौ प्रभा सौरी प्रभाकरा॥५५॥

मैं इस संसार में वैद्युत, शुचि और सौर, इन तीन प्रारूपों में स्थित हूँ। दिन में सौर, रात्रि में शुचि (अग्नि) तथा दिन/रात में मेघों के आने पर वैद्युत के रूप में। जब मैं आकाश में दूर चला जाता हूँ तो मेरी किरणें लीन हो जाती हैं। उस समय मेरी प्रकाशिका सौरी प्रभा अग्नि में प्रवेश कर जाती है।

सम्प्राप्ते तु पुनः सा वै मय्यायात्यरुणोदये।
दिनेऽहमग्निः शर्वर्यां दूरतश्च प्रकाशितौ॥५६॥
प्राकाश्यञ्चौष्ण्यमेवञ्च मय्याग्नेये च तेजसी।
परस्परन्तु दीप्येतेऽनुप्रविश्य दिवानिशम्॥५७॥

जब अरुणोदय का समय होता है, तो वह प्रभा पुनः मुझमें आ जाती है, अतएव दिन में मैं (सौर रूप में) तथा रात्रि में अग्नि (शुचि रूप में), दूर से ही प्रकाशित होते हैं। मुझमें (सौर रूप से) प्रकाश की प्रधानता है तथा अग्नि में (शुचि रूप से) गर्मी की प्रधानता है। ये दोनों तेज दिन और रात्रि में परस्पर प्रविष्ट होकर प्रकाशित करते हैं।

(तात्पर्य है कि दिन में सूर्य में सौररूपीय प्रकाश के साथ शुचिरूप की गर्मी भी आ जाती है, इसीलिए सूर्य में प्रकाश और गर्मी दोनों होती है। रात्रि में अग्नि/शुचि में उसकी नैसर्गिक उष्णता के साथ साथ सौररूप का प्रकाश भी आ जाता है, इसीलिए वह गर्मी के साथ प्रकाश भी देने लगता है। अतएव चन्द्रमा में सूर्य का प्रकाश होने पर भी शुचिरूप की उष्णता न होने के कारण वह रात्रि को प्रकाश तो करते हैं किन्तु गर्मी नहीं देते, जबकि अग्नि दोनों करते हैं)।

संस्थातुं निशया नैव शक्यते मम सम्मुखे।
तस्मात्सा तु जलाविष्टा दिनमाने तु भास्वरे॥५८॥
ममाभावे कदाप्यह्ना स्थीयते नान्धसाप्लुते।
तस्मात्तत्तु जलाविष्टं रात्रिकालसमागते॥५९॥

मेरे सम्मुख रात्रि से ठहरा नहीं जाता, अतएव वह प्रकाशित दिन के समय जल में प्रवेश कर जाती है। इसी प्रकार मेरे अभाव में अन्धकार से पूर्ण रात्रि के आने पर दिन से भी ठहरा नहीं जाता, फलतः वह भी उस समय जल में प्रविष्ट हो जाता है।

एवमह्नश्च रात्रेश्च जलावेशनकर्मणा।
भवन्त्यापो दिने शीता उष्णा वा निशि सर्वदा॥६०॥
मयैव वारसञ्चारो मेघकर्माणि चैव हि।
विभाजनं तु कालस्यर्तुसञ्चारस्तथैव हि॥६१॥

इस प्रकार से दिन के समय रात्रि के अभिमानी गुण का जल में रहना उसे शीतल बना देता है और रात्रि के समय दिन के अभिमानी गुण का जल में रहना उसे उष्ण बना देता है। मेरे द्वारा ही वारों का सञ्चरण सम्भव है। मेरे द्वारा ही मेघों की क्रिया (वर्षा) होती है। समय का विभाजन एवं ॠतुओं की क्रिया भी मेरे कारण ही होती है।

योजनान्येकत्रिंशच्च षोडशोनायुतानि च।
लोकेष्वप्रतिरुद्धाख्या गतिर्मौहूर्त्तिकी मम॥६२॥
न मत्समस्तु पथिको न नक्षत्रं ग्रहस्तथा।
न देवो नैव दैत्यो वा योऽतिक्रामेद्गतिर्मम॥६३॥

सोलह से एक कम (पन्द्रह) अयुत (दस सहस्र) एवं इकत्तीस योजन की दूरी मैं एक मुहूर्त (४८ मिनट) में गमन करता हूँ। (अर्थात् सूर्यदेव एक मुहूर्त में १५००३१ योजन अथवा अड़तालीस मिनट में १९४४४०० किलोमीटर की दूरी तय करते हैं)। मेरी यह गति संसार में अप्रतिरुद्धा (किसी के द्वारा न रोके जाने वाली) कही गयी है। मेरे समान कोई दूसरा पथिक नहीं है। कोई भी अन्य ग्रह, नक्षत्र, देवता अथवा दैत्य ऐसा नहीं है जो मेरी इस गति का अतिक्रमण कर सके।

॥इति सूर्यरहस्ये सूर्यनिग्रहसंवादे चैत्राधिकारः॥

॥इस प्रकार सूर्यरहस्य में सूर्य और निग्रहाचार्य के संवाद के अन्तर्गत चैत्राधिकार पूर्ण हुआ॥

सूर्यरहस्य - द्वितीय अधिकार

॥अथ वैशाखाधिकारः॥

सूर्य उवाच
केन्द्रस्थानं तु काष्ठानां पुष्करेति निगद्यते।
दिशश्च प्रदिशः सर्वा यत्र सम्मेलयन्ति च॥०१॥
पुष्करद्वीपगगने पुष्करोऽयं प्रतिष्ठितः।
तत्र प्रजापतिर्ब्रह्मा स्वयमेव प्रशासते॥०२॥

सूर्यदेव ने कहा - जहाँ पर सभी दिशा एवं प्रदिशा मिल जाती हैं, दिशाओं का जो केन्द्रस्थान है, उसे पुष्कर कहा जाता है। पुष्करद्वीप के ऊपर जो आकाश है, वहीं यह पुष्कर भी स्थित है। वहां प्रजाओं के स्वामी ब्रह्मदेव स्वयं शासन करते हैं।

पुष्करस्थानमाक्रम्य चरामि यदि दक्षिणे।
दक्षिणायनभावेन मां पश्यन्तीति मानवाः॥०३॥
पुष्करस्थानमाक्रम्योत्तरेऽहमुत्तरायणी।
ज्योतिर्विद्भिश्च कथितः सङ्कल्पेषु विशेषतः॥०४॥

इस पुष्कर स्थान का अतिक्रमण करके यदि मैं दक्षिण दिशा में भ्रमण करता हूँ तो लोग मुझे दक्षिणायन सूर्य के भाव से देखते हैं। जब मैं पुष्कर स्थान का अतिक्रमण करके उत्तर दिशा में आ जाता हूँ तो मुझे ज्योतिर्विदों के द्वारा, और विशेषकर सङ्कल्प आदि में उत्तरायणी कहा जाता है।

यदा विषुवदुल्लेखाद्याम्यहं मध्यभागके।
त्रिकोट्यश्चैव लक्षश्चाशीतियोजनमण्डले॥०५॥
इत्युक्तानि समस्तानि याम्यहमयनक्रमे।
अहोरात्रगतिश्चापि धार्यते गगने मया॥०६॥

जब मैं विषुवत् रेखा के मध्यभाग में होता हूँ तो अयनों के क्रम में कुल तीन करोड़, एक लाख, अस्सी योजन के पूरे मण्डल का भ्रमण करता हूँ। इसी प्रकार से आकाश में मेरे द्वारा दिन और रात की गति भी धारण की जाती है।

नागवीथ्यजवीथी च द्वौ मार्गौ मम निश्चितौ।
नागसंज्ञोत्तरा ज्ञेयाजा ज्ञेया दक्षिणा तथा॥०७॥
नवकोट्यश्च लक्षश्च चत्वारिंशच्च पञ्च च।
योजनैर्विस्तृताषाढाभिर्मूलैरजवीथिका॥०८॥

नागवीथी और अजवीथी, ये दो मेरे निश्चित मार्ग हैं। इसमें जो उत्तरमार्ग है, वह नागसंज्ञक है तथा दक्षिणमार्ग को अजा कहते हैं। मूल, पूर्वाषाढा एवं उत्तराषाढा नक्षत्रों से युक्त अजवीथी नौ करोड़, एक लाख, पैंतालीस योजन में फैली हुई है। (अर्थात्, दक्षिणायन में सूर्यदेव इतनी दूर भ्रमण करते हैं)

नवकोट्यो योजनान्यष्टपञ्चाशत्तथैव हि।
अश्विनीकृत्तिकायाम्याभिरुक्ता नागवीथिका॥०९॥
अष्टलक्षञ्च त्रिशतं त्रयस्त्रिंशत्तथैव च।
योजनं मध्यमार्गायनयोराभ्यन्तरं स्मृतम्॥१०॥

उसी प्रकार अश्विनी, कृत्तिका एवं भरणी नक्षत्रों से युक्त, नौ करोड़, अट्ठावन योजन के विस्तार वाली नागवीथी बतायी गयी है। (अर्थात्, उत्तरायण में सूर्यदेव इतनी दूर भ्रमण करते हैं)। जब सूर्यदेव दोनों अयनों के मध्यभागवर्ती आभ्यन्तर मण्डल में रहते हैं, तो आठ लाख, तीन सौ, तैंतीस योजन तक गमन करते हैं। (अर्थात्, अयनसंक्रमण के समय सूर्यदेव इतनी दूर भ्रमण

करते हैं एवं उत्तर तथा दक्षिण दिशा के मध्य इतना ही आन्तरिक केन्द्रभाग है)।

सप्तकोट्यश्च नियुतं सहस्रं सप्ततिस्तथा।
पञ्चोत्तरं योजनञ्च बाह्यमण्डलमुच्यते॥११॥
दिशामशीति गगने मण्डलानि शतानि च।
लघुदीर्घप्रमाणेन वत्सरे सञ्चराम्यहम्॥१२॥

इन (उत्तर एवं दक्षिण) दिशाओं का बाह्यमण्डल सात करोड़, दस लाख, पचहत्तर योजन का कहा गया है। आकाश में सभी दिशाओं के छोटे बड़े कुल एक सौ अस्सी मण्डल हैं, जिनमें मैं पूरे वर्ष भ्रमण करता हूँ।

यावन्मे रश्मयो भान्ति तावल्लोकेति कथ्यते।
अलोकस्तु परस्तस्मादिति ज्योतिर्विनिर्णयः॥१३॥
उत्तरे मन्दवीर्योऽहं दक्षिणे बलवत्तरः।
गतिर्मे क्षीणतां याति मन्दत्वेनोत्तरायणे॥१४॥

जहाँ तक मेरी रश्मियाँ प्रकाश करती हैं, वहाँ तक "लोक" कहा जाता है। इसके आगे का क्षेत्र "अलोक" कहलाता है, ऐसा ज्यौतिष् शास्त्र का निर्णय है। उत्तरदिशा में मेरी क्षमता (अपेक्षाकृत) मन्द हो जाती है एवं दक्षिण में मैं अधिक बलवान् हो जाता हूँ एवं मन्दत्व के कारण उत्तरायण में मेरी गति कम हो जाती है।

तस्माद्दिनानि दीर्घाणि षट्त्रिंशद्घटिकादयः।
मय्युत्तरे गते ह्यल्पकाला भवति शर्वरी॥१५॥
सञ्चरामि यदाहं वै दक्षिणायनमण्डले।
तदा द्वादशमौहूर्तविस्तृतञ्चेद्भवेदहः॥१६॥

अतएव मेरे उत्तर में जाने पर दिन छत्तीस घड़ी तक (लगभग साढ़े चौदह घण्टे) बड़े होने लगते हैं एवं रात्रि छोटी होती है। जब मैं दक्षिणायन के मण्डल में भ्रमण करता हूँ तो दिन बारह मुहूर्त (लगभग साढ़े नौ घण्टे) तक ही बड़े होते हैं।

मण्डलस्य तु विष्कम्भः किञ्चित्तिर्यग्विधीयते।
मृत्पिण्ड इव मध्यस्थः सर्वदा भ्रमते ध्रुवः॥१७॥
त्रिंशन्मुहूर्तपर्यन्तमहोरात्रं ध्रुवो भ्रमत्।
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मण्डलानि च॥१८॥

इस मण्डल का ऊपरी भाग कुछ तिरछा है। इसके मध्यभाग में मिट्टी के निर्जीव पिण्ड के समान ध्रुव सदैव भ्रमण करता है। तीस मुहूर्त के दिन-रात में ध्रुव दोनों दिशाओं के मण्डल का भ्रमण कर लेता है।

यथा कुलालचक्रस्य नाभिर्भ्रमति केन्द्रतः।
तथावौत्तानपादिश्च गच्छन्नपि न गच्छति॥१९॥
सूर्यागस्त्यध्रुवाणाञ्च गत्याहोरात्रनिर्णयम्।
जानन्ति व्योमद्रष्टारः कालवैज्ञानिकास्तथा॥२०॥

जैसे कुम्हार के चक्के की नाभि अपने केन्द्रभाग में ही घूमती रहती है (स्थान नहीं बदलती), वैसे ही उत्तानपाद के पुत्र (ध्रुव) चलते हुए भी चलायमान नहीं होते। सूर्य, अगस्त्य एवं ध्रुव की गति के आधार पर ही आकाश को देखने वाले कालवैज्ञानिक दिन और रात के निर्णय को जानते हैं।

रात्रावहं चन्द्रमसि निजरश्मींश्च पावके।
स्थानान्तरितुमिच्छामि पुनः प्रातर्ममोदये॥२१॥
जरामृत्युविहीनाश्च ते किल्विषपरायणाः।
तिस्रः कोट्यस्तु विख्याता तदा मन्देहराक्षसाः॥२२॥

जब रात्रि को मैं चन्द्रमा और अग्नि में अपनी किरणों को स्थानान्तरित करने की इच्छा करता हूँ, तथा जब मैं प्रातः (उनसे किरणों को वापस लेकर) उदित होता हूँ, उस समय अन्धकार की उपासना करने वाले, वृद्धावस्था और मृत्यु से परे तीन करोड़ की संख्या में मन्देह नामक राक्षस आ जाते हैं।

ते मां खादितुमिच्छन्ति नित्यं युद्धं महद्भवेत्।
सावित्रीमन्त्रपूतेन तदा सन्ध्यामुपासयन्॥२३॥
त्रिवारं वारिणार्घ्यं मे प्रयच्छन्ति द्विजातयः।
मुहूर्तमात्रपर्यन्ता सन्ध्या ज्ञेया मनीषिभिः॥२४॥

वे राक्षस मुझे खाने की इच्छा करते हैं, तब (मेरे साथ उनका) बहुत बड़ा युद्ध होता है। उस समय सन्ध्योपासना करते हुए सावित्रीमन्त्र से पवित्र किए गये जल के द्वारा द्विजातिजन मुझे तीन बार अर्घ्य प्रदान करते हैं। यह सन्ध्या बुद्धिमानों के द्वारा एक मुहूर्त (४८ मिनट) की बतायी गयी है।

आद्यर्घ्येण वाहनानि शस्त्राणि मध्यमेन वै।
तृतीयेन तु मन्देहा निर्वीर्या सम्भवन्ति च॥२५॥
मन्देहे क्षीणतां याते महातेजःसमन्वितः।
योजनानाञ्च लक्षाण्युत्तिष्ठाम्यत्यूर्द्ध्वमार्गतः॥२६॥

पहले अर्घ्य से उनके वाहन, दूसरे अर्घ्य से उनके शस्त्र एवं तीसरे अर्घ्य से स्वयं वे मन्देह राक्षस शक्तिहीन हो जाते हैं। मन्देहों के क्षीण हो जाने पर मैं महान् तेज से युक्त होकर अत्यन्त ऊंचे मार्ग का आश्रय लेकर आकाश में एक लाख योजन ऊपर चला जाता हूँ।

निग्रह उवाच
के ते मन्देहनामाख्या राक्षसा अमृतिर्जराः।
कथमाक्रामयन्ति त्वां यद्यगुह्यं वदस्व मे॥२७॥

सूर्य उवाच
वार्षिक्यां रथयात्रायां दर्शनं भ्रमतो मम।
कर्षणं पूजनं वापि दुर्लभं पुरतो व्रजन्॥२८॥

निग्रहाचार्य ने कहा - जो वृद्धावस्था एवं मृत्यु से रहित हैं, ऐसे मन्देह नामक राक्षस कौन हैं ? वे आपके ऊपर आक्रमण क्यों करते हैं ? यदि यह गोपनीय न हो तो मुझे बतायें।
सूर्यदेव ने कहा - मेरी जो वार्षिकी रथयात्रा होती है, उसमें रथ के ऊपर भ्रमण करते हुए मुझे देखना, रथ को खींचना अथवा सामने जाते हुए पूजन करना दुर्लभ है।

उत्तराभिमुखं यान्तं तथा वै दक्षिणामुखम्।
दृष्ट्वा स धन्यो भवति देवो वा मानवोऽसुरः॥२९॥
पर्यन्तं द्वादशसमा कर्तव्यो मे रथोत्सवः।
पूर्णे वै द्वादशे वर्ष इन्द्रकेतोश्च पूजनम्॥३०॥

उत्तर अथवा दक्षिण की ओर मुख करके जाते हुए मुझे देखकर दर्शक धन्य हो जाता है, चाहे वह देवता हो, मनुष्य अथवा असुर हो। मेरी रथयात्रा बारह वर्षों तक करनी चाहिए, फिर इन्द्रध्वज का पूजन करे।

इन्द्रध्वजस्य चाप्येवं यदि नोत्थापनं कृतम्।
ततो वै द्वादशे वर्षे कर्तव्यं नान्तरा पुनः॥३१॥
यात्रायाश्चापि कुर्वन्ति भङ्गं ये मनुजाधमाः।
भवन्ति नाम मन्देहा राक्षसा नात्र संशयः॥३२॥

यदि उसके बाद इन्द्रध्वज को (विसर्जन हेतु) उखाडा नहीं गया तो पुनः अगले बारह वर्षों के बाद ही उसे उखाड़ा जाता है,

बीच में नहीं। मेरी इस यात्रा में जो लोग विघ्न करते हैं, अथवा बीच में भंग करते हैं, वे ही मन्देह नाम के राक्षस होते हैं, इसमें संशय नहीं है।

पुराकाले तु नरके पापिभिः परिपूरिते।
रक्षिते यमदूतैश्च ताडितैश्चापि सन्ततम्॥३३॥
दुरात्मनो दण्डयंस्तान् दूताः क्लान्तकलेवराः।
स्वकार्यं ते परित्यज्य यमदूताश्च निर्ययुः॥३४॥

पूर्वकाल में पापियों से भरे नरकलोक में, जो निरन्तर दण्ड देने यमदूतों के द्वारा रक्षित था, वहाँ पापियों को दण्ड देते हुए यमदूत थक गये और अपने अपने काम को छोड़कर बाहर निकल आये।

चित्रगुप्तं समासाद्य विश्रामेच्छां बभाषिरे।
वयं सर्वे परिश्रान्ता ह्यन्यान् योजितुमर्हसि॥३५॥
वयमन्यत्करिष्यामो देव कार्यं महत्तरम्।
ततस्तेषां वचः श्रुत्वा चित्रगुप्तो रुषान्वितः॥३६॥

चित्रगुप्त के पास आकर उन दूतों ने कहा कि "हम सब थक गये हैं अतः विश्राम करके की इच्छा रखते हैं। आप इस काम के लिए किसी और को नियुक्त करें। हे देव ! हम इसके अतिरिक्त किसी दूसरे महान् कार्य को कर लेंगे।" इस प्रकार से यमदूतों के वचनों को सुनकर चित्रगुप्त क्रोध से युक्त हो गये।

विवृत्तरक्तनयनो ह्यपश्यत्सर्वतो दिशम्।
बहिष्कारेण कर्तव्यस्य दूतानां व्यतिक्रमः॥३७॥
सम्भवेदिति निश्चित्य चित्रश्चिन्तातुरोऽभवत्।
चित्रगुप्तेन दूतानां वार्तां द्रष्टुं समागमन्॥३८॥
ये चान्ये नारका जीवाः समन्देहा स्वनिष्कृतेः।
षष्टिकोट्यश्च तत्रासन् यमदूता महाबलाः॥३९॥

उनके नेत्र लाल हो गये एवं वे आंखें फाड़ कर चारों ओर देखने लगे। यमदूतों के द्वारा कर्तव्य का परित्याग करने से निश्चय ही अव्यवस्था हो जायेगी, ऐसा सोचकर चित्रगुप्त चिन्तित हो गये। जो अन्य नारकीय जीव थे, जिसमें मन्देह भी सम्मिलित थे, वे भी चित्रगुप्त और यमदूतों के मध्य हो रही इस वार्ता को देखने के लिए आ गये। वहाँ उस समय अत्यन्त पराक्रमी साठ करोड़ यमदूत उपस्थित थे।

त्रिंशत्कोट्यश्च मन्देहा राक्षसास्ते मम द्रुहः।
तान् मन्देहान् समाहूय चित्रगुप्तो विनिःश्वसन्॥४०॥
हिंस्त दूतान् विधर्मिष्ठानिति तानैलयत्प्रभुः।
भो मन्देहा महावीरा रीयध्वं वचनं मम॥४१॥
एतान् बध्नीत गृह्णीत दूतान् मामवहेलकान्।
हत्वा वै पापकानेतान्मम विप्रियकारिणः॥४२॥

मुझ (सूर्य) से द्रोह करने वाले मन्देह राक्षसों की संख्या तीस करोड़ थी। स्वामी चित्रगुप्त ने उन मन्देहों को प्रेरित करके बुलाया और लम्बी श्वास छोड़ते हुए कहा कि "तुमलोग इन विधर्म में स्थित दूतों को मार दो। हे महाबली मन्देहों ! मेरे वचनों को ध्यान से सुनो। मेरी अवहेलना करने वाले इन दूतों को पकड़कर कैद कर लो और मेरा अप्रिय करने वाले इन पापियों को मार डालो।

साधयित्वा च मत्कार्यं पुन आगच्छतात्र वै।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य सर्वे मन्देहराक्षसाः॥४३॥
तथेत्युक्त्वा नमश्चित्रगुप्तपादौ ववन्दिरे।
तव सन्देशकर्तारो भविष्यामो न संशयः॥४४॥

मेरे कार्य को सम्पादित करके पुनः यहाँ आ जाना।" इस प्रकार चित्रगुप्त के वचनों को सुनकर सभी मन्देह राक्षसों ने उनके चरणों में प्रणाम किया और कहा - "ऐसा ही होगा। हम आपके कथन का पालन करने वाले होंगे, इसमें कोई संशय नहीं है।"

प्रचण्डा बद्धवर्माणो नानाशस्त्रधरास्तथा।
ते तु वेगेन सम्प्राप्ता दुर्जेयाः पिशिताशनाः॥४५॥
आरुह्य राक्षसाः सर्वे हस्तिनञ्च हयं तथा।
निःसृताश्चैव रोषेण चित्रगुप्तेन धीमता॥४६॥

उग्र स्वभाव वाले, कवच बांधकर, विभिन्न शस्त्रों को धारण करने वाले वे रक्तभोजी दुर्जेय मन्देह हाथी-घोड़ों पर बैठकर बुद्धिमान् चित्रगुप्त के द्वारा क्रोधपूर्वक भेजे गये।

मन्देहानागतान्दृष्ट्वा सर्वे दूता यमानुगाः।
भीतास्ते चित्रगुप्तस्याचिराद्वै शरणं ययुः॥४७॥
श्रान्ता वयं न विमुखा स्वधर्मेण प्रजेश्वर।
पुत्रवत्पालनीया नस्तव भृत्याः सहस्रशः॥४८॥

मन्देहों को अपनी ओर आया हुआ देखकर सभी यमदूत भयभीत होकर बिना विलम्ब किए चित्रगुप्त की शरण में गये और कहा - "हे प्रजाओं के स्वामी ! हमलोग अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हुए हैं। हम बस थोड़े थक गए हैं। हम सहस्रों सेवक तो आपके द्वारा पुत्र के समान पाले जाने योग्य हैं।

अस्माकं यद्वधार्थायैते निर्दिष्टाश्च राक्षसाः।
मन्यामहे न तद्युक्तं धर्मार्थञ्च भवानपि॥४९॥
यान् पापीन् दण्डयामः स्म स्वस्वकर्मविधानतः।
तैरेव मरणं यामो किं वा दुःखतरं भवेत्॥५०॥

हमलोगों के वध हेतु आपके द्वारा ये जो राक्षस प्रेषित किए गये हैं, उसे हमलोग उचित नहीं मानते हैं, क्योंकि आप भी तो धर्म के लिए ही हैं न। अपने अपने कर्म के विधान के अनुसार जिन पापियों को आजतक हमलोग दण्डित करते थे, उनके ही द्वारा यदि हम मृत्यु को प्राप्त होंगे तो इससे बड़ा दुःख क्या होगा ?

मादेशस्तु मृषा वापि भवेदत्र तव प्रभो।
तदुपायं विनिश्चित्य नस्त्रायस्व वशानुगान्॥५१॥
हन्यमानाञ्च मन्देहैः पापिष्ठैर्धर्महिंसकैः।
श्रुत्वा दूतांस्ततश्चित्रो मुमुदे न तदापि च॥५२॥

हे स्वामिन् ! यहाँ आपका आदेश भी असत्य न हो, ऐसा कुछ विचार करके हम वशवर्ती सेवकों की रक्षा करें।" धर्म का नाश करने वाले पापी मन्देहों के द्वारा मारे जा रहे यमदूतों की ऐसी बात सुनकर भी चित्रगुप्त प्रसन्न नहीं हुए।

मन्देहान् वारयामासुर्मा हिंस्रेति च तान् ब्रुवन्।
तदा दूताश्च पूर्वेण क्रमेण नरकेऽशुचौ॥५३॥
जीवानारेभिरे वेष्टयितुं कर्मवशानुगान्।
न पुनर्नरकं यामो मन्देहास्तत्र चाब्रुवन्॥५४॥

फिर उन दूतों ने मन्देहों को, "मत मारो", ऐसा कहकर बलपूर्वक रोका एवं पहले के विधान से ही अपवित्र नरक में जीवों को उनके कर्म के अनुसार धकेलने लगे। उस समय मन्देहों ने कहा कि हम पुनः इस नरक में नहीं जायेंगे।

हन्तुमाडुश्च ते दूताञ्चुकुपुस्ते ज्वलन्नुषा।
अलं नाट्येन दुर्मूढा ईक्षध्वं नो बलं महत्॥५५॥
उक्त्वा क्रुद्धास्तदा ससृजिरे दूताः शरीरतः।
आधीन् व्याधीन् महामारीर्घोररूपा भयानकाः॥५६॥

इस प्रकार कहकर जब उन मन्देहों ने यमदूतों को पुनः मारना आरम्भ किया, तब क्रोध से यमदूतों का शरीर जलने लगा। "बस, बहुत नाटक हो गया मूर्खो !, अब हमारे महान् पराक्रम को देखो", ऐसा कहकर यमदूतों ने अपने शरीर से अत्यन्त घोर एवं भयानक आधि (मानसिक रोग), व्याधि (शारीरिक रोग) एवं महामारियों को उत्पन्न किया।

ताः साकारस्वरूपेणाश्वहस्तिरथवाहनाः।
सिंहव्याघ्रमृगाहिसृगालगृध्रखरासनाः॥५७॥
एवं वाहनसंयुक्ता नानाप्रहरणोद्यताः।
मन्देहाञ्चिरयाञ्चक्रुस्तेऽप्यालुस्ताश्च सङ्कुले॥५८॥

वे बीमारियां साकार रूप धारण करके, घोड़े, हाथी, रथ, सिंह, बाघ, हिरण, सर्प, सियार, गिद्ध और गधे आदि पर आरूढ़ होकर, हाथों में हथियार उठाये हुए, मन्देहों को मारना आरम्भ किया, उस समय मन्देहों ने भी युद्ध में उन्हें मारकर प्रतिरोध किया।

दूतेभ्यो व्याधिभिश्चैव मन्देहा विगताशयाः।
ताडिताः कूर्परैः पादैर्मुष्टिकैश्च समन्ततः॥५९॥
जानुभिश्च नखैर्दन्तैस्तेऽन्योऽन्यमभिजघ्निरे।
बाहुभिः समनुप्राप्तः केशाकेशि ततः परम्॥६०॥

किन्तु यमदूतों एवं बीमारियों के द्वारा मारे जाने पर मन्देहों का साहस टूटने लगा। फिर वे केहुनी, लात, मुक्का, घुटना, नाखून, दांत आदि के माध्यम से एक दूसरे को मारने लगे। इसके बाद भुजाओं से और फिर बाल खींच कर मारने लगे।

ततः समभवद्युद्धं यमलोके दुरासदि।
मन्देहा राक्षसाः सर्वे वध्यमानाः सहस्रशः॥६१॥
ततो भग्ना यदा ते तु राक्षसाः कामरूपिणः।
प्रत्यपद्यन्त ते मायां तामसीं तमसावृताम्॥६२॥

उस भयंकर यमलोक में ऐसा युद्ध होने लगा जिसमें मन्देह नाम वाले वे राक्षस हज़ारों की संख्या में मारे जाने लगे। इच्छानुसार रूप धारण करने वाले वे राक्षस जब मरने लगे तब उन्होंने अन्धकार को बढ़ाने वाली तामसी माया की रचना की।

अदृश्याश्चैव दृश्याश्च तद्बलं तमसावृताः।
रिरिफुः सह दूतैश्च ते भयाच्चाभिदुद्रुवुः॥६३॥
बन्ध देहि वदन्त्येव भिन्धि गृह्णीष्व तिष्ठ च।
आहूयन्त प्रतिभयात्क्रोधसंरक्तलोचनाः॥६४॥

कभी वे दिखाई देते तो कभी अदृश्य हो जाते। इस प्रकार अपनी अन्धकार की सेना को लेकर वे यमदूतों से युद्ध करने लगे जिसके कारण दूत भयभीत होकर भागने लगे। "इसे बांध कर मेरे पास लाओ, इसे काट दो, इसे पकड़ कर खड़े रहो" इस प्रकार वे क्रोध से लाल आंखें करके ललकारने लगे।

तिष्ठ तिष्ठ क्व यासीति न गच्छामि दृढो भव।
मया मुक्तमिदं शस्त्रं तव देहविनाशनम्॥६५॥
मया क्षिप्तास्तु इषवः प्रतीच्छ क्व पलायसे।
किं त्वं वदसि दुर्बुद्धे एषोऽहं पारगो रणे॥६६॥

"अरे किधर भागता है, खड़ा रह, अरे मैं नहीं भागता, तुम डटे रहो, ये देख, मैंने तुम्हें मारने के लिए इस अस्त्र को चलाया है, अरे मेरे बाणों का सामना तो कर, थोड़ा ठहर जा, क्यों भाग रहा है, क्या कहा ? मैं भागता हूँ ? अरे मैं तो इस युद्ध में पारंगत हूँ।"

मम बाहुविमुक्तस्तु यदि जीवस्यतो वद।

एवं ब्रुवन् तदा सर्वे मन्देहाः पिशिताशनाः॥६७॥
पादैर्हस्तैः शिरोभिश्च दूतानाञ्च यमालये।
बाणखड्गप्रहारैश्चोम्भामासुः सर्वतो दिशः॥६८॥

"मेरे हाथों से जीवित बच गये, तब कहना", ऐसा कहते हुए उन सभी रक्त पीने वाले मन्देहों ने अपने बाण और खड्ग के प्रहार से पूरे यमलोक को सभी दिशाओं से यमदूतों के कटे हुए हाथ, पैर और मस्तकों से भर दिया।

ततश्च व्याधयः शेषा दूता जग्मुर्ज्वरं प्रति।
त्रिशीर्षमूर्द्ध्वकेशञ्च शरण्यं विकटाननम्॥६९॥
माहेश्वरं शूलपाणिं विरूपाक्षं दिगम्बरम्।
त्रिभुजं सर्वरोगाणामीश्वरञ्जीवनाशनम्॥७०॥

तब सभी रोग एवं बचे खुचे यमदूत तीन मस्तकों, ऊपर की ओर उठे केश, भयंकर स्वरूप, कुटिल दृष्टि, तीन हाथ, त्रिशूलधारी, नग्न स्वरूप, जीवों का नाश करने वाले, सभी रोगों के स्वामी माहेश्वर ज्वर की शरण में गये।

मन्देहाख्या महाक्रूराः कौणपाः पिशिताशनाः।
भक्षन्ति चैव घ्नन्ति स्म चित्रगुप्तस्य शासनात्॥७१॥
अस्मानद्य महाभाग त्रायस्व शरणं गतान्।
ततस्तेषां वचः श्रुत्वा ज्वरः क्रुद्धो बभूव ह॥७२॥

(उन्होंने निवेदन किया) "शवों का भक्षण करने एवं रुधिर पीने वाले अत्यन्त क्रूर, मन्देह नामक राक्षस हमें चित्रगुप्त के आदेश से मारकर खा रहे हैं। हे महाभाग ! हम आपकी शरण में आये हैं, अतः हमारी रक्षा करें।" उनके ऐसे वचन को सुनकर माहेश्वर ज्वर क्रोधित हो गये।

अट्टाट्टहासमशिवं कृत्वा योधान् सहस्रशः।
लौहदण्डधरान्रौद्रान् क्रूरान्सिद्धपराक्रमान्॥७३॥
बद्धाञ्जलिपुटान्सर्वानिदमाह महेश्वरः।
हिंसाचिरानिमान्पापान्योगेन च बलेन च॥७४॥

उन्होंने अशुभकारी अट्टहास करके अपने हज़ारों योद्धाओं को, जो भयंकर थे, अपने हाथों में लोहे के दण्ड धारण किये हुए थे, जो क्रूर थे एवं जिनका पराक्रम सिद्ध था, जो माहेश्वर ज्वर के सामने हाथ जोड़कर खड़े थे, उन्हें कहा कि तुमलोग बिना देर किए इन पापियों को योगबल से मार डालो।

ज्वराज्ञया च ते सर्वे मेघगम्भीरनिःस्वनाः।
जघ्नुः शस्त्रप्रहारैश्च दिव्यास्त्रैर्विविधोज्ज्वलैः॥७५॥
एवं मृताश्च मन्देहा लोहितेन परिप्लुताः।
केवलं जीवितास्तत्र ते त्रिकोट्यस्तदाभवन्॥७६॥

ज्वर के आदेश से बादलों के समान गम्भीर गर्जना करने वाले उन योद्धाओं ने विविध प्रकार के उज्ज्वल दिव्यास्त्रों से मन्देहों को मार डाला। इस प्रकार खून से लथपथ होकर मन्देह मर गये, केवल उनमें (तीस करोड़ में) तीन करोड़ ही जीवित बचे।

शिष्टाः संयमनीं गत्वेन्वामासुस्ते कृतान्तकम्।
धर्मराज वयं सर्वे चित्रगुप्तवशानुगाः॥७७॥
त्वद्दूतैर्मरणं यामस्त्रिशिरेण विशेषतः।
कोलाहलो महानासीद्यमस्तत्र समागमत्॥७८॥

जो तीन करोड़ मन्देह बच गये थे, उन्होंने संयमनीपुरी में जाकर सबों का अन्त करने वाले यमराज को प्रसन्न करके कहा कि "हे धर्मराज ! हम सब चित्रगुप्त के वश में रहने वाले सेवक हैं। आपके दूत एवं विशेषकर तीन मस्तकों वाले (माहेश्वर

ज्वर) के दूतों के द्वारा हम सब मारे जा रहे हैं।" वहां बहुत कोलाहल हुआ, तब यमराज स्वयं आये।

मन्देहान्मोचयित्वाथ हन्यमानान्समन्ततः।
वारयामास संग्रामं स्वयमेव स धर्मराट्॥७९॥
ततो ह्युपरते युद्धे धर्मराजः समेक्षणः।
चित्रगुप्तेन दूतानां सह सन्धिमकारयत्॥८०॥

चारों ओर से मारे जाते हुए मन्देहों को उन्होंने छुड़ा दिया। स्वयं धर्मराज ने उस युद्ध को रुकवाया। सबों पर समदृष्टि रखने वाले यमराज के द्वारा युद्ध रोके जाने पर उन्होंने यमदूतों एवं चित्रगुप्त के मध्य सन्धि करा दी।

माहेश्वरं ज्वरं गत्वा विनयात्सान्त्वयच्च तम्।
त्वमहञ्चैव देवेश शिष्वो लोकञ्चराचरम्॥८१॥
शान्तं भव महाबाहो सर्वलोकनमस्कृत।
गच्छ देव यथास्थानं युद्धञ्च त्यजतु स्वयम्॥८२॥

फिर उन्होंने माहेश्वर ज्वर के पास जाकर विनयपूर्वक उन्हें सांत्वना देते हुए कहा - "हे देवताओं के स्वामिन् ! आप और मैं दोनों ही इस चराचर जगत् पर शासन करते हैं। हे सभी लोकों के द्वारा पूजित ! हे महान् भुजाओं वाले ! आप शान्त हों, आप स्वयं भी इस युद्ध को छोड़कर अपने स्थान को लौट जायें।"

अद्यतः किङ्कराः सर्वेऽमरत्वं प्राप्नुयुर्मम।
मन्देहा अपि ये शिष्टा न लप्सन्ते च ते मृतिम्॥८३॥
वरदर्पेण ते मूढास्तदा स्वर्लोककामतः।
ससर्जिरेऽन्धतामिस्रमायां दृष्टिनिबर्हणीम्॥८४॥

"आज से मेरे सभी सेवक (यमदूत) अमर हो जायेंगे। जो बचे हुए मन्देह हैं, उन्हें भी मृत्यु नहीं मिलेगी।" यमराज के वरदान के घमण्ड में उन मूर्खों (मन्देहों) ने स्वर्गलोक की कामना से अन्धतामिस्र नाम वाली माया की सृष्टि की, जो सबों की दृष्टि का हरण करने वाली थी।

न नक्षत्रेषु न सोमे वा नाग्नौ दीप्तिः प्रकाशिता।
अन्तर्हिते तदा वह्नौ यज्ञदानादिसत्क्रियाः॥८५॥
नष्टास्तेनाभिचारेण सम्प्राप्तं व्यसनं महत्।
निर्वीर्या दृष्टिहीनाश्च बभूवुस्त्रिदशेश्वराः॥८६॥

नक्षत्रों में प्रकाश नहीं रहा। चन्द्रमा एवं अग्नि में भी दीप्ति नहीं दिखती थी। अग्नि के लुप्त होने से यज्ञ, दान आदि धर्मकार्य भी बन्द हो गये। उस अभिचार (राक्षसी माया) के कारण बहुत संकट उपस्थित हो गया। सभी बड़े देवता शक्ति एवं दृष्टि से हीन हो गये।

खेऽहं भूमावर्जुनश्च शेषीभूतौ प्रकाशकौ।
हेतीन्द्रस्यावतंसः स तस्मात्स्वप्रभयान्वितः॥८७॥
तदा देवगणाः सर्वे सहस्राक्षपुरोगमाः।
योद्धुमारेभिरे किन्त्वदर्शनेन पराजिताः॥८८॥

उस समय केवल दो ही थे जो प्रकाश वालों में बच गये थे। आकाश में केवल मेरा एवं पृथ्वी पर केवल अर्जुन (सहस्रबाहु) का ही प्रकाश बच गया। वह चक्रराज सुदर्शन का अवतार होने से अपनी प्रभा से युक्त बना रहा। तब देवराज इन्द्र के नेतृत्व में देवताओं ने मन्देहों से युद्ध करना आरम्भ किया किन्तु दृष्टिहीन होने से वे पराजित हो गये।

ववाशेऽहं तदा गत्वा कार्तवीर्यार्जुनं नृपम्।
उवाच देवसाहाय्ये भव त्वं कार्यसाधकः॥८९॥
विनाग्निं देवताः सर्वे क्षुधार्ता भृशपीडिताः।

गृहाण मे शरान्भूपतेऽक्षयान्सर्वतोमुखान्॥९०॥

तब मैंने राजा कार्तवीर्य अर्जुन के पास जाकर कहा कि "तुम देवताओं की सहायता करने में मेरे कार्य को पूर्ण करो। अग्निदेव के बिना सभी देवता भूख के कारण बहुत पीड़ा में हैं। हे राजन् ! तुम मेरे द्वारा दिये गये, सभी ओर प्रभाव करने वाले इन अक्षय बाणों को ग्रहण करो।

मम तेजःसमुद्भूता शोषयिष्यन्ति मेदिनीम्।
भस्मीभूतं करिष्यामि तदाहञ्च परन्तप॥९१॥
ओमित्युत्वार्जुनो बाणाञ्चिक्षेप धनुषा तदा।
निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिर्बभूव मम तेजसा॥९२॥

मेरे तेज से उत्पन्न ये बाण पृथ्वी को सुखा देंगे। हे शत्रुओं को ताप देने वाले ! तब उस सूखी पृथ्वी को मैं जलाकर भस्म कर दूंगा।" तब 'ठीक है', ऐसा कहकर सहस्रार्जुन ने अपने धनुष से उन बाणों को छोड़ा और मेरे तेज से पृथ्वी बिना पेड़ों और घास (हरियाली) के हो गयी।

सप्तजिह्वाधरोऽहं भूत्वाग्निरूपेण मेदिनीम्।
अयुताब्दैकपर्यन्तं यज्ञाभावे ददाह च॥९३॥
ज्ञात्वा वै स्वाश्रमं दग्धं वशिष्ठो भगवानृषिः।
शापयामास माञ्चैवार्जुनं माहिष्मतीपतिम्॥९४॥

इसके बाद सात जिह्वाओं को धारण करके, यज्ञ के अभाव में मैंने ही अग्निरूप से पृथ्वी को एक अयुत (१०,०००) वर्षों तक जलाया। इसी बीच अपने आश्रम को जला हुआ जानकर भगवान् महर्षि वशिष्ठ ने मुझे और माहिष्मती के राजा अर्जुन को शाप दे दिया।

त्वां कार्तवीर्य विप्रश्च वधिष्यति महाबलः।
त्वं सूर्य पीडितो भूत्वा मन्देहैर्विचरिष्यसि॥९५॥
स्वकं भागं तदा देवा विकल्पेनैव प्राप्नुयुः।
तद्बलेन च मन्देहाञ्जम्भभेदी शशाप ह॥९६॥

उन्होंने कहा - "हे कार्तवीर्य ! तुम्हारा वध कोई महाबली ब्राह्मण (परशुराम) करेगा। हे सूर्य ! तुम भी मन्देहों से पीडित होकर विचरण करोगे।" इस प्रकार विकल्प से देवताओं ने अपने अपने यज्ञभाग को प्राप्त किया और उस बल से जम्भासुर का वध करने वाले देवराज इन्द्र ने मन्देहों को शाप दिया।

उत्थाप्य क्षेपयामास गोशृङ्गपर्वतं प्रति।
तस्मात्तत्रैव मन्देहा अधुनापि वसन्ति हि॥९७॥
तत्र रक्तजलं दीर्घं लोहितं नाम सागरम्।
स्थित्वा गोशैलशृङ्गेषु नानारूपा भयानकाः॥९८॥
ते पतन्ति जले नित्यं मन्देहाश्च ममोदये।
अभितप्ताश्च तापेनालम्बन्ते च मुहुर्मुहुः॥९९॥
त्रिस्रः कोट्यः कृतघ्नाश्च मन्देहा नाम राक्षसाः।
घोरास्ते वैरभावेन मां सदेच्छन्ति खादितुम्॥१००॥

उन्होंने मन्देहों को उठाकर गोशृङ्ग पर्वत में फेंक दिया। आज भी मन्देह राक्षस वहीं रहते हैं। वहाँ लाल जल वाला विशाल लोहित-सागर है। गोशृङ्ग पर्वत के ऊपर स्थित होकर मन्देह राक्षस प्रतिदिन मेरे उदय के समय मेरे ताप से पराजित होकर जल में गिर जाते हैं और फिर (कुछ समय के बाद) पर्वत के ऊपर चढ़ जाते हैं। वे मन्देह नाम वाले तीन करोड़ घोर कृतघ्न राक्षस पूर्व वैर का स्मरण करके मुझे सदैव खाने की इच्छा करते हैं।

मया यया तु मन्देहा राक्षसा निग्रहीकृता।
तां विद्यां सम्प्रवक्ष्यामि सावधानतया शृणु॥१०१॥

वज्रवाहनिका विद्या कीर्तिता च महर्षिभिः।
अनयैव हतो वृत्रो देवेन्द्रेण महात्मना॥१०२॥

जिसके माध्यम से मेरे द्वारा मन्देहों का निग्रह किया गया, उस विद्या को बताता हूँ, सावधान होकर सुनो। इस विद्या को महर्षिगण 'वज्रवाहनिका' विद्या कहते हैं। इसके ही माध्यम से महात्मा देवराज इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा था।

ऋषिर्ब्रह्मा तु विद्याया देवी वज्रेश्वरी तथा।
सर्वशत्रुहरश्चैव भावः सङ्कल्पसाधने॥१०३॥
सामान्यां त्रिपदामुक्त्वा त्रिलोकप्रणवान्विताम्।
पुनश्च तारमुच्चार्य फट्कारञ्च वदेत्पुमान्॥१०४॥
जह्युक्त्वा चैव हुं फट् च छिन्धि भिन्धि तथा पुनः।
पुनर्जहीति हन हन स्वाहा मन्त्रः प्रकाशितः॥१०५॥
विद्या वज्रेश्वरीत्येषा सर्वशत्रुभयङ्करी।
चित्ते तव प्रदास्यामि विधानमतिदुर्लभम्॥१०६॥

इस विद्या के ऋषि ब्रह्मा एवं देवी वज्रेश्वरी हैं। सभी शत्रुओं का नाश हो, इस भाव से सङ्कल्प किया जाता है। पहले तार (ॐ) एवं त्रिलोक (भूर्भुवः स्वः) साथ सामान्य त्रिपदा (तत्सवितुर्वरेण्यं ..... प्रचोदयात्) का उच्चारण करे। फिर तार (ॐ) कहकर 'फट्' और 'जहि' कहकर पुनः 'हुं फट्' कहे और फिर 'छिन्धि भिन्धि' कहकर पुनः 'जहि हन हन स्वाहा' कहे, इस प्रकार यह मन्त्र बताया गया है। सभी शत्रुओं को भय देने वाली यह वज्रेश्वरी विद्या है। इसके अति दुर्लभ विधान को मैं तुम्हारे चित्त में दे रहा हूँ।

वज्रं कृत्वा विधानोक्तं ततो वज्राभिषेचनम्।
मूलमन्त्रेण वै तस्मिन्विन्यसेद्धाटकेन च॥१०७॥
ततश्चाक्षरलक्षञ्च जपेत्स्थित्वा तु वज्रवत्।
तद्दशांशञ्च जुहुयाद्वज्रकुण्डे घृतादिभिः॥१०८॥

पहले (शस्त्रशास्त्र के) विधान से एक वज्र बनाकर उसका वज्राभिषेक करे। पुनः मूलमन्त्र से उसमें स्वर्ण का योजन करे। फिर मन्त्र में जितने अक्षर हैं, उतने लाख (कलियुग में चौगुना - कलौ चतुर्गुणं प्रोक्तं) जप वज्र के समान (बिना हिले डुले, एक आसन पर) करके जप का दशांश वज्रकुण्ड* में घी आदि (हव्य) से हवन करे।

*कुण्ड हेतु वज्रलेप का वर्णन वाराही संहिता में देखा जा सकता है।

ततः सिद्धो भवेद्वज्रस्तेन शत्रूञ्जयेन्नृपः।
एवं नित्यन्तु मन्देहराक्षसान्नाशयाम्यहम्॥१०९॥
पुनस्त्वग्रदिने धर्मराजस्य वरगौरवात्।
स्वस्थीभूत्वा च मां हन्तुमुद्यता मन्दबुद्धयः॥११०॥

फिर वज्र के सिद्ध हो जाने पर राजा शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार से मैं प्रतिदिन मन्देह राक्षसों का नाश करता हूँ। वे मन्दबुद्धि पुनः अगले दिन यमराज के वरदान के कारण स्वस्थ होकर मुझे मारने के लिए तत्पर हो जाते हैं।

द्विजातयस्तु सन्ध्यायां प्रक्षिपन्त्युदकाञ्जलिम् ।
दह्यन्ते तेन मन्देहा वज्रीभूतेन वारिणा॥१११॥
सन्ध्या तस्मात्प्रकर्तव्योदयास्ते मयि सङ्गते।
सन्ध्यार्घ्यबलमुद्दिश्य भासयामि चराचरम्॥११२॥

द्विजातिजन सन्ध्या के समय जो अर्घ्यदान करते हैं, उस वज्रीभूत जल से मन्देह दग्ध हो जाते हैं। अतएव मेरे उदय एवं अस्त होने के समय सन्ध्या करनी चाहिए क्योंकि सन्ध्या के बल का आश्रय लेकर ही मैं चराचर जगत् को प्रकाशित करता हूँ।

॥इति सूर्यरहस्ये सूर्यनिग्रहसंवादे वैशाखाधिकारः॥

॥इस प्रकार सूर्यरहस्य में सूर्य और निग्रहाचार्य के संवाद के अन्तर्गत वैशाखाधिकार पूर्ण हुआ॥

सूर्यरहस्य - तृतीय अधिकार

॥अथ ज्येष्ठाधिकारः॥

सूर्य उवाच
तेजसो मे न सङ्ख्यानमसङ्ख्याताश्च रश्मयः।
कार्यभेदेन तत्रापि सप्ताख्याताः प्रधानतः॥०१॥
सुषुम्णा प्रथमा ज्ञेया हरिकेशो द्वितीयकः।
विश्वकर्मा तृतीयश्चापरा विश्वश्रवा तथा॥०२॥
सम्पद्वसुः पञ्चमी च षष्ठ्यर्वावसुसंज्ञिका।
सप्तमी च स्वराड्डुक्ता प्रधाना रश्मयो मम॥०३॥

सूर्यदेव ने कहा - मेरे तेज की निश्चित सङ्ख्या (परिमाण) नहीं है। मेरी किरणें अनन्त हैं। फिर भी कार्यभेद से उनमें सात किरणों को प्रधान रूप से बताया गया है। मेरी पहली किरण का नाम सुषुम्णा है, दूसरी हरिकेश है। तृतीय का नाम विश्वकर्मा एवं चौथी विश्वश्रवा कही गयी है। पांचवीं किरण का नाम सम्पद्वसु एवं छठी को अर्वावसु कहते हैं। सातवीं किरण का नाम स्वराट् कहा गया है, यही मेरी सात प्रधान किरणें हैं।

पुरा खे केवलमहमात्मानं सर्वतो दिशम्।
दृष्ट्वानन्यं बहु स्यामेति विचिन्त्य स्वतेजसा॥०४॥
सप्तभी रश्मिभिश्चैवैक एव सप्तधाभवम्।
सर्वेषु ग्रहनक्षत्रेष्वहमेव प्रकाशितः॥०५॥

पूर्वकाल की बात है, आकाश की सभी दिशाओं में मैंने केवल अपने आप को ही देखा। मेरे अतिरिक्त कोई भी नहीं था, तो मैंने 'बहुत हो जाऊं' ऐसा विचार किया एवं अपने ही तेज से सात रश्मियों के माध्यम से अकेला ही सात प्रकार का हो गया। सभी ग्रहों एवं नक्षत्रों में मैं ही प्रकाशित हूँ।

निग्रह उवाच
कथं ग्रहेषु सर्वेषु भवानेव प्रतिष्ठितः।
आकर्णयितुमिच्छामि विस्तरेण दिवाकर॥०६॥

निग्रहाचार्य ने कहा - हे दिवाकर ! आप ही सभी ग्रहों में किस प्रकार से प्रतिष्ठित हैं, इस बात को मैं विस्तार से सुनना चाहता हूँ।

सूर्य उवाच
अत्रेर्मूर्द्ध्नि कवीर्येण सुषुम्णायाः समाश्रितः।
सहस्रकिरणैर्विप्र यदाहं संस्थितोऽभवम्॥०७॥
तदा सोमस्वरूपेण भूत्वा व्योम्नि प्रतिष्ठितः।
न सूर्यसोमयोर्भेदं तस्मात्पश्यन्ति सज्जनाः॥०८॥

सूर्यदेव ने कहा - हे विप्र ! जब ब्रह्मा के वीर्य से सुषुम्णा (रश्मिसमूह) के एक सहस्र किरणों का आश्रय लेकर मैं अत्रि के मस्तक में स्थित हुआ, तब चन्द्रमा के रूप में (प्रकट होकर) मैं आकाश में प्रतिष्ठित हुआ। यही कारण है कि सज्जन पुरुष

सूर्य एवं चन्द्रमा में भेद नहीं देखते हैं।

त्रिचक्रैर्मण्डितस्तस्य दशैः शुक्लैर्हयोत्तमैः।
रथोऽद्भ्यश्च समुत्पन्नः शतारैश्च समन्वितः॥०९॥
यजुश्चण्डमनाश्चैव वृषो वाजी नरो हयः।
गविष्णुरिति विख्यातो हंसो व्योमो मृगस्तथा॥१०॥
इत्येते नामभिः सर्वे दश चन्द्रमसः स्मृताः।
नक्षत्राधिपतिं देवं वहन्ति सह पितृभिः॥११॥

उस चन्द्रमा का रथ जल से उत्पन्न है, तीन चक्कों वाला, दश उत्तम घोड़ों से जुता एवं सौ अरों से युक्त है। यजुः, चण्डमना, वृष, वाजी, नर, हय, गविष्णु, हंस, व्योम एवं मृग, ये नामों से चन्द्रमा के दश घोडे प्रसिद्ध हैं। ये सभी पितरों के साथ नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा का वहन करते हैं।

दक्षवीर्यं समाश्रित्य हरिकेशस्य तेजसः।
सहस्रकिरणैर्विप्र यदाहं व्यापितोऽभवम्॥१२॥
तदाभिजिद्युतं नक्षत्रव्यूहमष्टविंशतिम्।
धृत्वा वपुश्च नभसः स्थितोऽहं राशिमण्डले॥१३॥
सर्वौषधीश्च पुष्णामि नक्षत्रैरिन्दुरूपधृक्।
मम विश्वात्मनोऽङ्गानि नक्षत्राणि न संशयः॥१४॥

हे विप्र ! दक्ष के वीर्य का आश्रय लेकर हरिकेश (रश्मिसमूह) की एक सहस्र किरणों के माध्यम से जब मैं व्यापित हुआ तो अभिजित् के साथ अट्ठाईस नक्षत्रों का शरीर धारण करके आकाश के राशिमण्डल में स्थित हुआ। चन्द्रमा का शरीर शरीर धारण करके, नक्षत्रों की सहायता से मैं सभी औषधियों को पुष्ट करता हूँ। मेरे विश्वरूप के ये नक्षत्र अङ्ग हैं, इसमें संशय नहीं है।

अग्नेर्मूर्द्ध्नि महादेवस्य वीर्येण यदाभवम्।
सम्पद्वसोश्च नवभिः संस्थितः किरणैर्द्विज॥१५॥
तदाहं लोहिताभासो मङ्गलेति प्रकीर्तितः।
पुरा दत्तस्तु मेदिन्यै महादेवेन धीमता॥१६॥
शातकौम्भमयोऽष्टाश्वैर्युक्तस्तस्य रथोत्तमः।
सर्वत्रगैर्निरालस्यैः सरथैरग्निसम्भवैः॥१७॥

हे द्विज ! महादेव के वीर्य के माध्यम से जब मैं अग्नि के ऊपर सम्पद्वसु (रश्मिसमूह) की नौ किरणों के द्वारा स्थित हुआ, तब लाल रङ्ग की प्रभा वाला मैं मङ्गल ग्रह के नाम से कहा गया। बुद्धिमान् महादेव के द्वारा मुझे पृथ्वी देवी को (पुत्ररूप से) प्रदान कर दिया गया। उस (मङ्गल) का रथ सोने का बना हुआ है। उसमें सर्वत्र विचरण करने वाले आलस्यरहित आठ घोड़े जुते हुए हैं, जो रथ के साथ ही अग्नि से उत्पन्न हुए थे।

विष्णोर्वीर्येण शशिनोऽभवं मूर्द्ध्नि यदा स्थितः।
बुध उक्तस्तदा पञ्चकिरणैर्विश्वकर्मणः॥१८॥
हरिताभः क्वचित्पिङ्गो रथस्थो जलसन्निभे।
गच्छत्यस्तं मया सार्द्धं न सराशिस्थितोऽपि सः॥१९॥

विष्णु के वीर्य के माध्यम से जब मैं विश्वकर्मा (रश्मिसमूह) की पांच किरणों के द्वारा चन्द्रमा के ऊपर स्थित हुआ, तब मुझे बुध कहा गया। वह बुध हरे और कुछ पीले रङ्ग की आभा वाला है एवं जल के समान (निर्मल एवं शुभ्र) वर्ण वाले रथ पर स्थित है। मुझ सूर्य के साथ एक राशि में होने पर भी वह अस्त नहीं होता है।

विष्णोर्वीर्येणाङ्गिरसोऽभवं मूर्द्ध्नि यदा स्थितः।
अर्वावसोर्द्वादशैश्च किरणैः सुमहोज्ज्वलैः॥२०॥
तदा बृहस्पतिरित्युक्तोऽहं ज्योतिर्विशारदैः।

सर्वशास्त्रोपदेष्टा च राशावब्दं स तिष्ठति॥२१॥
देवतानां स आचार्योऽब्जैरष्टैः संयुते हयैः।
रथे स्वर्णमये स्थित्वा याति पीतो महामतिः॥२२॥

विष्णु के वीर्य के माध्यम से जब मैं अर्वावसु (रश्मिसमूह) की महान् प्रकाश वाली बारह किरणों के द्वारा अङ्गिरा के ऊपर स्थित हुआ तब ज्यौतिष् शास्त्र को जानने वालों ने मुझे 'बृहस्पति', ऐसा कहा। वे बृहस्पति सभी शास्त्रों का उपदेश करने वाले हैं एवं एक राशि में एक वर्ष तक रहते हैं। देवताओं के गुरु हैं, पीले रङ्ग के, महान् मति वाले हैं एवं जल से उत्पन्न आठ घोड़ों से युक्त स्वर्णमय रथ में बैठकर भ्रमण करते हैं।

महादेवस्य वीर्येण भृगोर्मूर्द्ध्नि यदाभवम्।
षोडशैर्विश्वश्रवसः किरणैर्भार्गवेत्यहम्॥२३॥
शुक्रस्तु दानवाचार्यः शुभ्रप्रस्तरसन्निभः।
नाम्ना ख्यातो दशैरश्वैर्व्रजाम्याकाशमार्गतः॥२४॥

महादेव के वीर्य के माध्यम से जब मैं विश्वश्रवा (रश्मिसमूह) की सोलह किरणों के द्वारा भृगु के ऊपर स्थित हुआ, तब स्फटिकमणि के समान शुभ्र आभा वाला मैं भार्गव, दानवों का गुरु, शुक्र आदि नामों से विख्यात हुआ। उस स्वरूप में मैं दश घोड़ों से (युक्त रथ के द्वारा) आकाशमार्ग में गमन करता हूँ।

यदाभवं संस्थितोऽहमात्मनस्तेजसात्मनि।
स्वराजोऽष्टैश्च किरणैर्बभूवाहं सुतः स्वयम्॥२५॥
तदा शनैश्चर इति नाम्ना लोके प्रतिष्ठितः।
दुग्धकुन्देन्दुश्वेताभस्तथा सर्वाङ्गसुन्दरः॥२६॥

जब मैं अपने ही तेज के माध्यम से स्वराट् (रश्मिसमूह) की आठ किरणों का आश्रय लेकर अपने ही ऊपर स्थित हुआ, उस समय मैं अपना ही पुत्र बन गया। तब दुग्ध-कुन्दपुष्प-चन्द्रमा के समान श्वेतवर्ण एवं सभी अंगों से सुन्दर रूप में मैं शनैश्चर नाम से लोक में प्रतिष्ठित हुआ।

मां नियोज्य तु सप्तैते ग्रहा भान्ति ममेच्छया।
खेचरेषु च सर्वेष्वहमेवं सुप्रतिष्ठितः॥२७॥
विप्रचित्तेस्तु वीर्येण दानवस्य व्यजायत।
सैंहिकेयश्च स्वर्भानुर्दानवानां प्रजापतिः॥२८॥
आब्रह्मतलपर्यन्तं दिदीपे प्रभयात्मनः।
क्रमणेऽमृतपानस्य हरिणा स निपातितः॥२९॥

मुझे जोड़कर ये सात ग्रह हैं जो मेरी इच्छा से प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार सभी खेचरों में मैं अच्छी प्रकार से प्रतिष्ठित हूँ। दनुपुत्र विप्रचित्ति के वीर्य से उत्पन्न सिंहिकापुत्र स्वर्भानु, जो दानवों का प्रजापति था, वह अपनी ही प्रभा के द्वारा ब्रह्मलोक से पातालपर्यन्त प्रकाशित होता था। अमृतपान के समय श्रीहरि के द्वारा वह मारा गया।

सोऽपि छायाग्रहत्वञ्च लेभे पीयूषगौरवात्।
सहस्रशः केतवश्च ततस्तस्यानुगामिनः॥३०॥
नाकाशे सर्वदालोक्याः केतवश्च सराहवः।
उत्पाते ग्रहणे वापि दृष्टा लोकभयङ्कराः॥३१॥

किन्तु अमृत के प्रभाव से (मृत्यु को न प्राप्त होकर) छायाग्रह की स्थिति को प्राप्त हो गया। सहस्रों केतु भी उसके अनुगामी बने। राहु के साथ ये केतु आकाश में सदैव दिखाई नहीं पड़ते। उत्पात या ग्रहण आदि के समय लोकों को भय प्रदान करने वाले ये दिखाई देते हैं।

निग्रह उवाच
देशिकेनोपदिष्टोऽहं पादहीनः शनैश्चरः।

विकृताक्षस्तथा कृष्णवर्णः शङ्के मुहुर्मुहुः॥३२॥
भवताप्यधुना प्रोक्तः शनिः सर्वाङ्गसुन्दरः।
श्वेतवर्ण इति श्रुत्वा जायते मे विडम्बनम्॥३३॥
कथं स्रम्भे भवद्वाक्ये गुरोर्वाक्येऽपि भास्कर।
तस्मान्मे संशयं छिन्धीक्षेऽपरं नैव बोधकम्॥३४॥

निग्रहाचार्य ने कहा - मुझे मेरे गुरु के द्वारा यह उपदेश किया गया था कि शनैश्चर की दृष्टि विकृत है, उनके चरण नहीं हैं, वे कृष्णवर्ण के हैं, अतः मुझे बारम्बार शङ्का हो रही है। क्योंकि अभी आपने शनि का स्वरूप श्वेत तथा सर्वाङ्गसुन्दर बताया है, अतएव यह सुनकर मुझे भारी भ्रम हो रहा है। हे भास्कर ! मैं गुरु के वचनों तथा आपके वचनों में भी किस प्रकार विश्वास करूँ ? अतएव मेरे संशय का निवारण करें क्योंकि आपके अतिरिक्त दूसरा बोधक मुझे नहीं दिखता।

सूर्य उवाच
पुरा दृष्ट्वा तपस्यन्तीमनन्तस्य प्रियां सतीम्।
रेवतीं कामसन्तप्ता ग्रहाः सर्वे समाययुः॥३५॥
तामुद्वाहोत्सुकां ज्ञात्वा यावच्छेषः स्मरिष्यति।
विवेणिम वयं तावदेषास्मभ्यं द्वरेदिति॥३६॥

सूर्यदेव ने कहा - पूर्वकाल की बात है, अनन्तदेव की साध्वी प्रिया रेवती को तपस्या करते हुए देखकर सभी ग्रह कामपीडित होकर उनके पास आये। उन (रेवती) को विवाह की इच्छा से तपस्या करता हुआ जानकर ग्रहों ने आपस में विचार किया कि जबतक शेषनाग इससे प्रसन्न होकर इसका स्मरण करेंगे, उससे पहले ही किसी उपाय से हम इसका वरण कर लें।

शेषं विहाय मां वृश्य जगदुस्तां ग्रहोत्तमाः।
जगच्चक्षुरहं सूर्यः प्रचण्डाशुर्निशान्तकः॥३७॥
सुधामयश्चौषधीशो नक्षत्रेशो निशाकरः।
कामिनीरतिदोऽहं वै भज मां चारुलोचने॥३८॥

तब सभी उत्तम ग्रहों ने उससे यह कहा कि तुम शेषनाग को छोड़कर मेरा वरण कर लो। मैं संसार को दृष्टि प्रदान करने वाला, प्रचण्ड किरणों वाला, रात्रि का अन्त करने वाला सूर्य हूँ (मेरा वरण कर लो)। मैं अमृतमय, औषधियों का स्वामी, नक्षत्रों का अधिपति, रात्रि का कारक, कामिनियों को रतिसुख प्रदान करने वाला चन्द्रमा हूँ। हे सुन्दर नेत्रों वाली ! तुम मेरा चयन कर लो।

धरेयं जननी मेऽस्त्यहं भूपानां जयप्रदः।
मङ्गलं भज मां भद्रे मम पर्यङ्कशायिनी॥३९॥
बुधोऽहं बुद्धिमान् वीरः पण्डितानां कृपाकरः।
विसृज्यैतान् ग्रहान्सर्वान् त्वं रमस्व मया सह॥४०॥

यह धरती मेरी माँ है, मैं राजाओं को विजय प्रदान करने वाला मङ्गलग्रह हूँ। हे भद्रे ! मेरी शय्या में शयन करने वाली बनो, मुझे स्वीकार करो। मैं बुद्धिमान् एवं पराक्रमी बुध हूँ। मैं पण्डितों पर कृपा करता हूँ। तुम इन सभी ग्रहों को छोड़कर मेरे साथ रमण करो।

वाक्पतिर्जीवनाथोऽहं देवाचार्यो बृहस्पतिः।
साक्षाज्जगद्गुरुर्लोके मामेकं त्वं पतिं कुरु॥४१॥
न जीवं वृश्य मां भद्रे स्वश्रेयस्तु विचारय।
दानवानां गुरुः काव्यो भार्गवोऽहं महाद्युतिः॥४२॥

मैं वक्तृत्वशक्ति का स्वामी, प्राणशक्ति का अधिपति, देवगुरु बृहस्पति हूँ, मैं संसार में साक्षात् जगद्गुरु हूँ, तुम केवल मुझे ही अपना पति बनाओ। नहीं नहीं, जीव (बृहस्पति) का वरण मत करना, हे कल्याणि ! अपना भला सोचते हुए मेरा वरण करो। मैं महान् प्रकाश वाला, दानवों का गुरु, भृगुपुत्र काव्य (शुक्र) हूँ।

शनैश्चरोऽहं बलवान् ग्रहाणामुपरि स्थितः।
लोकभस्मकरः साक्षान्मां वृणीष्वाविचारयन्॥४३॥
एवं ग्रहवचः श्रुत्वा रेवती सा शशाप ह।
वावर्तिष्ये न शेषाद्वेतरान् युष्मान् ग्रहेश्वराः॥४४॥

मैं बलवान् शनैश्चर हूँ जो सभी ग्रहों के ऊपर स्थित रहता है। मैं सभी लोकों को भस्म कर सकता हूँ, तुम्हारे सामने ही खड़ा हूँ, तुम बिना कुछ अधिक विचार किए मेरा वरण कर लो। इस प्रकार से ग्रहों के वचन को सुनकर रेवती ने उन्हें शाप दे दिया और कहा कि मैं शेषनाग के अतिरिक्त आप ग्रहेश्वरों को वरण नहीं करूँगी।

त्वं दन्तहीनो भव कश्यपात्मज
निशाकर त्वं भव राजयक्ष्मवान्।
हे पार्थिव त्वं भव मर्कटाननो
शून्यं भवेद्वारदिनञ्च ते बुध॥४५॥
स्त्रीसंज्ञकोऽत्रैव भव बृहस्पते
त्वमाशु काणो भव चक्षुषा कवे।
शनेऽसितस्त्वं भव वेल्लितेक्षणः
पद्भ्यां विहीनश्च कुतैलभक्षकः॥४६॥

हे कश्यपपुत्र सूर्य ! तुम्हारे दांतों से रहित हो जाओ। हे रात्रि के कारक चन्द्रमा ! तुम राजयक्ष्मा रोग से ग्रस्त हो जाओ। हे पृथ्वीपुत्र मङ्गल ! तुम्हारा मुख बन्दर के समान हो जाए। हे बुध ! तुम्हारे दिन का प्रभाव शून्य (शुभाशुभरहित) हो जाए। हे बृहस्पते ! इसी समय तुम्हारी स्त्रीसंज्ञा हो जाए। हे शुक्र ! तुम शीघ्र ही एक आंख से काणे हो जाओ। हे शनैश्चर ! तुम कृष्णवर्ण के हो जाओ, तुम्हारी दृष्टि वक्र हो जाए, तुम पैरों से रहित एवं कुतैल (सरसों का तेल) पीने वाले बन जाओ।

पुरा रुद्रस्तु दक्षेणाहङ्कारेणावमानितः।
गात्रं तत्याज योगेन सती सत्रे शिवप्रिया॥४७॥
तस्माद्दक्षसवे पूर्वे वीरभद्रेण धीमता।
पूषादित्यस्वरूपस्था मम दन्ता निपातिताः॥४८॥
शिवचोदनया भद्रः सह रुद्रस्य किङ्करैः।
सत्रं विध्वंसयामास रुषा दाक्षायणीमृतेः॥४९॥

पूर्वकाल में अहङ्कार के वशीभूत दक्ष प्रजापति के द्वारा शिवजी अपमानित किए गये थे, अतएव उनकी प्रिया देवी सती ने यज्ञ में योगबल से अपने शरीर का परित्याग कर दिया। इस कारण से दक्ष प्रजापति के यज्ञ में बुद्धिमान् वीरभद्र के द्वारा पूषा नाम के आदित्यरूप में स्थित मेरे दांत नष्ट कर दिए गये थे। दक्षपुत्री सती के मरण से उत्पन्न क्रोध के कारण शिवजी की प्रेरणा से वीरभद्र ने रुद्रगणों के साथ मिलकर यज्ञ का विध्वंस कर दिया था।

भवः सत्या मृतं देहमुत्थाय विरहातुरः।
ननर्त त्रिषु लोकेषु विश्वसन्त्रासहेतवे॥५०॥
हेतिराज्ञा मुकुन्देन सतीदेहस्तु खण्डितः।
शक्तिपीठस्वरूपेण स्थापितो धरणीतले॥५१॥

तब भगवान् शिव सती के मृत देह को उठाकर विरह वेदना से व्यथित हो संसार को पीडित करने के लिए तीनों लोकों में नृत्य करने लगे। तब चक्रराज सुदर्शन के द्वारा भगवान् विष्णु ने सतीदेवी के शरीर के टुकड़े टुकड़े कर दिए जिन्हें पृथ्वी पर शक्तिपीठों के रूप में स्थापित किया गया।

खण्डितञ्च सतीगात्रं ज्ञात्वा देवो महेश्वरः।
उच्चै रोदितुमारेभे स जायाविरहातुरः॥५२॥
त्रिनेत्रेभ्यस्तदा पञ्चवक्त्रेभ्यश्चाश्रुबिन्दवः।
निर्याता उष्णतापाश्च प्रदहन् सर्वतो दिशः॥५३॥

सती का शरीर खण्डित हो गया है, यह जानकर उन महेश्वर देव ने अपनी पत्नी के विरह से व्याकुल होकर जोर जोर से रोना प्रारम्भ किया। उनके पांचों मुखों के तीनों नेत्रों से गर्म गर्म आंसू निकलने लगे जो सभी दिशाओं को जलाने लगे।

पुनर्ब्रह्महरीन्द्रैराश्वासितस्त्रिपुरान्तकः।
किन्त्वश्रुबिन्दवस्तस्य प्रदेहुस्सचराचरम्॥५४॥
त्रिदशाः प्रार्थयामासुस्तदा गत्वा शनैश्चरम्।
जगत्त्रायस्व भो देव सूर्यपुत्र महाबल॥५५॥

फिर ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवताओं के द्वारा सान्त्वना दिए जाने पर त्रिपुरासुर का अन्त करने वाले भगवान् शिव तो शान्त हो गए किन्तु उनके अश्रुबिन्दु सभी चराचर प्राणियों को जलाते ही रहे। इसके बाद सभी देवताओं ने मिलकर शनैश्चर के पास जाकर प्रार्थना की, कि हे महाबली देवता सूर्यपुत्र ! आप इस संसार की रक्षा करें।

एवं देववचः श्रुत्वा स सौरिः कृपयान्वितः।
पपावश्रूणि रुद्रस्य लोकानुग्रहकाङ्क्षया॥५६॥
रुद्रसन्तापजातैश्चाश्रुभिस्तस्य कलेवरम्।
प्रदग्धमसिताभञ्चाभवच्छापस्य गौरवात्॥५७॥

इस प्रकार देवताओं की वाणी को सुनकर सूर्यपुत्र दया से भर गये एवं उन्होंने संसार पर अनुग्रह करने की इच्छा से रुद्रदेव के आंसुओं को पी लिया। भगवान् रुद्र के कष्ट से निकले उन आंसुओं के कारण उनका शरीर जल गया एवं वे काले हो गए, जैसा कि पहले उन्हें शाप भी मिल चुका था।

पुनः संयमनीं गत्वा चतुर्दिक्षु ववाम सः।
वमनैस्तस्य सञ्जाता तत्र वैतरणी सरित्॥५८॥
रुधिरश्लेष्मयुक्ता च क्षारा दुर्गन्धसंयुता।
पुण्यात्मभिरदृष्टा सा पापिनां भयदायिनी॥५९॥

फिर संयमनीपुरी में जाकर उन्होंने चारों दिशाओं में वमन किया। उनकी उल्टी से वहाँ वैतरणी नदी बन गयी। खून और कफ से युक्त वह नदी खारी और दुर्गन्ध से भरी हुई है। पुण्यात्माजन उसे नहीं देख सकते, वह केवल पापियों को भय देती है।

एवं शनैश्चरो देवो गौरोऽपि सुन्दरोऽपि सन्।
जातः पादविहीनश्च कृष्णवर्णस्तु वक्रदृक्॥६०॥
रुद्राश्रुतापनिर्दग्धः खण्डिताङ्गस्वरूपवान्।
तैलदानेन विश्रान्तिं याति हृष्टः शनैश्चरः॥६१॥
महान्तो नैव ध्यायन्ति सुरूपमथवा सुखम्।
लोकानां कष्टनाशायोद्यतास्ते पुण्यकीर्तयः॥६२॥

इस प्रकार से देवता शनैश्चर गोरे और सुन्दर होने पर भी पैरों से हीन, काले एवं वक्र दृष्टि वाले हो गये। रुद्रदेव के आंसुओं के द्वारा जले एवं टूटे हुए शरीर वाले भगवान् शनि को तेल का दान करने से आराम मिलता है एवं वे प्रसन्न होते हैं। जो महान् व्यक्ति होते हैं, अपने अपने सुन्दर रूप या सुख की चिन्ता नहीं करते। वे पुण्यकीर्ति सदैव संसार के कष्ट को दूर करने के लिए तत्पर रहते हैं।

ग्रहाणां यत्स्वरूपं तद्वर्णयामि निशामय।
मयारुणाय कथितं पुराकाले महात्मने॥६३॥
अहं शुभाननो दिव्यः सहस्रकवचावृतः।
एकचक्ररथे हैमे षडार उत्तमे स्थितः॥६४॥

ग्रहों का जो स्वरूप है, उसे वर्णन करता हूँ, ध्यान से सुनो। पूर्वकाल में इसे मेरे द्वारा महात्मा अरुण के लिए कहा गया था। मैं सुन्दर मुख वाला, दिव्य, एक सहस्र कवचों से घिरा हुआ, एक चक्के और छः अरों वाले उत्तम स्वर्णमय रथ पर बैठा हुआ हूँ।

पद्मद्वयधरो बाहुभिश्चतुर्भिः प्रकाशवान्।
तेजो मम पुरा त्वष्टा चक्षार सञ्ज्ञयार्थितः॥६५॥
शशाकाङ्घ्रिस्थितं तेजो न वै क्षरितुमद्भुतम्।
तस्मान्न मे पदौ ध्येयौ प्रतिमास्वप्यकल्पयेत्॥६६॥
चरणस्थञ्च मे तेजो विबुधैरपि दुःसहम्।
मूर्तौ कृत्वा नरः कुष्ठी जायते निर्धनस्तथा॥६७॥

मैंने दो कमल धारण किए हैं, चार भुजाओं से युक्त एवं प्रकाशवान् हूँ। पूर्वकाल में संज्ञादेवी के द्वारा प्रार्थना करने पर त्वष्टा ने मेरे तेज का क्षरण करना आरम्भ किया किन्तु (अन्य अङ्गों के बाद) चरणों में स्थित अद्भुत तेज का क्षरण करने में वे समर्थ न हो सके। अतएव मेरे दोनों चरणों का ध्यान अथवा प्रतिमा में उनका चित्रण नहीं करना चाहिए। मेरे चरणों मे जो तेज स्थित है, वह देवताओं के लिए भी असहय है। मेरे चरणों को प्रतिमा (अथवा चित्र) में बनाने वाला व्यक्ति कुष्ठरोग से पीडित एवं निर्धन हो जाता है।

सोमः श्वेतवपुर्ज्ञेयः श्वेतवस्त्रधरस्तथा।
शीतः प्रकाशवदनः कुमुदद्वयधारकः॥६८॥
सिंहध्वजश्च विप्राणामौषधीनां पतिस्तथा।
नक्षत्राधिपतिश्चन्द्रः शातकौम्भरथे स्थितः॥६९॥

चन्द्रमा को श्वेतवर्ण के शरीर वाला जानना चाहिए, उन्होंने श्वेत वस्त्र धारण किए हैं। उनका स्वरूप प्रकाशित एवं ठंडा है तथा वे दो कुमुदपुष्पों को धारण करते हैं। वे सोने के बने रथ पर स्थित हैं जिसमें सिंह के चिहन से युक्त पताका लगी हुई है। वे ब्राह्मणों, औषधियों तथा नक्षत्रों के स्वामी हैं।

पार्थिवो हविभुक्प्रख्यो रथे स्वर्णमये स्थितः।
त्रिकोणे संस्थितो रक्तः किरीटी द्विभुजस्तथा॥७०॥
पीताम्बरधरो ध्येयो बुधः स्वर्णरथे स्थितः।
कार्यार्थसिद्धिदः सौम्यो बुद्धिदो रोगकृन्तनः॥७१॥

पृथ्वीपुत्र मङ्गल का वर्ण अग्नि के समान है, वे स्वर्णमय रथ पर स्थित हैं, त्रिकोणमण्डल पर विराजित हैं, लाल रङ्ग के हैं, मुकुट धारण करने वाले एवं दो भुजाओं से युक्त हैं। बुध को स्वर्ण से बने रथ के ऊपर स्थित एवं पीले रङ्ग के वस्त्रों को धारण करने वाला जानना चाहिए। वे चन्द्रमापुत्र सौम्य तथा कार्यों में सिद्धि देने वाले वाले, बुद्धि प्रदान करने वाले एवं रोगों का नाश करने वाले हैं।

प्रतप्तस्वर्णवर्णाभो द्विभुजश्च बृहस्पतिः।
पुस्तकाक्षधरो देववृन्दैर्वन्द्यो महामतिः॥७२॥
भार्गवः सितगात्रश्च नीतिशास्त्रोपदेशकः।
शुभ्रवस्त्रधरः शुक्रो दानवानां पुरोहितः॥७३॥

तपे हुए सोने के समान (उज्ज्वल पीत) वर्ण वाले, दो भुजाओं से युक्त बृहस्पति हैं। वे अपने हाथों में पुस्तक तथा माला को धारण करते हैं, महान् बुद्धि से युक्त तथा देवताओं के समूहों से वन्दित हैं। भृगुपुत्र शुक्राचार्य श्वेतवर्ण के शरीर वाले, नीतिशास्त्र के उपदेष्टा, श्वेतवस्त्र धारण करने वाले एवं दानवों के पुरोहित हैं।

वक्रदृष्टिस्तथा कृष्णः पादहीनश्च दुःस्वरः।
मन्दगोऽधोमुखश्चैव शनिर्लौहरथे स्थितः॥७४॥
छायाग्रहौ तथार्द्धाङ्गौ विचित्रघटनाकरौ।
कृष्णधूम्रौ हयैरष्टैरावृते संस्थितौ रथे॥७५॥

टेढ़ी दृष्टि, काला रङ्ग, पैरों से हीन, विकृत स्वर वाले, धीरे चलने वाले, नीचे की ओर मुख किए शनि लोहे के बने रथ पर स्थित हैं। दोनों छायाग्रह (राहु एवं केतु) का आधा शरीर (राहु का केवल मस्तक एवं केतु का केवल धड़) ही है। ये विचित्र

घटनाओं के निमित्त हैं। ये काले और धूमिल रङ्ग के हैं तथा आठ घोड़ों से जुते रथ पर बैठते हैं।

त्वष्टुः पुत्री तु या सञ्ज्ञा सा मे भार्येति कथ्यते।
ऋग्जिह्वस्य सुता छाया निक्षुभेति निगद्यते॥७६॥
सञ्ज्ञाछाये च मे जाये राज्ञी या निक्षुभा श्रुतौ।
कथिते द्वे तथैकैवान्तरं तत्त्वे न विद्यते॥७७॥

त्वष्टा की जो संज्ञा नाम की पुत्री थी, उसे मेरी पत्नी कहा जाता है। ऋग्जिह्व ऋषि की पुत्री निक्षुभा, जिसे छाया भी कहा जाता है तथा वेदों में संज्ञा को राज्ञी नाम से भी बताया गया है। संज्ञा और छाया ये दोनों मेरी पत्नी हैं। दो होने पर भी ये एक ही हैं, तत्त्वतः इनमें भेद नहीं है।

पुत्रौ मे दस्रनासत्यावश्विनौ विबुधोत्तमौ।
श्रुतश्रवा च सावर्णिर्मनुरग्रे प्रकल्पितः॥७८॥
अस्मिन्मन्वन्तरे श्राद्धदेवो वैवस्वतो मनुः।
अन्तकश्चैव कालिन्दी यमेति यमुनेति च॥७९॥

देवताओं में श्रेष्ठ नासत्य एवं दस्र, ये दोनों अश्विनीकुमार मेरे पुत्र हैं। श्रुतश्रवा नामक मेरे पुत्र अगले मन्वन्तर में सावर्णि नामक मनु होंगे। मेरे श्राद्धदेव नामक पुत्र इस वर्तमान मन्वन्तर में वैवस्वत मनु हैं। अन्तक नाम वाले मेरे पुत्र यमराज हैं तथा कालिन्दी नाम की मेरी पुत्री यमुना नदी है।

कथिता तपती पुत्री मम संवरणप्रिया।
सर्वलोकगता यस्य कीर्तिस्त्रैलोक्यपावनी॥८०॥
तं सुतं श्रुतकर्माणं विद्धि तात शनैश्चरम्।
रेवन्तश्चैव सुग्रीवः कौन्तेयश्च मगस्तथा॥८१॥
बहूनन्यान् प्रजान् विद्धि सर्वे विश्रुतकीर्तयः।
सङ्क्षेपेण मया प्रोक्तं मे कुटुम्बस्य वर्णनम्॥८२॥

मेरी तपती नाम की पुत्री राजा संवरण की पत्नी बतायी गयी है। हे तात ! तीनों लोकों को पवित्र करने वाली जिसकी कीर्ति सभी लोकों में व्याप्त है, ऐसे मेरे श्रुतकर्मा नाम वाले पुत्र को तुम शनैश्चर जानो। और भी रेवन्त, सुग्रीव, कुन्तीपुत्र (कर्ण), मग आदि मेरे अनेकों सन्तान हैं, उन सबकी कीर्ति बहुत प्रसिद्ध है। इस प्रकार मैंने सङ्क्षेप में अपने कुटुम्ब का वर्णन किया है।

॥इति सूर्यरहस्ये सूर्यनिग्रहसंवादे ज्येष्ठाधिकारः॥

॥इस प्रकार सूर्यरहस्य में सूर्य और निग्रहाचार्य के संवाद के अन्तर्गत ज्येष्ठाधिकार पूर्ण हुआ॥

महामन्थानभैरवतन्त्र के यज्ञखण्ड में वर्णित चतुर्युगावतार के अन्तर्गत चतुष्पीठपरम्परा का निग्रहमण्डल

उड्डीयान पीठ का निग्रहमण्डल (सत्ययुग में कार्यरत)

पराषट्क - उडाम्बा, रक्ता, काली, करालिनी, कालसङ्कर्षिणी, कुब्जिका

भैरवाष्टक - निष्कल, असिताङ्ग, संवर्त, आनन्दभैरव, निस्तरङ्ग, कराल, अमोघ, खेचर

योगिन्यष्टक - जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, नन्दा, भद्रा, भीमा, श्रीदेवी

वीराष्टक - कराल, कन्द, विमल, रुद्राङ्ग, कमलेक्षण, विचित्र, चित्र, भानु

दूत्यष्टक - शिवदूती, आहुत्यग्निदूती, कोटराक्षी, कपालिनी, मुक्तकेशी, देवदूती, तीक्ष्णदंष्ट्रा, भयङ्करी

क्षेत्रपालाष्टक - काल, डामर, लम्बोष्ठ, दंष्ट्री, दुन्दुभि, दारुण, दुर्धर, रौद्र

चेटकाष्टक - चञ्चल, भासुर, भीम, लम्पट, छद्मकारक, महाक्रुद्ध, व्यक्त, ऊर्ध्वकेश

जालन्धर पीठ का निग्रहमण्डल (त्रेतायुग में कार्यरत)

पराषट्क - जालाम्बा, तीव्रा, तीक्ष्णा, चण्डिका, अघोरा, अमरा

भैरवाष्टक - रुरु, काल, बहुरूप, प्रचण्डक, त्र्यम्बक, त्रिपुरान्त, ऊर्ध्वकेश, अघोर

योगिन्यष्टक - दिव्ययोगिनी, महायोगिनी, सिद्धयोगिनी, गणेश्वरी, शाकिनी, कालरात्रि, ऊर्ध्वकेशी, रेवती

वीराष्टक - अनन्त, ज्वाल, जृम्भण, स्तम्भन, मोहन, स्तम्भकारी, सङ्कर्षण, विघ्नान्तक

दूत्यष्टक - जम्भनी, स्तम्भनी, क्षोभणी, मोहनी, सङ्कर्षणी, भ्रामणी, द्रावणी, भीमा

क्षेत्रपालाष्टक - अग्निवेताल, जयन्त, ज्वालामुख, भीमानन्द, घोर, मेघानन्द, महाकाल, खग

चेटकाष्टक - अलि, चीवर, रक्ताक्ष, कृष्ण, पक्ष, खाटक, सोमद, धूमक

पूर्णगिरि पीठ का निग्रहमण्डल (द्वापरयुग में कार्यरत)

पराषट्क - पूर्णाम्बा, पुलिन्दिनी, ज्येष्ठा, चण्डा, चक्रेशी, क्लिन्ना

भैरवाष्टक - चन्द्रपूर्ण, तृप्त, त्रिशिर, त्रिशिख, त्रिमूर्ति, त्रैलोक्य, डामर, मार्त्तण्ड

योगिन्यष्टक - गम्भीरा, भीषणी, महानन्दा, ज्वालामुखी, अन्ये गोपिताः

वीराष्टक - छद्मक, प्रमाथी, प्रकृष्ट, प्रमोदी, शङ्कुकर्ण, गोकर्ण, संवत्सर, महोत्सव

दूत्यष्टक - लोकदूती, महामाला, ललिता, सागरा, लङ्कदूती, लम्पा, भीमा, उच्छुष्मा

क्षेत्रपालाष्टक - अग्निजिह्व, प्रलम्ब, विद्याधिप, विषेश्वर, सुमुख, महामुण्ड, महोदर, पिनाकी

चेटकाष्टक - पुलिन्द, शवर, उन्मत्त, पलाशन, उलूक, मारीच, सुमत्त, भयङ्कर

कामरूप पीठ का निग्रहमण्डल (कलियुग में कार्यरत)

पराषट्क - कामार्त्ता, रेतसा, त्रिमूर्ति, ऊधिका, नित्या, महोच्छूष्मा

भैरवाष्टक - क्रोधीश, चन्द्रगर्भ, कुन्तीश, अमृतेश्वर, तुम्बुरु, सोमानन्द, त्रिदण्डीश, अर्द्धनारीश

योगिन्यष्टक - विशाला, पार्थिवा, यक्षी, धूर्जटी, विषभक्षिणी, सर्वसिद्धिप्रदा, तुष्टीच्छा, सिद्धिप्रदायकी

वीराष्टक - विमल, विशाल, महांशुक, मृगांशक, मकरध्वज, अनङ्गप्रभ, पद्माक्ष, सर्वविक्रम

दूत्यष्टक - अनङ्गमेखला, अनङ्गमदनातुरा, अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमदना, भुवनपालिका, शशिरेखा, खगवेगा, वायुवेगा

क्षेत्रपालाष्टक - हेरुक, कुमार, कमल, सम्मुखान्तक, कदम्ब, ललित, लम्बोदर, देवसेन

चेटकाष्टक - शङ्खपाल, कङ्काल, विशालक, अजय, विजय, वीरभद्र, रक्ताक्ष, कश्मल

प्रश्न - निग्रहाचार्यों के द्वारा यदि अनुशासनहीनता हो अथवा वे अपने पद एवं शक्ति का ईर्ष्या -द्वेष के कारण दुरुपयोग करने लगेंगे तो उन्हें किससे और क्या दण्ड मिलेगा ?

उत्तर - जैसे श्रीशङ्कराचार्य जी ने "मठाम्नाय महानुशासन" के माध्यम से स्वपरम्परा की मर्यादा को परिभाषित किया है वैसे ही श्रीनिग्रहाचार्य की परम्परा में श्रीनिग्रहेश्वरी देवी की "चतुष्पीठाज्ञापारमेश्वरी" का संविधान चलता है। एक बार यदि किसी व्यक्ति ने आज्ञापारमेश्वरी की प्रतिज्ञा लेकर आज्ञाधारक बनना स्वीकार कर लिया, फिर चाहे वह निग्रहाचार्य हो या निग्रहपुत्र (शिष्यपुत्राः कृतान्वये के अनुशासनानुसार), वह आज्ञाभङ्ग नहीं कर सकता है। निग्रहाचार्यों को अनुशासनहीनता का दण्ड स्वयं भगवान् सर्वशास्ता निग्रहेश्वर एवं भगवती निग्रहेश्वरी के माध्यम से ही मिलता है। दण्ड के रूप में पहले एक चेतावनी और फिर सीधे "मृत्युदण्ड" ही मिलता है, इसमें कोई विकल्प नहीं है किन्तु निग्रहाचार्यों को मिलने वाला मृत्युदण्ड भी निश्चित विधान से अनुशासित है।

उड्डियाणे प्रविष्टो यो वीरो दर्पं करिष्यति॥
दारिद्र्यं मरणं तस्य मासमेकं स जीवति।
जालन्धरे तु यो दर्पं मूढात्मा च करिष्यति॥
तस्करो हनते तस्य नदी वा व्याधिदारुणा।
षण्मासं जीवितं तस्य म्रियते बान्धवैः सह॥
अथवा पूर्णपीठे तु द्वेषं सञ्चरते तु यः।
अहङ्कारञ्च कुरुते अग्निदाहाद्विनश्यति॥
अथवा विषसङ्ग्रामे म्रियते मासपञ्चमे।
कामरूपे सुखासीनः कश्चिद्दर्पं करिष्यति॥
अदृष्टमुद्गराघातः पतते तस्य मूर्द्धनि।
शुष्यते स्वशरीरेण म्रियते पक्षमध्यतः॥
दर्पं कृत्वा तु सुभगः स गुरुर्नरकं व्रजेत्।
तस्मात्तस्य न भुक्तिः (मुक्तः) स्यात्परत्र च न विद्यते॥
तस्माद्दर्पं न कर्तव्यं विद्वेषं न समाचरेत्।
(महामन्थानभैरवतन्त्रे कुमारिकाखण्डे विमलषट्कनिर्णये
कादिभेदे आज्ञापारमेश्वरस्वामिनीमते षष्ठानन्दे)

सत्ययुग के अन्तर्गत उड्डीयान पीठ पर बैठे वीर (निग्रहाचार्य) यदि अपने पद एवं शक्ति का अभिमान करते हुए दुरुपयोग करते हैं तो उन्हें चेतावनी के रूप में पहले भीषण दरिद्रता और फिर एक महीने के भीतर मृत्युदण्ड मिल जाता है। त्रेतायुग के अन्तर्गत जालन्धर पीठ पर बैठे निग्रहाचार्य यदि मूढात्मा हो जायें और अपने पद एवं शक्ति का अभिमान करते हुए दुरुपयोग करने लगें तो चेतावनी के रूप में भीषण रोग और फिर छह महीनों के भीतर डाकुओं के आक्रमण के द्वारा या नदी में डूब कर पूरे परिवार के साथ मृत्यु होने का दण्ड दिया जाता है। द्वापरयुग के अन्तर्गत पूर्णगिरि पीठ पर बैठे निग्रहाचार्य यदि ईर्ष्या द्वेष के कारण अपने पद एवं शक्ति का दुरुपयोग करते हुए भ्रमण करने लगें तो चेतावनी के रूप में युद्धजन्य सङ्कट आदि प्रदर्शित करके पांच महीने की अवधि में युद्ध, अग्नि अथवा विष के माध्यम से उन्हें मृत्युदण्ड दे दिया जाता है। कलियुग के अन्तर्गत कामरूप पीठ में सुखपूर्वक प्रतिष्ठित निग्रहाचार्य यदि अहङ्कार के कारण अपने पद एवं शक्ति का दुरुपयोग करने लगें तो उनके मस्तक पर देवी अपने मुद्गर से प्रहार करती हैं जो दिखाई तो नहीं देता किन्तु उसके प्रभाव से चेतावनी के रूप में आचार्य का शरीर बहुत शीघ्रता से सूखने लगता है, दुबला हो जाता है और पन्द्रह दिनों की अवधि में मृत्यु हो जाती है। जो सौभाग्यशाली व्यक्ति निग्रहाचार्य के रूप में गुरुपद पर बैठकर पदासीन होने का अहङ्कार करता है, वह दण्डित होकर नरक जाता है और वहाँ से उसका उद्धार नहीं होता। अतः अहङ्कार और द्वेष के कारण निग्रहाचार्यों को कोई कार्य नहीं करना चाहिए।

श्रीपूर्वान् भाषयेत् सर्वान् पीठान्ते यान् व्यवस्थितान्।

तेभ्यो लब्धवरो भूत्वा रुद्रलोके महीयते॥
(महामन्थानभैरवतन्त्रे कुमारिकाखण्डे विमलषट्कनिर्णये
कादिभेदे आज्ञापारमेश्वरस्वामिनीमते षष्ठानन्दे)

चतुष्पीठपरम्परा में आचार्यपद पर व्यवस्थित रूप से बैठे सभी जनों के नाम के आगे "श्री" लगाकर ही व्यवहार करना चाहिए। इनकी प्रसन्नता से प्राप्त वरदान के फलस्वरूप व्यक्ति रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है।

निग्रहसम्प्रदाय में उड्डीयान, जालन्धर, पूर्णागिरि और कामरूप, ये चार प्रधान पीठ होते हैं। ये चारों पीठ शाक्तों के अन्य प्रभेदों में भी समान रूप से मान्य हैं। निग्रहाचार्यों का मुख्यालय सत्ययुग में उड्डीयान पीठ, त्रेतायुग में जालन्धर पीठ, द्वापरयुग में पूर्णागिरि पीठ और कलियुग में कामरूप पीठ होता है। इसके अतिरिक्त निग्रहसम्प्रदाय में एक गुप्त पीठ और है जो अभी प्रकट नहीं है, जिसमें बाकी चारों पीठों की परम्परा का विलय हो जायेगा। उसे जागृत करने आगामी निग्रहाचार्य आयेंगे।

चतुष्पीठावतारोऽयं निर्णीतं तु चतुर्युगे।
अटते यो हि सत्येन आचार्यः स कुले भवेत्॥
(महामन्थानभैरवतन्त्रे कुमारिकाखण्डे विमलषट्कनिर्णये
कादिभेदे आज्ञापारमेश्वरस्वामिनीमते षष्ठानन्दे)

चारों युगों का ऐसा ही चतुष्पीठावतार निर्णीत किया गया है। जो व्यक्ति इस पृथ्वी पर सत्य का आश्रय लेकर भ्रमण करने का व्यक्तित्व रखता है, वही इस कुल में आचार्यपद पर अभिषिक्त हो सकता है, यही आज्ञापारमेश्वरी का अनुशासन है।

श्रीभगवतो निग्रहेश्वरस्य स्वरूपभेदकथनम्

अकुलात्कुलरूपं वै विस्फुलिङ्गमिवोर्जितम्।
तत्रोच्छलितमूर्तित्वाद्देवं भैरवभैरवम्॥
वृद्धनाथेति विख्यातमघोरं घोरनाशनम्।
महाघोरेश्वरं नाथं स्वच्छन्दं परमेश्वरम्॥
अनादिनिधनं ब्रह्म सप्तस्रोतं जगद्गुरुम्।
स्वस्वभावं स्वयम्भूक्तं देवं चिद्व्योमभैरवम्॥
आनन्दं तु परानन्दं नित्यानन्दं निरञ्जनम्।
सर्वानन्दमजं शान्तं सप्तधा एकरूपिणम्॥
(व्याधिभक्षभैरवोक्ते महाकौलागमपातालपिङ्गलामते षड्विंशसहस्रसंहितायां
द्वादशसहस्रखण्डे कामरूपावतारे वृद्धस्वच्छन्दकौलविधाने)

भगवान् व्याधिभक्षभैरव के द्वारा कहे गये पातालपिङ्गलामत के छब्बीस हजार श्लोकों वाली संहिता के द्वादशसहस्रखण्डीय महाकौलागम के कामरूपावतार के वृद्धस्वच्छन्दकौलविधान में कहते हैं - "अकुल (ब्रह्म) से चिंगारी के समान निकलने वाले कुल (शक्ति) रूपी वह देवता हैं। वह भैरवों को भी भयभीत करने वाली संहारिका मूर्ति को धारण करने वाले घोरनाशक, अघोर वृद्धनाथ के रूप में विख्यात हैं। वे महान् अघोरेश्वर हैं, स्वच्छन्द परमेश्वर एवं सबों के स्वामी हैं। उनका कोई आदि और अन्त नहीं है। वे जगद्गुरु सात प्रकार से भासते हैं। वह चिदाकाश में विहार करने में व्योमभैरव कहलाते हैं। उन देवता का स्वभाव, कथन और उद्भव अपना ही है, अन्य से प्रभावित नहीं। ये नित्य ही (नित्यानन्द) आनन्द (लौकिकानन्द) एवं पारमात्मिक आनन्द (परानन्द) में विलीन अज्ञान रहित (निरञ्जन) हैं। वे अजन्मा (अज), शान्तविग्रह (शान्तानन्द), सभी प्रकार के आनन्द से युक्त (सर्वानन्द), सात रूपों में प्रकट होने पर भी एकरूपी हैं।"

अथ लक्षणगतानि वक्त्राभिधानानि

आनन्दं पूर्वतो वक्त्रं परानन्दं तु चोत्तरम्।
नित्यानन्दं तु याम्यायां पश्चे चैव (पश्चिमे च) निरञ्जनम्॥
सर्वानन्दमधोवक्त्रमूर्ध्ववक्त्रमजं विभुम्।
शान्तानन्दं तदूर्ध्वं वै देवदेवस्य सुव्रते॥
ब्रह्मा वै पश्चिमं वक्त्रं विष्णुश्चैव तथोत्तरे।
रुद्रस्तु दक्षिणे वक्त्रे ईश्वरः पूर्वतः प्रिये॥
अधः सदाशिवः प्रोक्तः सद्यः शक्तिः शिवोर्ध्वतः।
(व्याधिभक्षभैरवोक्ते महाकौलागमपातालपिङ्गलामते षड्विंशसहस्रसंहितायां द्वादशसहस्रखण्डे कामरूपावतारे वृद्धस्वच्छन्दकौलविधाने)

अब इन लक्षणों से युक्त मुखों का वर्णन करते हैं। भगवान् व्याधिभक्षभैरव के द्वारा कहे गये पातालपिङ्गलामत के छब्बीस हजार श्लोकों वाली संहिता के द्वादशसहस्रखण्डीय महाकौलागम के कामरूपावतार के वृद्धस्वच्छन्दकौलविधान में कहते हैं - " श्रीभगवान् का पूर्वमुख आनन्दसंज्ञक है। उत्तरमुख को परानन्द कहते हैं। दक्षिणदिशा का मुख नित्यानन्द है तथा पश्चिमी मुख को निरञ्जन कहते हैं। हे उत्तम व्रत का पालन करने वाली भैरवि ! नीचे की ओर सर्वानन्द नामक मुख है। ऊपर की ओर अजसंज्ञक मुख है और उसके भी ऊपर शान्तानन्द नामक मुख है। हे प्रिये ! पूर्वमुख ब्रह्मा का रूप लेता है। उत्तरमुख से विष्णुतत्त्व का सम्बन्ध है। दक्षिण वक्त्र रुद्र हैं और पूर्वमुख ईश्वर हैं। नीचे के मुख को सदाशिव कहा गया है। ऊपर की ओर मुख को शीघ्र ही शक्तिरूप जानो। उसके भी ऊपर शिवतत्त्व है।”

अथ सम्प्रदायोपासनागतानि वक्त्रभेदाभिधानानि

स एव ललितो देवः स्वच्छन्दः परमेश्वरः।

यत्तदादिपरंब्रह्म ज्वलत्कालानलप्रभम्॥
महाचिपिटनाथो वै भिन्नाञ्जनचयप्रभः।
ऊर्ध्वकेशः कोटराक्षः स्वर्णवित्तोपहारिकः॥
नारसिंहवपुश्श्रीमान्दक्षिणाननसंस्थितः।
यत्तद्वै पूर्वजं वक्त्रं सिन्दूरारुण चोर्ध्वगम्॥
ईषत्करालवदनं कुलमार्ताण्डभैरवम्।
सर्वग्रासकरं रौद्रं भूरिभास्करसन्निभम्॥
यत्तद्विपूर्वजं वक्त्रं सर्वसत्त्वालयोद्भवम्।
अजवक्त्रेति विख्यातं भवेत्सर्वज्ञभैरवम्॥
तस्योर्ध्वे यत्परं सौम्यं सर्वसत्तानुकम्पिनम्।
लोकनाथेति प्रोक्तं वै बौद्धं भरितभैरवम्॥
हेरूकेति स विख्यातः कालकङ्कालरूपिणम्।
षष्ठं मायामयं प्रोक्तं सप्तमं च अतश्शृणु॥
यत्तद्वै सप्तमं वक्त्रमधोमुखविजृम्भितम्।
पञ्चात्मा पञ्चनिलयं शाक्तं श्रीकण्ठभैरवम्॥
दुष्प्रेक्षं कालसंहारं स्वगुप्तं सप्तमोदितम्।
सर्वकामार्थफलदं स्मरणाद्भोगमोक्षदम्॥
पृथिव्यां पूर्वमानन्दो मायानन्दस्तु चोत्तरम्।
पश्चिममलानन्दः तेजानन्दस्तु दक्षिणम्॥
ऊर्ध्वानन्दो तथाकाशमधश्शक्तिश्शिवोर्ध्वगम्।
पूर्वे कृतयुगानन्दः त्राणानन्दस्तु (त्रेतानन्दस्तु) पश्चिमे॥
द्वापरे दक्षिणानन्दः (दक्षिणे द्वापरानन्दः)श्रीकलौ चोत्तरे स्मृतम्।
(व्याधिभक्षभैरवोक्ते महाकौलागमपातालपिङ्गलामते षड्विंशसहस्रसंहितायां
द्वादशसहस्रखण्डे कामरूपावतारे वृद्धस्वच्छन्दकौलविधाने)

अब सम्प्रदायों में उपासनाभेद के अनुसार मुख के कुछ और भी नामान्तर होते हैं जिन्हें भगवान् व्याधिभक्षभैरव के द्वारा कहे गये पातालपिङ्गलामत के छब्बीस हजार श्लोकों वाली संहिता के द्वादशसहस्रखण्डीय महाकौलागम के कामरूपावतार के वृद्धस्वच्छन्दकौलविधान में कहते हैं -

"वह लालित्यपूर्ण स्वच्छन्द परमेश्वर सबों के आदिकारण परब्रह्म हैं। प्रलयाग्नि के समान जलते हुए स्वरूप में वह स्थित हैं। (कलियुग में ये उत्तरमुखी स्वरूप की प्रधानता रखते हैं तथा निग्रहमत में प्रधानोपास्य भी हैं) उनका दूसरा स्वरूप महाचिपिटनाथभैरव कहलाता है जो कज्जलपर्वत के समान कृष्णवर्ण का है। उनके केश ऊपर की ओर उठे हुए हैं, उनके नेत्र वृक्ष की कोटर के समान बड़े बड़े गड्ढे जैसे दिखते हैं। वे स्वर्णधनादि ऐश्वर्यसम्पदा से अलङ्कृत हैं। उनका स्वरूप नृसिंह के समान है और दक्षिण दिशा की ओर मुख करके वे स्थित रहते हैं। (इनकी प्रधानता से वैष्णवदर्शन सञ्चालित होता

है)। श्रीभगवान् का पूर्वदिशा से उत्पन्न मुख सिन्दूर के समान लाल और ऊपर की ओर गतिमान् है। देखने में थोड़ा विकराल है और इन्हें मार्त्तण्डभैरव कहते हैं। ये रौद्ररूप से सब कुछ निगलने में प्रवृत्त हैं, अनेकों सूर्य के समान इनकी प्रभा है। (इनकी प्रधानता से सौरदर्शन सञ्चालित होता है)।

श्रीभगवान् के पश्चिम मुख से उत्पन्न, समस्त सत्त्वप्रधान तत्त्वों का भण्डार अजवक्त्रस्वरूप हैं जिन्हें सर्वज्ञभैरव भी कहते हैं। (इनकी प्रधानता से शैवदर्शन सञ्चालित होता है)। उनसे ऊपर के मुख से उद्भूत, समस्त सत्ताओं पर अनुग्रह करने वाला, सौम्यरूपी विग्रह लोकनाथ कहलाता है (इनकी प्रधानता से गाणपत्यदर्शन सञ्चालित होता है)। बौद्धमत में जिनकी आराधना होती है उन्हें भरितभैरव कहते हैं तथा इनकी प्रसिद्धि हेरूक के नाम से है। ये संहारकर्त्ता कङ्काल के समान दिखते हैं। (इनकी प्रधानता से बौद्धदर्शन सञ्चालित होता है)। यह छठा मुख मायामय है। (बौद्धमत की स्थापना का हेतु मायामय वचनों से असुरों को मोहित करना भी है - सम्मोहाय सुरद्विषाम् (श्रीमद्भागवत)।

अब सातवें का वर्णन सुनो। अत्यन्त विस्तृत स्वरूप वाला, नीचे की ओर दृष्टि वाला मुख शाक्तदर्शन का उद्बोधक, पांच आत्माओं (भूतात्मा, इन्द्रियात्मा, प्रधानात्मा, आत्मा एवं परमात्मा) वाला , पञ्चावस्थाओं (जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय एवं निष्कल) में स्थित है जिसे श्रीकण्ठभैरव कहते हैं। इसे देखना बड़ा कठिन है। यह काल का भी संहार कर देता है। यह सातवां रूप स्वयं में ही अत्यन्त गुप्त है। सभी कामनाओं का फल प्रदान करता है और स्मरणमात्र से भोग तथा मोक्ष, दोनों प्रदान करता है। पृथ्वीलोक में सप्तरूपी श्रीभगवान् का पूर्वरूप आनन्दसंज्ञक है। उत्तररूप मायानन्द कहलाता है। पश्चिमरूप अमलानन्द है तथा दक्षिणरूप को तेजानन्द कहते हैं (इसमें व्याकरणगत सन्धिदोष है किन्तु आर्षगौरव से निर्दुष्ट माना जायेगा) आकाश की ओर ऊर्ध्वानन्द है, नीचे की ओर शक्त्यानन्द है तथा सबसे ऊपर शिवानन्द है। सत्ययुग में श्रीभगवान् पूर्वमुख की प्रधानता वाले होते हैं। त्रेतायुग में पश्चिममुखी, द्वापरयुग में दक्षिणमुखी तथा कलियुग में उत्तरमुख की प्रधानता वाले होते हैं।"

अथ प्रकारान्तरेण स्वरूपवर्णनम्

ध्यायेत्प्रेतासमारूढं चन्द्रार्काग्निकलान्तगम्।
जीवसम्पुटमध्यस्थं देवं चिद्व्योमभैरवम्॥
स्वबाह्याभ्यन्तरान्तस्थं स्वस्थानस्थं स्वयम्भुवम्।
स्थूलसूक्ष्मपरं पारं सर्वावस्थान्तरोदितम्॥
त्रिनेत्रं भीमवदनमेकविंशेक्षणं विभुम्।
सप्तवक्त्रं परं ब्रह्म अष्टाविंशभुजान्वितम्॥
दक्षिणे नारसिंहं वै वाराहं चोत्तरे विभुम्।
अजवक्त्रं खमार्गस्थं पञ्चमं परमं पदम्॥
तस्योर्ध्वं यत्परं षष्ठमीशानं शिवमव्ययम्।

लोकनाथेति विख्यातं ज्ञानघूर्णितलोचनम्॥
सप्तमं यत्परं दीप्तमधोमुखविलम्बितम्।
कालाग्निनिलयाधारं वज्रज्वालाकुलेक्षणम्॥
(व्याधिभक्षभैरवोक्ते महाकौलागमपातालपिङ्गलामते षड्विंशसहस्रसंहितायां
द्वादशसहस्रखण्डे कामरूपावतारे वृद्धस्वच्छन्दकौलविधाने)

अब भिन्न प्रकार से स्वरूप का वर्णन करते हैं। भगवान् व्याधिभक्षभैरव के द्वारा कहे गये पातालपिङ्गलामत के छब्बीस हजार श्लोकों वाली संहिता के द्वादशसहस्रखण्डीय महाकौलागम के कामरूपावतार के वृद्धस्वच्छन्दकौलविधान में कहते हैं - "प्रेतासन पर आरूढ़, चन्द्रमा-सूर्य-अग्नि की कलाओं से भी परे, जीवसमूहों में मध्य में स्थित चिदाकाशविहारी भैरवदेव का ध्यान करना चाहिए। स्वतत्त्व से ही अपने बाहर और भीतर विराजित, अपने मूल ब्राह्मीभाव में स्थित, स्वयं से ही प्रकट (अनादि एवं अनन्त) स्थूल एवं सूक्ष्म तत्त्वों में स्थित तथा उनसे परे भी, सभी अवस्थाओं में व्याप्त, सात मुखों वाले, प्रत्येक मुख में तीन अर्थात् कुल इक्कीस नेत्रों वाले, अट्ठाईस भुजाओं वाले भयङ्कर स्वरूप वाले (पूर्वमुखी) परब्रह्म का ध्यान करे। दक्षिण में नृसिंहमुख और उत्तर में वराहमुख वाले, फिर आकाश की ओर अजवक्त्र वाले परमपदाधिकारी पञ्चम (पश्चिम) मुख वाले, उसके ऊपर ईशानसंज्ञक अविनाशी शिवतत्त्वरूपी षष्ठमुख, जिन्हें लोकनाथ कहते हैं और जिनके नेत्र ज्ञानमद से मतवाले हो रहे हैं तथा अन्त में नीचे की ओर अति विस्तृत और जाज्वल्यमान सातवां मुख जो प्रलयकाल की अग्नि का आधार है एवं जिसके नेत्र वज्र की ज्वाला के समान हैं, इस प्रकार सप्तमुखी श्रीभगवान् का ध्यान करना चाहिए।”

श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कन्ध, कालयवन प्रसङ्ग में वर्णन है कि महाराज मुचुकुन्द को भगवान् श्रीकृष्ण ने अगले जन्म में ब्राह्मण बनने और फिर वहाँ से मुक्त होने का वरदान दिया था। वही महाराज मुचुकुन्द अगले जन्म में सुशर्मा बने और श्रीकृष्णयामलमहातन्त्र के रहस्यों को अपनी पत्नी से हुए संवाद के माध्यम से व्यक्त किया। स्वयं को काशीवासी बताकर तीर्थमाहात्म्य का दुरुपयोग करते हुए दम्भयुक्त आचरण करने वाले पाखण्डी श्रीकृष्णयामलमहातन्त्र के पञ्चम पटल में वर्णित इन वचनों पर ध्यान दें -

केशवेन कृता काशी दत्ता तस्मै शिवाय च।
तन्नाम्नैव सुविख्याता काशी मुक्तिप्रिया सखी ॥२७॥

भगवान् केशव ने काशी का निर्माण किया तथा श्रीशिव को दे दी थी। मुक्ति की प्रिय सखी काशी इसीलिए शिव के नाम से विख्यात हो गयी ।।२७।।

शिवस्थानेऽतिपाखण्डास्तत्र यास्यन्ति वासतः ।
नित्यं पापरतास्तत्र नरके यान्ति दुःखिताः॥२८॥ कायवाङ्मानसैर्लोकाः पापमेवाचरन्ति वै।
काश्यां कृतं च यत्पापं गिरितुल्यं भवेत् प्रिये ॥२९॥

शिवस्थान काशी में वास करने हेतु अतिपाखण्डीजन वहाँ जाते हैं और नित्य पाप करते हैं। परिणामस्वरूप दुःखी होते और नरक में जाते

हैं। उस पवित्र स्थान में पाखण्डी लोग शरीर, वाणी और मन से पाप ही करते रहते हैं। किन्तु प्रिये! जो पाप काशी में किया जाता है, वह पहाड़ के समान हो जाता है।।२८-२९।।

सर्वनाशाय लोकानां नरकाय न संशयः।
काशीवासे मनो याति कथितं तव भामिनि ॥३०॥
मरणे मुक्तिदा काशी केशवेन विनिर्मिता।
कलौ च मुक्तिनाशाय पाखण्डिभिः समावृता ॥३१॥

हे भामिनि ! मैंने तुम्हें बताया है कि नरक-यात्रा के लिए अथवा सर्वनाश के लिए लोगों का मन काशीवास के लिए लालायित होता है। इसमें थोड़ा-सा भी संशय नहीं है। भगवान् विष्णु ने मरने के बाद मुक्ति पाने के लिए काशी का निर्माण किया था, किन्तु कलिकाल में काशी पाखण्डियों के द्वारा मुक्ति का नाश करने के लिए बन गयी।।३०-३१।।

यत्र कुत्रापि संस्थाय नीत्वा च सकलाः समाः।
अन्तकाले श्रिता काशी पीयूषेण समावृता ॥३२॥ भोगाल्लोभाद् रागतो वा मध्ये वयसि संश्रिता।
नरकाय तदा काशी न विमुक्तिर्भवेत् पुनः ॥३३॥
पुण्यात्मनां यथा मुक्तिर्यथा पापोपजीविनाम्।
नरकोऽपि भवत्येवं विषतुल्या स्मृता ततः ॥३४॥

जहाँ कहीं भी निवास करके आयु के सभी वर्ष बिताने के बाद मृत्युकाल में अमृत से समावृत काशी का सेवन करना चाहिए। आयु के मध्य प्रौढ़ावस्था में जो लोग भोग, लोभ अथवा राग के कारण काशीवास करते हैं, उनके लिए काशी नरक देने वाली होती है, न कि मुक्ति देने वाली। जैसे पुण्यात्माओं को मोक्ष मिलता है, उसी तरह पापात्माओं को नरक भी मिलता है। इसलिए पापियों के लिए काशी विषतुल्य मानी गयी है।।३२-३४।।

न मुक्तिः कलिकाले तु नृणां भवति भामिनि ।
तदर्थमेव लोकानां काश्यां वासो भविष्यति ॥३५॥
नित्यं पापरता लोका यतो यास्यन्ति तद्युगे।
काशीपापकृतां मुक्तिर्नास्ति कल्पशतैरपि ॥३६॥

हे भामिनि ! कलिकाल में लोगों की मुक्ति नहीं होती; इसीलिए लोग काशीवास में रुचि लेंगे। कलियुग में नित्य पाप में रत लोग काशी जाकर रहेंगे। काशी में पाप करने वालों की मुक्ति सैकड़ों कल्प तक नहीं होती।।३५-३६।।

श्रीमद्भागवत महापुराण के पञ्चम स्कन्ध में विभिन्न वर्षों में स्थित भगवद्भक्तों के द्वारा विभिन्न अवतारों की स्तुति में जो मन्त्र प्रयुक्त किये गये हैं वे सब श्रीकृष्णयामलमहातन्त्र के ही प्रधान अंश हैं।

अथ निग्रहषोडशमण्डलं शतसाहस्रीसंहितायाञ्च कुलालिकाम्नाये
सिद्धावताराधिकरणेऽम्बामतसंहितायामष्टमे चापि -

१) ब्रह्मकुले जन्मना मधुसूदनो भेरीशाचार्येति कुलाभिषिक्तः सोमानन्देति गोपितः शूलानन्देति

पूजितश्चन्द्राम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव। भ्रमरभृङ्गवद्ब्रह्मणोऽभिन्नतामवाप तस्माद्भ्रमरानन्देति प्रसिद्धोऽशिष्यश्चायम्।

२) ब्रह्मकुले जन्मना विष्णुशर्मा गुल्मदेवेति कुलाभिषिक्तस्त्रिपुरानन्देति गोपितस्तीव्रानन्देति पूजितः कल्पविश्वाम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव। चमत्कारेण व्योम्नि मालां निराधारां प्रदर्शयति स्म तस्मान्मालाधरदेवेति प्रसिद्धश्चतुःशिष्ययुक्तश्चायम्।

३) ब्रह्मकुले जन्मना धूर्जटिदेवः स्तम्भदेवेति कुलाभिषिक्तश्चारुकानन्देति गोपितः खेचरानन्देति पूजित आनन्दाम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव। तुरुष्कम्लेच्छभूपतिं निग्रहाधिकारेण बोधयित्वा तेजीशादेवेति प्रसिद्धो दशशिष्यान्वितो बभूव।

४) ब्रह्मकुले जन्मना दामोदरः कार्पासदेवेति कुलाभिषिक्तो विमलानन्देति गोपितो गर्भानन्देति पूजितः खेचर्यम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव। श्रुतिद्रोहयुक्तानार्हतान् शास्त्रार्थे विजित्य दण्डोपलक्षणहेतवे वासांस्याजहार तस्माद्वस्त्रापहारकदेवेति प्रसिद्धोऽष्टशिष्यैर्दशप्रशिष्यैर्युक्तश्चायम्।

५) ब्रह्मकुले जन्मना पद्मनाभो वटपुरेति कुलाभिषिक्तो व्याप्तानन्देति गोपितः सिंहानन्देति पूजितः सदानन्दाम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव। शास्त्रार्थ आगमप्रामाण्यविषये श्रुतिधरान् ब्राह्मणान् वेदपारगान् सङ्क्रम्य विजयेन विषयसङ्क्रमणदेवेति प्रसिद्धः सप्तविंशतिशिष्यान्वितो बभूव।

६) प्राग्जन्मनः क्षत्रियस्त्रिभुवनात्मजो जयदेवोऽग्रजन्मनि ब्रह्मकुले जन्मना देवपालो विरजेशेति कुलाभिषिक्तो रत्नानन्देति गोपितो जयानन्देति पूजितो विरजाम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव। शङ्खनादेनास्ताचलगामिनं भास्करं प्राङ्मुखं कृतवान् तस्माच्छङ्खाननदेवेति प्रसिद्धो दशशिष्यान्वितश्चायम्।

यथोक्तं शक्तिसङ्गममहातन्त्रराजे सुन्दरीखण्डे -

अष्टोत्तरशतं वह्नेः षोडशोत्तरगं रवेः।
शतं षट्त्रिंशत्सोमस्य नेत्रत्रितयकं शिवे॥
एता एव कला देवि शाम्भवादौ प्रयोजिताः।
ईदृग्विधो महेशानि वह्निरुक्तो मया तव॥
तस्य निग्रहकर्त्ता च ब्रह्माण्डे कोऽस्ति वै प्रिये ?
नव चक्रोपासको यः षट्चक्रोपासकोऽपि वा॥ साम्राज्यशाम्भवाक्रान्तः पञ्चास्त्रसाधने रतः।
दशविद्यामयी या तु तस्योपासनतत्परः॥
दिवारात्रिव्यत्ययं तु यः कर्तुं भवति क्षमः।
स वह्नेर्निग्रहे शक्तो भवत्येव न चान्यथा॥

७) ब्रह्मकुले केशवात्मजो जन्मना पुरुषोत्तमः प्रभासेति कुलाभिषिक्तो योगानन्देति गोपितः सुभगानन्देति पूजितो रक्तसिद्धाम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्ता बभूव। शीर्षे पूर्णोदकं घटं निराधारं संस्थाप्याटति स्म तस्माद्घटप्लावनानन्देति प्रसिद्धोऽशिष्यश्चायम्।

८) प्राग्जन्मनः क्षत्रियोऽटापुत्रको बाकालोऽग्रजन्मनि ब्रह्मकुले जन्मना वङ्कदेवः कंसबलेति कुलाभिषिक्तो महिमानन्देति गोपितोऽमृतानन्देति पूजितः कुलशासनाम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव। दृष्टिपातेन खर्जूरवृक्षमुत्पाट्याकाशे वहति स्म क्रीडार्थं तस्मात् खर्जूरानन्देति प्रसिद्धोऽशिष्यश्चायम्।

९) प्राग्जन्मनः क्षत्रियो देवधरोऽग्रजन्मनि ब्रह्मकुले विक्रमात्मजो जन्मना वासुदेवो भोगानन्देति कुलाभिषिक्तः शुभानन्देति गोपितो वीरानन्देति पूजितोऽनन्ताम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव। चातकरूपधारिणं पिशाचं निजगृहे तस्माच्छारङ्गदेवेति प्रसिद्धश्चतुर्दशशिष्यान्वितो बभूव।

१०) प्राग्जन्मनो वैश्याग्रजन्मनि क्षत्रियकुले जन्मना शिवगणा बिम्बदेवीति कुलाभिषिक्ता गुप्तदेवीति गोपिता विमलेति पूजिता सुन्दराम्बेति स्वशक्तिसंयुक्ता निग्रहकर्त्री बभूव। अस्याः पञ्चविंशतिशिष्या बभूवुः। ठाणकोङ्कणप्रदेशे बौद्धानामातङ्कं दृष्ट्वा भेरीघोषात् सन्त्रासयामास। न वयं स्त्रिया सह वादं कर्तुमिच्छाम इति बौद्धवाक्यं श्रुत्वा योगबलेन पुरुषालिङ्गमुद्रया स्वदेहं पुरुषीकृत्याधिकारकालासने सोपविश्य नास्तिकान् तर्जयन्ती बौद्धैः सह दशवारं शास्त्रार्थमकरोद्विजयिनी चासीत्। आदिजये विमलाम्बा, द्वितीये शिखाम्बा, तृतीये चिद्देव्यम्बैवं सुशोभनाम्बा, नागकन्याम्बा, कुमार्यम्बा, धारण्यम्बा, पयोधारण्यम्बा, रक्षाम्बा च दशमे विजये भद्राम्बेति सुपूजिता बौद्धत्रासनीति प्रसिद्धा बभूव। पुनश्च पञ्चविंशतिशिष्यास्तत्रापि दीक्षिता एवं पञ्चाशच्छिष्ययुक्तेयम्।

११) प्राग्जन्मनः शूद्रा कर्णवटसारी वैश्याग्रजन्मनि महादेवागमा क्षत्रियकुलेऽग्रजन्मना करुणादेवी खड्गदेवीति कुलाभिषिक्ता रत्नदेवीति गोपितेन्द्रमणिदेवीति पूजिता कुटिलाम्बेति स्वशक्तिसंयुक्ता निग्रहकर्त्री बभूव। स्वदेहे योगबलेन पुरुषालिङ्गमुद्रया योनिलिङ्गात्मकेन लावण्येण नरान् सङ्क्षोभयन्ती विमोहयन्ती बभ्राम धरणीतले तस्मात्पुरुषक्षोभदेवीति प्रसिद्धास्या दशशिष्या बभूवुः।

१२) प्राग्जन्मनो वैश्यः शबरावयवोऽग्रजन्मनि ब्रह्मकुले जन्मना श्रीधरो रुद्रदेवेति कुलाभिषिक्तः पद्मानन्देति गोपित इच्छानन्देति पूजितो योगाम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव। दृष्टिमात्रेण प्रस्तरं भेत्तुं समर्थस्तस्माच्छिलावेधदेवेति प्रसिद्धोऽशिष्यश्चायम्।

१३) प्राग्जन्मनो वैश्यः पद्मनाभोऽग्रजन्मनि ब्रह्मकुले जन्मनानिरुद्धो रामशिवदेवेति कुलाभिषिक्तः केशवानन्देति गोपित उन्मनानन्देति पूजितो बर्बराम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव। अनृतावपि दृष्टिमात्रेण पुष्पाणि विकसितानि कर्तुं समर्थस्तस्मात्पुष्पानन्दनाथेति प्रसिद्धो दशशिष्यान्वितश्चायम्।

१४) प्राग्जन्मनः शूद्रो गोपालविरजाख्योऽग्रजन्मनि क्षत्रियकुले जन्मना देवगणो मुद्रास्फोटेति कुलाभिषिक्त उन्मत्तानन्देति गोपितो भगानन्दभट्टेति पूजितो नीलगर्वाम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव। अयमपि श्रीधरवदद्दृष्टिमात्रेण प्रस्तरं भेत्तुं समर्थस्तस्माच्छिलावेधेति प्रसिद्धोऽशिष्यश्चायम्।

१५) प्राग्जन्मनः शूद्रो विश्वरूपाख्योऽग्रजन्मनि क्षत्रियकुले चर्पटोऽग्रजन्मनि ब्रह्मकुले जन्मना राजदेवो वङ्कापुरेति कुलाभिषिक्तो मनोन्मनानन्देति गोपितो ब्रह्मानन्देति पूजितः खड्गाम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव। अयमप्यनिरुद्धवदद्दृष्टिमात्रेणानृतावप्याकाशात्पुष्पवृष्टौ समर्थस्तस्मात् केतकीदेवेति प्रसिद्धोऽशिष्यश्चायम्।

१६) प्राग्जन्मनः शूद्रो राजादित्योऽग्रजन्मनि क्षत्रियकुले मित्रनाथोऽग्रजन्मनि ब्रह्मकुले जन्मना दुर्जयो भोजदेवेति कुलाभिषिक्तः सहजानन्देति गोपितो महान्तानन्देति पूजितो मदनाह्लादिनीदीप्ताम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव। नन्दिरुद्रप्रबोधत्वान्ननन्दिस्फोटदेवेति प्रसिद्धश्चतुर्दशशिष्यान्वितश्चायम्।

तत्रान्येऽपि -

१) ब्रह्मकुले सामवेदाम्नाये श्रीधरात्मजो जन्मना त्रिविक्रमो भैरवीशेति कुलाभिषिक्तः सूर्यानन्देति गोपितो गगनेन्द्रेति पूजितश्चिद्रूपाम्बाशक्तिसंयुक्तः सहस्राब्दपर्यन्तं सूर्यत्राटकं सन्तप्य निग्रहकर्त्ता बभूव। व्योम्नि देवानां सञ्चरणशक्तिं स्तम्भयामास किरणानन्देति प्रसिद्धः। गगने गतिमान् भूत्वा व्योमानन्देति कथ्यते। अन्येषां मतेऽयं यजुर्वेदी किन्तु यथा मेरुमार्गविनिर्मिते स्वामिनीमते विद्यापीठमार्गे विमलषट्कनिर्णये महामन्थानभैरवे यज्ञखण्डे पञ्चदशानन्दे शतोत्तरषोडशाग्रश्लोकेषु-

नामसंज्ञा पुनस्तस्य त्रिविक्रमः सुरार्चित।
सामवेदी भवेत् साक्षादाज्ञाधरो महाबलः॥
तेन तीव्रं तपस्तप्तं दिव्यं वर्षसहस्रकम्।
जिज्ञासा च कृता तेन सूर्यं वै चावलोकितम्॥
गगने स्तम्भितास्तेन वेधिताश्च सुराधिपाः।
तेन सम्बन्धयोगेन किरणानन्दसंज्ञकः॥
पुनर्गतश्च देवेश खेचरत्वं सचर्यया।
गगनदेवाभिधानोऽयं पूजानाम प्रकीर्तितम्॥
गोप्यं नाम पुनस्तस्य सूर्यानन्दस्तथोच्यते।
किरणान् विकिरन्नाथ किरणोद्योतकारकः॥
गगनं येन चाक्रान्तं किरणानन्दस्तथोच्यते।

२) ब्रह्मकुले यजुर्वेदाम्नाये गोविन्दनारायणात्मजो जन्मना दामोदरो वीरानन्देति कुलाभिषिक्तः कनकदेवेति

गोपितः कुमुदेति पूजितो महासिद्धरत्नाम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव। अव्याहतलक्ष्यभेदनशक्त्या ध्रुववेधी इति प्रसिद्धः।

३) प्राग्जन्मनः क्षत्रिय उदयराजोऽग्रजन्मनि ब्रह्मकुल ऋग्वेदाम्नाये वासुदेवात्मजो जन्मना विश्वरूपः पिप्पलीशदेवेति कुलाभिषिक्तो रत्नदेवेति गोपितः पद्मभास्करानन्देति पूजितः पद्मचन्द्राम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव। यदा सर्वनिग्रहेश्वरो भगवान् सिद्धनाथो लङ्कापुरीं गत्वा शतसंवत्सरपर्यन्तमानृजे च रावणानुजं वैश्रवणं षडशीतिसहस्ररक्षोगणपरिरक्षितं लङ्केश्वरं विभीषणं धर्मरूपिणं कुलधर्मं बोधयामास तदैनं रक्षोमार्गदर्शनार्थं नियोज्यान्तर्हितो बभूव ततो लङ्कानन्देति प्रसिद्धः। अयं शतसाहस्रीसंहितामते ब्राह्मणः। कुलकौलिनीमत ऋग्वेदी। अन्येषां मते क्षत्रियः किन्तु मेरुमार्गविनिर्मिते स्वामिनीमते विद्यापीठमार्गे विमलषट्कनिर्णये महामन्थानभैरवे यज्ञखण्डेऽथर्ववेदिनो विक्रमनाम्नो वैश्यादस्यायोनिजत्वमुच्यते -

मन्दाकिनीतटे रम्ये प्रसिद्धं नगरं शुभम्।
भोगवर्द्धननामानं विक्रमस्तत्र वासिनः॥
विसुल्यां च भवेज्जन्म वैश्यजश्च प्रचण्डवान्।
अथर्ववेदी विख्यात आज्ञाधरमहाबलः॥
अङ्गुष्ठेन तपस्तप्तमादिनाथस्य चाग्रतः।
दिव्यवर्षसहस्रैकं तपस्तप्तं सुदारुणम्॥
तस्य नाभ्यां समुत्पन्नं पद्मं सूर्यसमप्रभम्।
तत्र मध्ये समुत्पन्नं पुरुषं व्यक्तरूपिणम्॥
तस्य नाभ्यां समुत्पन्ना शक्तिः समररूपिणी।
नामसंज्ञा भवेत्तस्य मणिअम्बेति विश्रुता॥
सा शक्तिस्तस्य सञ्जाता शरीरे समधर्मिणी।
जिज्ञासा च कृता तेन पिप्पलीतरुशोभितम्॥
तेन सम्बन्धयोगेन पिप्पलीनाथसंज्ञया।
पुनर्गतश्च देवेशो लङ्कां नाम महापुरीम्॥
विलोकितश्चतुर्दिक्षु तीव्रज्ञानावलोकनात्।
षडशीतिसहस्राणि राक्षसाणां तु वेधिताः॥
राजा विभीषणश्चैव घूर्मावस्थां तु तिष्ठति।
वत्सराणां शतञ्चैकं तिष्ठते धरिणीतले॥
पुनराप्यायितस्तेन राक्षसाधिपतिस्तदा।
उत्तिष्ठितास्मृतलक्ष्यस्तदा राजा विभीषणः॥
साष्टाङ्गं प्रणिपातस्तु कृतं भक्त्या तु तेन वै।
विज्ञापयति वै राजा सिद्धनाथस्य चाग्रतः॥

एवं पञ्चदशानन्दे सङ्केतितम्। सद्धर्मलङ्कावतारेण कोणागमनबुद्धेनावैदिकैर्मोहवाक्यै रावणो विकृतस्तस्यान्ते दाशरथिना सीतावल्लभेन भगवता श्रीरामेण तस्यानुजो विभीषणोऽभिषेचितो भोगपरायणः पुनर्भगवता सिद्धनाथेनार्यमर्यादा संस्थापिता विभीषणोऽभिनवलङ्केशश्च प्रबोधितः।

४) ब्रह्मकुलेऽथर्ववेदाम्नाये पुरुषोत्तमात्मजो जन्मना गोविन्दकेशवः पुष्पानन्देति कुलाभिषिक्तो देवानन्देति गोपितो देववक्त्रामृतेति पूजितः सुवक्त्रामृताम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव। वैभवेन यक्षातिक्रान्ततो यक्षानन्देति प्रसिद्धः।

५) ब्रह्मकुले यजुर्वेदाम्नाये काञ्चीदेवात्मजो जन्मना मातङ्गदेवो गौडीशदेवेति कुलाभिषिक्तो वीरानन्देति गोपितो भैरवाब्जेति पूजितो विभवनाशिन्यम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव। देवराजवदैश्वर्यभोगेनेन्द्रानन्देति प्रसिद्धः।

६) प्राग्जन्मनि शूद्रो वाहिलोऽग्रजन्मनि क्षत्रियकुले कान्यकुब्जाधिपसोमेश्वरात्मजो जन्मना महीपाल ओलीशदेवेति कुलाभिषिक्तो माणिकाक्षेति गोपितः कमलार्केति पूजितो माणिक्यकमलाम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव। स्वप्ने देव्या निग्रहादेशं प्राप्य गङ्गातटे तपस्तप्त्वाज्ञाप्रभावदेवेति प्रसिद्धः। यथा मेरुमार्गविनिर्मिते स्वामिनीमते महामन्थानभैरवे यज्ञखण्डे पञ्चदशानन्दे शतोत्तरचतुस्त्रिंशच्छ्लोकाग्रे -

जम्बूद्वीपे तु नगरं प्रसिद्धं स्थानकं तव।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कान्यकुब्जं तु पत्तनम्॥
तस्मिन्नेव सुखासीनो राजा सोमेश्वरः शिवः।
क्षत्रियोऽसौ महाबाहुः सोमवंशसमुद्भवः॥
रात्रौ कृष्णचतुर्दश्यां वीरचर्याविनिर्गतः।
वेतालस्साधितस्तेन निमिषार्द्धेन भैरव॥
तेन सम्बन्धयोगेन वीरचर्याधरस्तथा।
तस्य पुत्रः समुत्पन्नो महीपालाभिधानकः॥

मया सदृशोऽयमपि भगवत्या स्वप्ने निग्रहमार्गे प्रचोदितस्तत्रैव पुनः शतोत्तरचत्वारिंशच्छ्लोकाग्रे -

भुक्त्वा तु पृथिवीं तेन आसमुद्रान्तमेखलाम्।
संवत्सरशतं राज्यं महीपालेन भैरव॥
तस्यादेशः समुत्पन्नो निशार्द्धेन वरानना।
तपश्चोग्रं कुरु प्राज्ञ यदि मोक्षं समीहसे॥
राजा ततः प्रबुद्धो वै चिन्तापारममागमत्।
स्मृत्वा देवं हृष्टमना सुरसर्पस्तटं गतः॥

७) प्राग्जन्मनि शूद्रो माणिक्यात्मजो भीमदेवोऽग्रजन्मनि वैश्यकुले जन्मना देहिलो मातङ्गेति कुलाभिषिक्तो गजप्रबोधदेवेति प्रसिद्धः कीर्तिकानन्देति गोपितः शिवाम्भोजेति पूजितः कुसुमाम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव।

८) प्राग्जन्मनि शूद्रः सेहिलोऽग्रजन्मनि क्षत्रियकुले जयदेवात्मजो जन्मना विश्वकर्मा झिण्टीशेति कुलाभिषिक्तो लघुप्रबोधदेवेति प्रसिद्धः सहजानन्देति गोपितो रामतत्त्वेति पूजितो रामाम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव।

९) क्षत्रियकुले केशवात्मजो जन्मना माहिलोपाख्यो मकरादित्यः कुहरदेवेति कुलाभिषिक्तः कपिलप्रबोधदेवेति प्रसिद्धो विनयानन्देति गोपितः कृष्णमार्त्तण्डेति पूजितः कृष्णपिङ्गलाम्बाशक्तिसंयुक्तो निग्रहकर्त्ता बभूव।

— ततश्चाहं प्राग्जन्मनि क्षत्रियः पृथ्वीसिंहोऽस्मिन् जन्मनि ब्रह्मकुले यजुर्वेदाम्नाये शङ्करात्मजो जन्मना श्रीभागवतानन्दो नामान्त आनन्दनाथेति कुलाभिषिक्तः समन्वयतीर्थेति गोपितो विद्यामार्त्तण्डेति पूजितोऽनुपमाम्बाशक्तिसंयुक्तो देव्या स्वप्ने निग्रहादेशं प्राप्य ब्रह्मपुत्रतटे कामरूपारण्ये तपस्तप्त्वा बहुव्रीहिभावान्निग्रहाचार्येति प्रसिद्धो निग्रहकर्त्तृत्वेन प्रतिष्ठितोऽशिष्यश्चाहम्॥

प्रधान बौद्ध ग्रंथ ललितविस्तर सूत्र का निम्न वचन देखें –

इह खलु बौद्धशास्त्रसमूहेषु सम्प्रोक्ताः पञ्चविंशतिर्बुद्धा दृश्यन्ते। तेषां शुद्धोदनौरसात् मायादेवीगर्भजातः शाक्यसिंहसर्वार्थसिद्धार्कबन्धुगौतमेति नामचतुष्टयेन प्रसिद्धोऽन्तिमतमः लोकविश्रुतो बुद्धः कपिलवस्तुनगरे कलेश्चतुःशतषडशीत्यधिकद्विसहस्रमितेषु गतेष्वब्देषु शुक्रवासरे सुरद्विषां सम्मोहनाय साक्षाद् विवेकमूर्त्तिः स्वेच्छाविग्रहेण प्रादुर्बभूव। (ललितविस्तर सूत्र)

बौद्धशास्त्र के समूहों में (दीपङ्कर बुद्ध से गौतम बुद्ध तक और भविष्य के मैत्रेय बुद्ध को मिलाकर) पच्चीस बुद्ध दिखते हैं। उनमें शुद्धोदन की औरस सन्तान, जो मायादेवी के गर्भ से उत्पन्न हुई, जिनकी शाक्यसिंह, सर्वार्थसिद्ध (सिद्धार्थ), अर्कबन्धु और गौतम, इन चार नामों से प्रसिद्धि हुई, वे सबसे निकट (हाल ही) के हैं, इनकी कीर्ति संसार में प्रसिद्ध है। कपिलवस्तु में कलियुग के २४८६ (दो हज़ार, चार सौ छियासी) वर्ष बीतने पर शुक्रवार को देवताओं से द्रोह करने वाले (असुरों) को मोहित करने के लिए साक्षात् विवेक की मूर्ति, इच्छानुसार शरीर को धारण करके उत्पन्न हुए।

यहां सुरद्विषां सम्मोहनाय शब्द से गौतम बुद्ध के अवतार का जो उद्देश्य था, उसका अजिनपुत्र महात्मा बुद्ध के अवतार का उद्देश्य, जो श्रीमद्भागवत में सम्मोहाय सुरद्विषाम् के रूप में वर्णित है, उससे संगति होना सिद्ध करता है कि दोनों बुद्ध भगवान् विष्णु के ही अवतार थे एवं समान उद्देश्य से आये थे।

स्वामिश्री मध्वाचार्य आनन्दतीर्थ महाभाग भी शुद्धोदनपुत्र के रूप में भगवान् का बुद्धावतार स्वीकार करते हैं -

यस्त्रैपुराणां प्रथमोऽत्र जातः शुद्धोदनेत्येव जिनेति चोक्तः।
क्षेत्रे गयाख्येऽस्य शिशुं प्रजातं सम्प्रास्य दूरेऽत्र बभूव विष्णुः।
अजानमानाः स्वशिशुं गतं तं शिशुं हरिं वीक्ष्य निजं स्म मेनिरे॥
तेषां तदा वैदिककर्म वीक्ष्य सम्प्राहसत्तद्वपुषैव केशवः।
तं जातमात्रं प्रहसन्तमीक्ष्य सुविस्मितैः पृष्ट उवाच विष्णुः।
बुद्धोऽहमित्येव सुनित्यबोधाज्जगाद चैषामथ बुद्धदर्शनम्।॥
(महाभारततात्पर्यनिर्णय, अध्याय - ३२, श्लोक - १३५-१३६)

स्वयं महर्षि असित ने शुद्धोदन को यह बताया है कि तुम्हारा पुत्र नारायण की शक्ति से युक्त है, इतना तो बौद्ध भी मानते हैं -

पुत्रस्ते वररूपपारमिगतो जातो महातेजवान्
द्वात्रिंशद्वरलक्षणैः कवचितो नारायणस्थामवान्।
तं द्रष्टुं हि ममेप्सितं नरपते सर्वार्थसिद्धं शिशुम्
इत्यर्थं समुपागतोऽस्मि नृपते नास्त्यन्यकार्यं मम॥
(ललितविस्तर, जन्मपरिवर्त, श्लोक - ६६)

भगवान् मध्वाचार्य ने महाभारततात्पर्यनिर्णय में जो घटनाक्रम वर्णित किया है, उसकी साम्यता बौद्ध भी स्वीकार करते हैं -

बोधाय जातोऽस्मि जगद्धितार्थमन्त्या तथोत्पत्तिरियं ममेति।
चतुर्दिशं सिंहगतिर्विलोक्य वाणीं च भव्यार्थकरीमुवाच ॥
(बुद्धचरितम्, अध्याय - ०१, श्लोक - १५ अथवा ३४)

माध्व सम्प्रदाय के ही स्वामिश्री वादिराजतीर्थ महाभाग भी स्वकृत दशावतार स्तुति में शुद्धोदनपुत्र का भगवदवतार होना स्वीकार करते हैं -

बुद्धावतार कविबद्धानुकम्प कुरु बद्धाञ्जलौ मयि दयाम्।
शौद्धोदनिप्रमुखसैद्धान्तिकासुगमबौद्धागमप्रणयन॥

भगवान् आदिशंकराचार्यजी ने स्वकृत दशावतारस्तुति में लिखा है -

धराबद्धपद्मासनस्थाङ्घ्रियष्टिर्नियम्यानिलं न्यस्तनासाग्रदृष्टिः।
य आस्ते कलौ योगिनां चक्रवर्ती स बुद्धः प्रबुद्धोऽस्तु निश्चिन्तवर्ती॥

भगवान् बुद्ध का यह ध्यान नेत्रतन्त्र आदि में भी वर्णित है जो सर्वथा शास्त्रोक्त है -

बुद्धः पद्मासनगतः प्रलम्बश्रुतिचीवरः।
पद्माक्षः पद्मचिह्नश्च मणिबद्धो जगद्धितः।
समाधिस्थो महायोगी वरदाभयपाणिकः॥

भगवान् बुद्ध का ऐसा ही ध्यान अग्निपुराण में भी वर्णित है जो आपने भी अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है -

शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौराङ्गश्चाम्बरावृतः।
ऊर्ध्वपद्मस्थितो बुद्धो वरदाभयदायकः॥
(अग्नि पुराण, दशावतारप्रतिमालक्षण, अध्याय – ४९, श्लोक – ०८)

शान्तव्यक्तित्व, लम्बे कान, गोरा शरीर, वस्त्र पहने हुए, ऊपर की ओर खिले कमल पर बैठे हुए बुद्ध वरद एवं अभय मुद्रा को धारण करके वरदाभय को देते हैं। (यह स्वरूप गौतम बुद्ध का ही है)

अग्निपुराण के इस श्लोक को अपने ग्रन्थ में उद्धृत करने वाले आप महानुभाव संसार को यह बताने का अनुग्रह क्यों नहीं करते कि वस्तुतः अग्निपुराण जिस बुद्ध की बात कर रहे हैं, वे शुद्धोदनपुत्र गौतम बुद्ध ही हैं ?

वक्ष्ये बुद्धावतारं च पठतः शृण्वतोऽर्थदम्।
पुरा देवासुरे युद्धे दैत्यैर्देवाः पराजिताः॥
रक्ष रक्षेति शरणं वदन्तो जग्मुरीश्वरम्।
मायामोहस्वरूपोऽसौ शुद्धोदनसुतोऽभवत्॥
मोहयामास दैत्यांस्तांस्त्याजिता वेदधर्मकम्।
ते च बौद्धाबभूवुर्हि तेभ्योऽन्यो वेदवर्जिताः॥
(अग्निपुराण, अध्याय – १६, श्लोक – ०१-०३)

जिसको पढ़ने या सुनने से अर्थागम होता है, उस बुद्धावतार का वर्णन करता हूँ। पूर्वकाल में देवासुर संग्राम होने पर दैत्यों ने (वेदधर्म के पालन से जन्य पुण्यबल से) देवताओं को पराजित कर दिया। तब सभी देवता जगदीश्वर भगवान् विष्णु के पास रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ! ऐसा कहते हुए गए। तब भगवान् ने माया से मोहित करने वाले रूप को धारण करके शुद्धोदन के पुत्र में अवतार लिया। उन्होंने दैत्यों को मोहित करके उनसे वैदिकधर्म का आचरण छुड़वा दिया। वे सभी दैत्य बाद में बौद्ध बन गए और उनसे अन्य लोग भी वेदों का परित्याग करने लगे।

जैसे महापुराणों में विष्णुपुराण एवं शिवपुराण हैं, वैसे ही उपपुराणों में विष्णुधर्म पुराण (पूर्व) एवं विष्णुधर्मोत्तर पुराण हैं। साथ ही शिवधर्म पुराण (पूर्व) एवं शिवधर्मोत्तर पुराण भी हैं। निम्न प्रमाण विष्णुधर्म पुराण (पूर्व) से है, जिसमें भगवान् विष्णु स्वयं ब्रहमा जी से अपने अवतारों का वर्णन करते हुए श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि अवतारकथन के बाद कहते हैं –

ततः कलियुगे घोरे सम्प्राप्तेऽब्जसमुद्भव।
शुद्धोदनसुतो बुद्धो भविष्यामि विमत्सरः॥
बौद्धं धर्ममुपाश्रित्य करिष्ये धर्मदेशनाम्।
नराणामथ नारीणां दया भूतेषु दर्शयन्॥
रक्ताम्बरा ह्यञ्जिताक्षा: प्रशान्तमनसस्ततः।
शूद्रा धर्मं प्रवक्ष्यन्ति मयि बुद्धत्वमागते॥
एडूकचिह्ना पृथिवी न देवगृहभूषिता।
भवित्री प्रायशो ब्रहमन्मयि बुद्धत्वमागते॥
(विष्णुधर्म (पूर्व) पुराण, अध्याय – ६६, श्लोक – ६८-७१)

हे ब्रहमन् ! उसके बाद घोर कलियुग के आने पर मैं ईर्ष्यारहित होकर शुद्धोदन के पुत्र बुद्ध के रूप में अवतार लूंगा। बौद्धधर्म का आश्रय लेकर मैं धर्म का उपदेश करूँगा, स्त्री एवं पुरुषों को प्राणियों में दयाभाव का उपदेश करूँगा। जब मैं बुद्ध बनूंगा तो लाल वस्त्र पहने, काली आंखों वाले, शांतचित्त शूद्र भी उस समय धर्म का उपदेश करने लगेंगे। पृथ्वी एडूक (मज़ार) से भर जाएगी, मंदिरों की संख्या कम होने लगेगी एवं मेरे बुद्धावतार के बाद पृथ्वी ऐसी ही हो जाएगी।

नारदपाञ्चरात्र में तथा पद्मपुराण - उत्तरखण्ड, अध्याय - ७१ में शिवप्रोक्त विष्णुसहस्रनाम है, जिसमें सभी अवतारों के नाम दिए हुए हैं। बुद्धावतार के सन्दर्भ में निम्न नाम हैं जिनमें शौद्धोदनि भी है, शुद्धोदन का पुत्र - इसे शाक्तप्रमोदकार ने भी सम्मिलित किया है।

शुद्धोदनपुत्र के अतिरिक्त बुद्धावतार में गौतम बुद्ध के अतिरिक्त अन्य तो मान्य होंगे नहीं !

बुद्धो ध्यानजिताशेषो देवदेवो जगत्प्रियः।
निरायुधो जगज्जैत्रः श्रीधरो दुष्टमोहनः॥
दैत्यवेदबहिःकर्ता वेदार्थश्रुतिगोपकः।
शौद्धोदनिर्दष्टदृष्टिः सुखदः सदसस्पतिः॥

इसके अतिरिक्त सपादलक्ष महाभारत के शान्तिपर्व, अध्याय ३४८, श्लोक ४३ में स्वयं भगवान् विष्णु कहते हैं कि मैं शुद्धोदन के पुत्र बुद्ध के रूप में अवतार लूंगा।

काषायवस्त्रसंवीतो मुण्डितः शुक्लदन्तवान्।
शुद्धोदनसुतो बुद्धो मोहयिष्यामि मानवान्॥

श्रीमद्भागवत, मुद्गल पुराण आदि के आधार पर अजनपुत्र महात्मा काश्यप बुद्ध को भगवान् का अवतार आपने बताया, इस बात से हमारा कोई विरोध है ही नहीं, हम उसे यथावत् स्वीकार करते हैं किन्तु शुद्धोदनपुत्र क्षत्रिय गौतम बुद्ध भगवान् के अवतार नहीं हैं, इस बात पर आर्ष वचनों के आधार पर ही आपकी बात स्पष्ट खण्डित हो जाती है। शास्त्रों में इस प्रकार से अजनपुत्र ब्राह्मण काश्यपबुद्ध तथा शुद्धोदनपुत्र क्षत्रिय गौतमबुद्ध, दोनों का भगवान् विष्णु के अवतार के रूप में वर्णन है। इसी प्रकरण में स्वामिश्री गोपालाचार्य जी, स्वामिश्री विद्याभास्कर जी, स्वामिश्री राघवाचार्य जी, स्वामिश्री राजेन्द्रदास जी आदि भी हमारे द्वारा प्रस्तुत शास्त्रप्रमाणों को स्वीकार कर चुके हैं। जो लोग ऐसा नहीं मानते उन्हें पुनः शास्त्रवाक्यों का दृढ़ावलोकन करने की आवश्यकता है।

"भागवतभूषण" श्रीश्रीनाथशास्त्री पौराणिक जन्मशताब्दी समारोह के उपलक्ष्य में किञ्चित् भावकुसुमाञ्जलि समर्पित

यस्य प्रसादमहिनेन जना महाजा
आलोकनेन भवदुःखदवार्तिशान्तिम्।
गच्छन्ति भागवतधर्मदृशा च तस्य
श्रीनाथवर्यमकरन्दयशोऽनुबर्हेत्॥०१॥

जिनकी कृपा की महिमा से उत्तम कुलोद्भूत जन भागवतधर्मरूपिणी दृष्टि से देखकर संसार की दुःखरूपी अग्नि के ताप से शान्ति को प्राप्त करते हैं, ऐसे श्रीनाथजी (श्रीलक्ष्मीपति भगवान् और उनके भक्त श्रीनाथ पुराणाचार्यजी) का मङ्गलमय यश वृद्धि को प्राप्त हो।

लुप्तप्रसुप्तभगवच्चरितार्णवेन
योऽतीतृपज्जननमृत्युरथाङ्गदग्धान्।
गोब्राह्मणश्रुतिसमर्चननैष्ठिकस्य
श्रीनाथपुण्यचरितस्य जयोऽस्तु नित्यम्॥०२॥

जो लोग जन्म और मृत्यु के चक्र से दग्ध हो रहे थे, उन्हें भगवान् के लुप्त प्रसुप्त कथारूपी समुद्र के जल से जिन्होंने तृप्त कर दिया, जो गौ, ब्राह्मण एवं वेदों के समर्चन में निष्ठा रखते हैं, ऐसे पुण्य चरित्र वाले श्रीनाथ पुराणाचार्यजी की नित्य जय हो।

तिष्यस्य पातकधरी पृतनातिचण्डा
नानोग्रषड्रिपुयुतास्त्यभिषेणनेन।
हन्त्यत्र सात्वतगणानपवर्गमार्गे
श्रीनाथजीवनकथा कलिनिग्रही स्यात्॥०३॥

कलियुग की यह पापों को धारण करने वाली अत्यन्त प्रचण्ड सेना कामक्रोधादि छः शत्रुओं एवं और भी अन्य अवगुणों के माध्यम से प्रबल आक्रमण करके मोक्षमार्ग में चल रहे सात्वत (विष्णुपरायण) जनों को यहाँ मार रही है। ऐसे में श्रीनाथ पुराणाचार्यजी की जीवनकथा (प्रेरणास्रोत होकर) कलियुग के निग्रह का निमित्त बने।

याख्यायिका परमहंसमनोऽतिचारा
श्रीकृष्णतत्त्वरसिकेषु तरण्डपादा।
लोकाब्धिमध्यपतितेषु महाविभूते -
र्गाथा जगद्विजयिनी दिवि पर्तिषीष्ट॥०४॥

जो आख्यायिका परमहंसों के भी मन का भेदन कर देती है, संसारसागर में फंसे श्रीकृष्णतत्त्वरसिकों के लिये जो नौका के समान है, महाविभूति श्रीभगवान् की ऐसी दिग्विजयिनी कथा नभोमण्डल में भी विस्तृत हो (गूंज उठे)।

श्रीनाथवर्य इव निःस्पृहभावयुक्ताः
सन्ताः सुभद्रयशसो मधुराक्षराणि।
ये कीर्तयन्ति खलु कीरसमा भवन्ति
कृष्णस्य जङ्गमवपुर्भुवि धारयन्तः॥०५॥

श्रीनाथ पुराणाचार्यजी के ही समान जो सन्तजन निःस्पृह भाव से सुभद्रयश श्रीभगवान् के यशोगान में मधुर अक्षरों का संकीर्तन करते हैं, वे भी श्रीशुकदेवजी के समान होकर श्रीकृष्ण के चलते फिरते शरीर को संसार में धारण करते हैं।

पालाशकाष्ठनिर्मित पुरुषप्रमाण अस्त्रात्मक ब्रह्मदण्ड, जिसे मैं अनेक वर्षों तक धारण-पूजन करता रहा था, कतिपय अत्युत्साही पिशाचसाधकों के कुचक्र के कारण कुछ मास पूर्व अपहृत एवं नष्ट कर दिया गया था। पुनः विशिष्टोपक्रम से देवविग्रहयुक्त वेणुरजतमय पुरुषप्रमाण अस्त्रात्मक ब्रह्मदण्ड का निर्माण हो गया है, समयानुसार प्रतिष्ठा एवं धारणादि कृत्य सम्पादित होंगे।

दण्डध्यान -
सर्वास्त्राणां स्वशक्त्या कृतमरुणरणत्कारघोरैकपिण्डं
ब्रह्माण्डान्तर्द्विजानामवनिकृतमिदं ऋग्विशेषोग्रमूर्तिम्।
जाज्वल्योग्रं त्रिनेत्रं रविरुपजपति स्वादितं शास्त्रजालं
भालाक्षाम्भोजनाभिर्भुजभुवनलयं चिन्तये ब्रह्मदण्डम्॥

दण्डेश्वरध्यान -
एकाक्षं हेतिराजासिवरदविभवं तीक्ष्णशूलं दधानं
सर्पस्थं शङ्कुकर्णाष्टचरणसुचतुर्दंष्ट्रभूषं द्विजिह्वम्।
दुष्टानां निग्रहार्थं प्रलयगतिचतुश्चण्डदोर्दण्डयुक्तं
तं वन्दे कोटिसूर्यप्रतिमबलधरं दण्डनारायणाख्यम्॥

यो विश्वार्णवचण्डवीचिदलितो नाश्नाति तत्त्वामृतं
प्रारब्धाश्रितलब्धयोनिनिगडस्तं पुद्गलाख्यं पशुम्।
तत्त्वेऽभिन्नविभिन्नदेशिकवपुर्धृत्वाहितेभ्यस्सदा

रक्षित्रे कृतिकालभेदनविधौ तस्मै नमो ब्रह्मणे॥
(श्रीनिग्रहाचार्यकृता निग्रहप्रवेशिका)

जो पुद्गलसंज्ञक (जीव) पशु अपने ही प्रारब्धाश्रित योनिरूपी बन्धन में फंसकर, संसारसमुद्र की प्रचण्ड लहरों से पीड़ित हो आत्मामृत का आस्वादन नहीं कर पाता, इस संसार के कर्तव्य और काल की भेदविधि में विभिन्न आचार्यों का स्वरूप, जो तत्वतः अभिन्न ही है, धारण करके ऐसे जीव की अहितों से रक्षा करते हैं, ऐसे परब्रह्म की मैं उपासना करता हूँ।

१) स्वामिश्री वृद्धनृसिंहभारती 'अष्टम' - दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी पीठ के बत्तीसवें जगद्गुरु शङ्कराचार्य के रूप में सिंहासनासीन रहे। धर्मशास्त्र एवं तीर्थों की रक्षा हेतु पूरे भारतवर्ष की विशाल यात्रा की। १८७९ ई० में ब्रह्मलीन हुए।

२) स्वामिश्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नृसिंहभारती - दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी पीठ के तैंतीसवें जगद्गुरु शङ्कराचार्य के रूप में १८७९ ई० से १९१२ ई० तक सिंहासनासीन रहे। शङ्करजयन्ती महोत्सव प्रारम्भ कराया और श्रीशङ्कराचार्य जन्मभूमि का पुनरुद्धार किया।

३) स्वामिश्री सच्चिदानन्द सरस्वती - दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी पीठ के अन्तर्गत महान् सिद्ध संन्यासी थे। पराम्बा के निर्देश पर स्वामिश्री निगमानन्द सरस्वती को ताराबीज की स्वप्नदीक्षा देकर ज्ञानमार्ग की ओर अग्रसर किया।

४) स्वामिश्री निगमानन्द सरस्वती परमहंसदेव - कुलीन बङ्ग चट्टोपाध्याय ब्राह्मण परिवार में जन्म हुआ। स्वामिश्री सच्चिदानन्द सरस्वती से स्वप्नलब्ध ताराबीज को तारापीठ भैरव स्वामिश्री वामाचरण (बामा खेपा) से विधिदीक्षित होकर ब्रह्मवेत्ता बने। कामाख्या में सविकल्प एवं निर्विकल्प समाधि सिद्ध की। ज्ञानमार्ग की सिद्धि स्वामिश्री सच्चिदानन्द सरस्वती से, तन्त्रमार्ग की सिद्धि स्वामिश्री वामाचरण से, योगमार्ग की सिद्धि स्वामिश्री सुमेरुदास से एवं भक्तिमार्ग की सिद्धि गौर्यम्बा देवी से प्राप्त की। प्रयागराज के कुम्भ में 'द्वा सुपर्णा' श्रुति पर गूढ़ व्याख्यान के कारण अपने गुरु स्वामिश्री सच्चिदानन्द सरस्वती की अनुशंसा पर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामिश्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नृसिंहभारती के द्वारा 'परमहंस' की उपाधि से अलङ्कृत किये गये।

५) स्वामिश्री अमृतानन्द सरस्वती - कुलीन कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में जन्म हुआ। स्वामिश्री निगमानन्द सरस्वती परमहंसदेव से तन्त्रमार्ग की दीक्षा ग्रहण की। वाम एवं दक्षिणमार्ग की नानाविध साधना-सिद्धियों को प्राप्त एवं विसर्जित करते हुए हिमालयवासी हुए।

६) निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु - १९९७ ई० में कुलीन शाकद्वीपीय ब्राह्मण परिवार में जन्म हुआ। भक्तिमार्ग का उपदेश अपनी माता श्रीमती ज्ञानवती देवी से प्राप्त की। ज्ञानमार्ग की सिद्धि पिता आचार्यश्री शङ्करदास गुरु के द्वारा सावित्रीदीक्षा एवं सारस्वतदीक्षा के माध्यम से प्राप्त की। धर्मशास्त्रों के यथावत् सदुपदेश में चार वर्ष की दैहिक अवस्था से लगे रहे और ख्याति अर्जित की। अनेकानेक आचार्यों और सिद्धों के मार्गदर्शन में कुलकुण्डलिनी, स्तम्भिनी, जातिस्मरी, वशङ्करी आदि साधनाओं को सिद्ध करते हुए कामाख्या के वनों में तपस्या करके २०१७ ई० में विलुप्तप्राय निग्रहसम्प्रदाय के परमाक्षरसूत्रों को प्राप्त किया एवं २०२१ ई० में सूत्रविस्तारभाष्य लिखकर शबरीनारायण तीर्थ में निग्रहयन्त्र को स्वप्नलब्ध किया।

आषाढ़ कृष्ण दशमी (४ जुलाई, २०२१) को उमगापर्वत की यात्रा में पञ्चबीजात्मक निग्रहमन्त्र को स्वप्नलब्ध किया एवं पराम्बा के आदेश से स्वामिश्री अमृतानन्द सरस्वती के पास हिमालय जाकर श्रावण पूर्णिमा (२२ अगस्त, २०२१) को दक्षिणमार्ग से शाक्ताभिषिक्त हुए। सभी देवता, आचार्य, मन्त्र एवं सम्प्रदायों में तात्त्विक अभेदबुद्धि रखते हुए अव्यक्ताद्वैतमतानुसार निग्रहागमान्तर्गत 'निग्रहाचार्य' के पद पर आसीन हो कर्तव्यानुरूप नानाविध भाष्य एवं प्रकरण ग्रन्थों का लेखनोपदेश करके निर्भयतापूर्वक दुराग्रहमुक्त वक्तव्यों से सनातनी समाज का मार्गदर्शन करते हुए क्रमशः पञ्चपुरश्चरण और अभिषेकक्रम की तपस्या सिद्ध करके स्वपरम्परा में अग्रसर हो भाद्रपद शुक्ल राधाष्टमी/मासिक दुर्गाष्टमी (२३, सितम्बर,२०२३ ई०) में महासाम्राज्याभिषिक्त हुए।

वर्तमान विवाद के जनक हम नहीं हैं। आजकल की गुटबाजी के समय में हम कुछ बोलें तो हिन्दू एकता टूटती है (पता नही , जुटी कब थी) लेकिन अन्य लोग बोलें तो कोई समस्या नहीं। अस्तु, लोगों ने पूछा है तो अपने

शास्त्राध्ययन के अनुसार जो बात समझता हूँ, बताता हूँ। उक्त आलोक में शैवागमों, वैष्णवागमों, शाक्तागमों तथा कुछ निबन्ध ग्रन्थों के आश्रय से सारभूत बात बता देता हूँ और सामान्यतः यह बात किसी भी देवप्रतिमा पर लागू होती है।

१) चल और अचल, दो प्रकार की प्रतिमा होती है। चल का अर्थ है, जिसे आवश्यकता के अनुसार (उत्सव हेतु या स्थानान्तरण के समय) हटाया जा सके। ऐसी प्रतिमा अपने आधार से चिपकी हुई नहीं होती। अचल प्रतिमा को स्थायी रूप से आधार के साथ जोड़ा जाता है जिसे किसी भी सामान्य कारण से हटाया नहीं जा सकता। विशेष आपत्ति की अथवा जीर्णोद्धार की स्थिति में "बिम्बालय/सूक्ष्मालय" विधान से हटाकर फिर स्वस्थ विधान से पुनः प्रतिष्ठित किया जाता है।

२) घर में सामान्यतः चल प्रतिमापूजन करना चाहिए एवं देवालयों में अचल। देवालय हेतु विस्तार का निश्चित विधान नहीं है, बस प्रतिमा का आनुपातिक लक्षण है किन्तु घर में प्रतिमा का विस्तार न्यूनतम अंगुष्ठ (अंगूठे) प्रमाण से लेकर वितस्ता (बित्ते) अथवा बारह अंगुल तक हो सकता है। विशेष अर्चाविग्रह हेतु अथवा राजप्रासाद हेतु अधिकतम मान सोलह अंगुल का होता है। यदि इससे बड़ी प्रतिमा रखनी है तो उसके ऊपर यथोचित प्रासाद वास्तु और शिखर ध्वज आदि का स्थापन पूजन होना चाहिए।

३) देवालय में प्रतिष्ठा हेतु सुरप्रतिष्ठा का एक विशेष मुहूर्त देखना होता है। इसमें देवताभेद से भी मास, तिथि, नक्षत्र का उत्तमाधम भेद हो जाता है। इसमें कार्यविस्तार और ब्राह्मणों की संख्या के आधार पर एक से लेकर कई दिन भी लग सकते हैं। घर में प्रतिष्ठा हेतु सामान्य शुद्ध काल में लघुप्रतिष्ठा या सूक्ष्मप्रतिष्ठा कर सकते हैं जिसमें लगभग एक आध घण्टे का समय लगता है। किन्तु अप्रतिष्ठित प्रतिमापूजन अशास्त्रीय है। यदि प्रतिष्ठाज्ञान के अभाव में मात्र भक्ति का बाहुल्य होने से वह प्रतिमा उक्त देवता के भाव से विधिपूर्वक पूजित होती रहती है तो उसमें एक वर्ष के बाद देवतत्त्व स्वयं ही प्रतिष्ठित होने लगता है। यदि प्रतिष्ठा के बाद वह प्रतिमा अशास्त्रीय विधि से पूजित होती रहती है तो एक वर्ष में उसका देवतत्त्व खण्डित होने लगता है।

४) प्रतिष्ठारहित पूजन या पूजनरहित प्रतिष्ठा, दोनों ही अनर्थकारी हैं। इससे देवत्त्व की हानि और आसुरी तत्त्व का सन्निधान होने लगता है, जैसे शरीर से कट कर अलग हुआ अङ्ग सड़ने लगता है। बिना शास्त्रीय विधि से प्रतिष्ठा के पूजित होने वाली देवप्रतिमा अथवा प्रतिष्ठा के बाद शास्त्रीय विधि से पूजित न होने वाली देवप्रतिमा, दोनों ही शुभ फल को प्रदान नहीं करते। प्रतिष्ठा से पहले पूजन न हो। प्रतिष्ठा के बाद पूजन खण्डित न हो। सूतक, अशुद्धि, विपत्ति के समय प्रत्यक्ष सेवा न होने पर मानसिक रूप से उतने दिनों तक देवता की पूजा करते रहें और सुकाल में विशेषार्चन करके दोषनिवारण करें।

५) प्रतिष्ठा के कई प्रभेद हैं। स्वप्रतिष्ठित, देवप्रतिष्ठित, सिद्धप्रतिष्ठित एवं लोकप्रतिष्ठित। स्वप्रतिष्ठित प्रतिमा में मनुष्यों के द्वारा आवाहन प्रतिष्ठा आदि नहीं होते। जैसे शालग्रामशिला, बाणलिङ्ग, नर्मदेश्वर, शक्तिपिण्ड आदि स्वप्रतिष्ठित हैं। देवप्रतिष्ठित प्रतिमा की स्थापना देवताओं के द्वारा पहले की गयी होती है,

जैसे श्रीरामजी के द्वारा रामेश्वरम्। सिद्धप्रतिष्ठित प्रतिमा की स्थापना सिद्ध महात्माजन करते हैं, जैसे महर्षि अगस्त्य, वशिष्ठ, दुर्वासा आदि के द्वारा अथवा शङ्कराचार्य जी, वल्लभाचार्य जी, निम्बार्काचार्य जी, रामानुजाचार्य जी, मध्वाचार्य जी, रामानन्दाचार्य जी, चैतन्य महाप्रभु, हितहरिवंश महाप्रभु आदि के द्वारा स्थापित देवविग्रह। लोकप्रतिष्ठित प्रतिमाओं की स्थापना जनसामान्य के द्वारा याज्ञिक विधान से की जाती है।

कुछ लोग शालग्राम और लड्डू गोपाल को समान बता कर प्रतिष्ठा का निषेध कर रहे हैं। शालग्राम जी की प्रतिष्ठा नहीं होती, इसमें तो शास्त्रीय प्रमाण है। लड्डू गोपाल की नहीं होती, इसमें क्या शास्त्रीय प्रमाण है ? और यदि उन्हें शालग्राम के ही समान माना जाये तो स्त्रीशूद्रादि के द्वारा या अनुपवीत के द्वारा उनकी पूजा का निषेध कब कर रहे हैं ये लोग ? धातु की बनी प्रतिमा में अग्न्युत्तारण होता है, न्यास होता है, ये सब का सामान्य बोध भी नहीं है तो ऐसे ब्राह्मण लोग सीधे निर्णय ही देने क्यों आ जाते हैं ? यजमान और ब्राह्मणों के ज्ञान का स्तर एक सा हो चला है। विष्णुसंहिता के चौदहवें पटल का ही अध्ययन कर लेते।

शंकराचार्य हिन्दुओं के सर्वोच्च धर्मगुरु होते हैं। बहुत अच्छी बात है। आदिशंकराचार्य जी का लोककाल क्या है ? पुरी पीठ के अनुसार लगभग पांच शताब्दी ईसा पूर्व। शृङ्गेरी पीठ के अनुसार लगभग आठवीं शताब्दी ईसा पश्चात्। आपके सम्प्रदाय में पीठों की संख्या कितनी है ? पुरी पीठ के अनुसार चार पीठ और चार ही स्वतन्त्र आचार्य, न्यूनाधिक अमान्य। द्वारिका-ज्योतिष्पीठ के अनुसार पीठ तो चार किन्तु एकाधिक पीठों पर एक ही आचार्य मान्य। तीनों पीठों के गुरुतुल्य स्वामिश्री करपात्रीजी के द्वारा पञ्चम काशी सुमेरु की स्थापना पर "सर्वोच्च धर्मगुरुओं" का मौन। इसीलिए बात चार पीठ की और व्यवहार पञ्चपीठ का।

चतुष्पीठ सम्मेलन में पञ्चम पीठ को भी बुलाना है, किन्तु तब काशी सुमेरु नहीं, काञ्ची कामकोटि को मान्यता देंगे। पुरी पीठ वालों के अनुसार ज्योतिष्पीठ वाले वर्णहीन और अराजकता के पोषक हैं। ज्योतिष्पीठ वालों के अनुसार पुरी पीठ वाले स्वार्थी और कपटी हैं। पुरी पीठ की शरण में हिन्दू जायेगा तो स्वयमेव द्वारिका-ज्योतिष्पीठ वालों से शत्रुता हो जायेगी। द्वारिका-ज्योतिष्पीठ की शरण में हिन्दू जायेगा तो पुरी पीठ वालों से स्वयं ही शत्रुता हो जायेगी। यही हाल शृङ्गेरी एवं काञ्ची के मध्य भी है। किसी भी पीठ की शरण में हिन्दू जाये, शेष पीठ वाले उसका जीवन कठिन कर देंगे तो कोई कैसे और क्यों आपके पास आये ?

अन्य गम्भीर विषय छोड़ दीजिए, हिन्दू राष्ट्र और राम राज्य तो बहुत ऊपर की बात है। पहले तो यहाँ आदिशंकराचार्य जी के कार्यकाल एवं आम्नायपीठों की संख्या में ही सभी शाङ्करपीठों के मध्य एकरूपता दिखा दो, उतने में ही बहुत कुछ शोधन हो जायेगा। किन्तु अपने गुरु का वकील और दूसरे के गुरु का जज बनने की इच्छा बलवती होती देख हिन्दू यदि आपके पास आना भी चाहे न, तो आना चाहता नहीं। शांकर पीठों को एकात्मकता का प्रतीक माना जाता था, आपने आज घर घर में, गांव गांव में झगड़े करा रखे हैं।

पुरी वालों के मध्य बैठने पर पता चलेगा कि पूरे हिन्दू धर्म में सबसे महान्, ज्ञानी, साधक मात्र स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती ही हैं और पूरे धर्म का भविष्य उनपर ही टिका है, बाकी लोग तो धर्म को बेचने पर तुले हैं। ज्योतिष्पीठ वालों के मध्य बैठने पर पता चलेगा कि पूरे हिन्दू धर्म में सबसे महान्, ज्ञानी, साधक मात्र स्वामी अविमुक्तेश्वरानन्द सरस्वती ही हैं और पूरे धर्म का भविष्य उनपर ही टिका है, बाकी लोग तो धर्म को बेचने पर तुले हैं। कोई महापण्डित तो स्वातिरिक्तान्य शैव, शाक्त, वैष्णवादि सबको पाखण्ड एवं पतित ही बताते फिरते हैं। प्रश्न करने पर कहते हैं कि तुम कोई राष्ट्रपति हो जो तुम्हें उत्तर दें ? यदि ऐसा है कि तो केवल राष्ट्रपति को ही दीक्षा दें और उनके ही ठेकेदार बनें, बाकियों को छोड़ दें।

आप एक व्यक्ति हैं, एकमात्र नहीं। एक पीठ हैं, एकमात्र नहीं। एक सम्प्रदाय हैं, एकमात्र नहीं। एक व्यवस्था हैं, एकमात्र नहीं। एकमात्र होने का दावा करने के बाद भी आप एकमात्र के समान न व्यवहार कर सकेंगे और न ही वैसा प्रभाव दिखा सकेंगे क्योंकि एकमात्र हैं ही नहीं। हम जैसों को पतित, कुटिल, अधम आदि कहने वाले लोग स्वयं अन्य पीठों के शङ्कराचार्यों के साथ कैसा व्यवहार रखते हैं, निरीक्षण कर लेंगे तो पतित, कुटिल, अधम आदि का बोध हो जायेगा। जब स्वयं को हिन्दुओं का "सर्वोच्च धर्मगुरु" बताने वाले लोग और उनके अनुयायी CAA में पाकिस्तानी मुसलमानों के अधिकार की बात करने लगें, ख़्वाजा का गुणगान करने वालों के साथ मिलने जुलने लगें, अतीक अहमद के मरने पर शोक व्यक्त करने लगें, अभियानों में मुसलमानों का सहयोग लेने की बात करने लगें और आपत्ति करने पर भड़कने लगें, तब कष्ट हिन्दुओं को भी होता है।

आपकी सर्वोच्चता, सार्वभौमिक स्थिति, परमाराध्यता को हिन्दू वर्षों से ढोता आया है और आगे भी ढोना ही पड़ेगा। भले ही उसके घर, गाँव में उक्त पीठों के 'गिरोह' बनकर दंगे क्यों न प्रारम्भ हो जायें किन्तु अतीक अहमद के मरने पर वक्तव्य देने वाले महानुभाव स्वयं के वर्ण के विषय में सार्वजनिक भ्रमोच्छेदन नहीं कर सकते। मुसलमानों का सहयोग लेने के लिए तैयार महानुभाव शास्त्रनिष्ठों से मिल नहीं सकते। आपका शरीर और चेहरा महान् नहीं है, आपका व्यक्तित्व और व्यवहार ही आपको महान् बनाता है अन्यथा धरातल पर हाल तो यह है कि आदिशंकराचार्य जी के काल और पीठों के विषय तक में आपका पक्ष स्पष्ट नहीं है। अहम्मन्यता से ग्रस्त लोगों के अनुयायियों में अन्धभक्ति का वह आवरण स्थापित है कि उनमें तथा रेगिस्तानी म्लेच्छों के हिंसक हठ में भेद ही नहीं हो पा रहा।

साक्षात् शिवस्वरूप, सर्वज्ञ, सर्वोच्च धर्मगुरुओं का यह हाल है कि जिस व्यक्ति ने मठ पर कब्जा किया, जिस व्यक्ति ने लाठियां बरसायीं, जिस व्यक्ति ने सबसे सामने गालियां दीं, जिस व्यक्ति ने मारने का प्रयास किया, उन आततायियों का पुरी अथवा ज्योतिष्पीठ के अनुयायियों ने क्या बिगाड़ लिया ? कुछ नहीं। जीवन भर पुरी वाले आपके गुरु और परमगुरु को भला बुरा कहते रहे, आपने क्या बिगाड़ लिया ? पुरी पीठ वालों को आज भी ज्योतिष्पीठ वाले क्या कुछ नहीं कहते, क्या बिगाड़ लिया आपने ? अजी, सब छोड़िए, अपने ही पीठों के जो नकली शंकराचार्य बने घूम रहे हैं, उन लोगों का क्या बिगाड़ लिया आपने ? अपितु, आपसे अधिक ही सुविधा में वे चल रहे हैं और आपका उपहास कर रहे हैं। लेकिन हमारे समय सभी लोग गुरुभक्त और धर्मरक्षक बन जाते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि हमारे पक्ष से उन्हें मारने पीटने कोई नहीं आने वाला।

चौरगणपतिसाधनरहस्यम्

प्रश्नकर्ता - चौरगणपति क्या होते हैं ? तन्त्रशास्त्र में इनका क्या महत्त्व है ?

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु - भगवान् गणपति के नीलगणपति, उच्छिष्ट गणपति, क्षिप्रवरदगणपति, श्वेतार्कगणपति, हरिद्रागणपति, चौरगणपति आदि अनेकों स्वरूप शास्त्रों में वर्णित हैं। भगवान् द्वारदेवताधिपति विघ्नेश्वर गणपति का ध्यान (जिनके पचास गण देहद्वारों में विघ्नकर्ता चोर के रूप में उपस्थित रहते हैं) तन्त्रशास्त्रों में निम्न प्रकार से बताया गया है -

अथ वक्ष्ये द्वारदेवध्यानं तन्त्रेषु गोपितम्।
देवद्वारं द्वारदेवाः स्वयमुच्चाटयन्ति ये॥
(हाहारावतन्त्र)

अब मैं तन्त्रों में गोपनीय द्वारदेव का ध्यान बताता हूँ, जिसके द्वारा द्वारदेवता स्वयं देवद्वार का उच्चाटन कर देते हैं।

ध्यानमन्त्र -
पाशाङ्कुशफलाम्भोजपाणिं पातालतुण्डिलम्।
वीरं विघ्नेश्वरं वन्दे गजवक्त्रं त्रिलोचनम्॥
(हाहारावतन्त्र)

अपने हाथों में पाश, अङ्कुश, फल और कमल का पुष्प धारण किए, पाताल (नीचे) की ओर मुख वाले, हाथी का मस्तक एवं तीन नेत्रों से युक्त वीर विघ्नेश्वर को मैं प्रणाम करता हूँ।

मूलक्रिया की सङ्क्षिप्त विधि -

पहली विधि (वर्णविलासतन्त्र के अनुसार)

हृदय - क्रों | दक्षिण कर्ण - हूं | वाम कर्ण - हूं | दक्षिण नासाच्छिद्र - क्रीं | वाम नासाच्छिद्र - क्रीं | मुख - स्त्रीं | नाभि - ऐं | लिङ्गमूल - हसौः | गुदा - वं | भृकुटि के मध्य मनःस्थान - ॐ |

दूसरी विधि (गणेशविमर्शिनी के अनुसार)

हृदय - क्रों एवं ॐ | दक्षिण नेत्र - ह्रीं | वाम नेत्र - ह्रीं | दक्षिण कर्ण - ह्रीं | वाम कर्ण - ह्रीं | दक्षिण नासाच्छिद्र - हुँ | वाम नासाच्छिद्र - हुँ | मुख - स्त्रीं | नाभि - क्लीं | लिङ्गमूल - हसौः, (मतान्तर से ह्सौः या ह्सौं) | गुदा - वं | भौंह के मध्य मनःस्थान - हुं | उपर्युक्त सभी अङ्गों में निर्दिष्ट बीजों में प्रत्येक बीज को दस अथवा (सिद्ध साधक हो तथा समयाभाव हो तो) एक बार जप करने से प्रत्येक द्वार में कपाट लग जाता है।

ईर्ष्या से युक्त चित्त वाले तान्त्रिक, देवता अथवा ऐसी ही शक्तियों के द्वारा साधकों के पुण्य और तपोबल का हरण करने अथवा उससे रक्षा की विधि चौरगणपति के अनुशासन में आती है। प्रधानता से चौरकर्म आदि के लिए ऐसे तान्त्रिक वृश्चिक लग्न का समय उपयुक्त समझते हैं, जैसा कि देवर्षि नारद अपनी संहिता में कहते हैं -

स्थिरकर्माखिलं कार्यं राजसेवाभिषेचनम्।
चौर्यकर्म स्थिरारम्भाः कर्तव्या वृश्चिकोदये॥

समस्त कार्यों के प्रारम्भ में विघ्ननाश हेतु भगवान् गणपति का पूजन करना चाहिए। शिवपुराण की विश्वेश्वरसंहिता, अध्याय - १८ में कहते हैं -

निर्विघ्नेन कृतं साङ्गं कर्म वै सफलं भवेत्।
तस्मात्सकलकर्मादौ विघ्नेशं पूजयेद्बुधः॥

स्कन्दपुराण, माहेश्वर - केदारखण्ड, अध्याय - १० का भी ऐसा ही मत है -

लोका भस्मीकृता येन तस्माद्येनापि रक्षिताः।
तस्यार्च्चनाविधिः कार्यो गणेशस्य महात्मनः॥
कर्मारम्भे तु विघ्नेशं ये नार्चन्ति गणाधिपम्।
कार्यसिद्धिर्न तेषां वै भवेत्तु भवतां यथा॥

समुद्रमन्थन से पूर्व गणपतिपूजन न करना, सतीशिवविवाह से पूर्व गणपतिपूजन न करना ही उक्त प्रसङ्गों में विघ्न और विनाश का कारक है, ऐसा स्कन्दपुराण के केदारखण्ड, मानसखण्ड आदि के अध्ययन से स्पष्ट होता है। शरीर के ग्यारह स्थानों में पचास गणदेवता रहते हैं जो साधक के पुण्य का हरण करते हैं।

चक्षुर्द्वयं तथा कर्णद्वयं नासापुटद्वयम्।
मुखं नाभिं लिङ्गमूलं गुदस्थानं तथैव च॥

मनोद्वारं भ्रुवोर्मध्ये दशैका द्वारसञ्ज्ञिताः।
अङ्कुशं प्रथमं बीजं हृदये दशधा जपेत्॥
प्रजपान्ते ततो मातः कवाटं (कपाटं) निक्षिपेत्ततः।
कर्णयोश्च तथा कूर्चं कालीं नासापुटे ततः॥
मुखे स्त्रीं द्विविधं बीजं नाभौ वाणीं ततो जपेत्।
ह्सौः बीजं लिङ्गमूले वं गुदे परिकीर्त्तितम्॥
ओङ्कारञ्च भ्रुवोर्मध्ये मनःस्थाने तथैव च।
एतदेकादशं बीजं प्रतिद्वारे कपाटवत्॥
अधुनाहं प्रवक्ष्यामि चोरमन्त्रमतः शृणु।
चोरमन्त्रपरिज्ञानं विना हे ब्राह्मणेश्वरि॥
पुराणं प्रपठेद्यस्तु स एव मूर्तिमान् कलिः।
परजन्मनि पापिष्ठः स भवेच्चौरकुक्कुरः॥
शिवपूजा विष्णुपूजा शक्तिपूजा तथैव च।
सर्वपूजासु यत्तेजो हरते गणपः स्वयम्॥
पञ्चाशद्गणदेवानां ज्योतींषि मुनिपुङ्गवाः।
प्रतिद्वारपथे गत्वा प्रतिपद्मेषु जृम्भते॥
हरन्ति जपतेजांसि प्रतिपद्मेषु संस्थिताः।
जपपूजासु यत्तेजस्तत्र चौरो गणाधिपः॥
तस्माच्चौरप्ररोधार्थं चौरमन्त्रं जपेद्दश।
ततस्तु पूजयेद्धीमान् यस्य या इष्टदेवताः॥
ततः फलमवाप्नोति ब्रह्मादित्रिदिवौकसः।
चौरमन्त्रं महामन्त्रं पञ्चाशद्गणतोषणम्॥
चौरमन्त्रं विना भद्रे शान्तिस्वस्त्ययनं कुतः॥
(वर्णविलासतन्त्र)

दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनों नासाच्छिद्र, मुख, नाभि, लिङ्गमूल, गुदा एवं दोनों भौंह के मध्य का मनोद्वार, इन ग्यारह स्थानों को द्वार कहते हैं। पहले अङ्कुश बीज (क्रों) को हृदय में दस बार जप कर न्यास करे। उसके बाद सभी द्वार के कपाटों को सुरक्षित करना प्रारम्भ करे। दोनों कानों में कूर्च बीज (हूं), नासिका के दोनों छिद्रों में कालीबीज (क्रीं), मुख में 'स्त्रीं', नाभि में वाग्बीज (ऐं), लिङ्गमूल में 'ह्सौः', गुदा में 'वं' तथा भृकुटि के मध्य मनःस्थान में ओङ्कार का जप करे। इस प्रकार प्रत्येक द्वार में (दस दस बार) ये बीज कपाट के समान लग जाते हैं। अब मैं चोरमन्त्र बताता हूँ, सुनो। चोरमन्त्र के ज्ञान के बिना जो पुराणादि पढ़ता है, वह साक्षात् कलियुग ही है। दूसरे जन्म में पापी बनकर चोर अथवा कुत्ता बनता है। शिवपूजा, विष्णुपूजा अथवा उसी प्रकार शक्तिपूजा आदि सभी पूजाओं का जो तेज है उसे गणपति स्वयं हरण करते हैं। प्रत्येक द्वार के पद्मों में पचास गणदेवताओं के साथ जाकर जप के तेज का हरण करते हैं। जप, पूजा में जो तेज है, उसके चोर गणपति हैं। इसीलिए चोरों को रोकने के लिए चोरमन्त्र का दस बार जप करना चाहिए। उसके बाद बुद्धिमान् व्यक्ति, उसके जो भी इष्टदेव हों, उनका पूजन करे। इससे ब्रह्मादि देवताओं का फल प्राप्त करता है। चौरमन्त्र महामन्त्र है, इससे पचास गणों की सन्तुष्टि होती है। चौरमन्त्र के बिना शान्ति और स्वस्त्ययन कैसे हो सकता है ?

यहाँ ध्यातव्य है कि भृकुटि के मध्य मनःस्थान में जिस ओङ्कार का जप और न्यास करना है, उसमें अपतित द्विजाति का ही अधिकार है। व्रात्य, पतित द्विज, वर्णसंकर, स्त्री, शूद्र आदि के लिए शूद्रसेतु ही प्रणव है।

चतुर्दशस्वरो योऽसौ शेष औकारसञ्ज्ञकः।
स चानुस्वारचन्द्राभ्यां शूद्राणां सेतुरुच्यते॥

अथवा

चतुर्दशस्वरो योऽसौ सेतुरौकारसञ्ज्ञकः।
स चानुस्वारनादाभ्यां शूद्राणां सेतुरुच्यते॥
(कालिकापुराण)

मन्त्रस्तथैव प्रणवो द्विजानां सेतुरुच्यते।
शूद्राणां चन्द्रबिन्दुस्थ औकारः सेतुरुच्यते॥
(कौलावली)

चतुर्दशस्वरो देवि पुण्यसिद्धिप्रदायकः।
नादबिन्दुसमोपेतो दीर्घप्रणव उच्यते॥
तन्त्रोक्तः प्रणवः सोऽपि स्त्रीशूद्राणां प्रशस्यते।
तस्मात्स्त्रीणाञ्च शूद्राणां स एव परिकीर्तितः॥
(यामलतन्त्र)

श्रीविष्णुकोटिमन्त्रेषु कोटिमन्त्रे शिवस्य च।
शूद्राणामधिकारोऽस्ति स्वाहाप्रणववर्जिते॥
(मुण्डमालातन्त्र)

शिव और विष्णु जी के ऐसे मन्त्र, जिसमें ॐ तथा स्वाहा न हों, वे शूद्रों के द्वारा ग्राह्य हैं।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को वेदोक्त मूल प्रणव (ॐ), जिसमें साढ़े तीन मात्रा होती है उसका उच्चारण करना चाहिए किंतु स्त्री और शूद्रों को बिन्दु एवं चौदहवें स्वर से युक्त दीर्घप्रणव (औं) जिसमें ढाई मात्रा होती है, उसका उच्चारण करना चाहिए।

स्वाहाप्रणवसंयुक्तं शूद्रे मन्त्रं दददद्विजः।
शूद्रो निरयगामी स्याद्ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्॥
(देवीयामलतन्त्र)

जो ब्राह्मण शूद्र को स्वाहा एवं (वैदिक) प्रणव से युक्त मन्त्र देता है, वह मन्त्रग्राही शूद्र नरक जाता है और ब्राह्मण भी अधोगति को प्राप्त होता है।

तन्त्रोक्तं प्रणवं देवि वह्निजायां च सुन्दरि।
प्रजपेत्सततं शूद्रो नात्र कार्या विचारणा॥
(भूतशुद्धितन्त्र)

वह्निजायास्थले मायां दत्वा शूद्रो जपेद्यदि।
(शाक्तानन्दतरङ्गिणी)

वेदोक्त वह्निजाया (स्वाहा) और वेदोक्त प्रणव (ॐ) के स्थान पर तन्त्रोक्त वह्निजाया / माया (ह्रीं) तथा तथा तन्त्रोक्त प्रणव (औं) का प्रयोग करके शूद्रों को मन्त्र देना चाहिए। यही नियम पतित द्विजाति एवं स्त्रियों के लिए भी मान्य है।

ब्रह्माण्डपुराण के उत्तरभाग के अनुसार इन भगवान् विघ्नेश्वर के अधीन रहने वाले पचास गणों के नाम इस प्रकार हैं (विघ्नेश को मिलाकर कुल इक्यावन) -

विघ्नेशो विघ्नराजश्च विनायकशिवोत्तमौ।
विघ्नकृद्विघ्नहन्ता च विघ्नराड्गणनायकः॥
एकदन्तो द्विदन्तश्च गजवक्त्रो निरञ्जनः।
कपर्दवान्दीर्घमुखः शङ्कुकर्णो वृषध्वजः॥
गणनाथो गजेन्द्रास्यः शूर्पकर्णस्त्रिलोचनः।
लम्बोदरो महानादश्चतुर्मूर्तिः सदाशिवः॥
आमोदो दुर्मदश्चैव सुमुखश्च प्रमोदकः।
एकपादो द्विपादश्च शूरो वीरश्च षण्मुखः॥
वरदो वामदेवश्च वक्रतुण्डो द्विदन्तकः (द्विरण्डकः)।
सेनानीर्ग्रामणीर्मत्तो मत्तमूषकवाहनः (विमत्तो मत्तवाहनः)॥
जटी मुण्डी तथा खड्गी वरेण्यो वृषकेतनः।
भक्ष्यप्रियो गणेशश्च मेघनादो गणेश्वरः॥

साधकों के पुण्य का हरण इन्द्र करते हैं, अतः आसन के नीचे जल देकर तिलक लगाने की परम्परा प्रसिद्ध ही है। इन्द्रदत्ता माला को धारण करके इन्द्रपुत्र वालि के द्वारा प्रतिपक्षी के तेज का हरण करने की बात भी लोकमान्य है। महाराज पृथु, सगर आदि के यज्ञपशु अश्व का इन्द्र के द्वारा हरण भी शास्त्रों में वर्णित है। अधुना भी तन्त्रविद्या के विशेषज्ञों के द्वारा ईर्ष्यावश अन्य साधकों के दुर्लभ उपस्कर, यन्त्र, मन्त्रबल आदि का हरण देखा जाता है। अतः भगवान् गणपति ने स्वयं ही चौरमन्त्रादि का प्रयोग उपदिष्ट किया है।

कर्णद्वयं तथा चक्षुर्द्वयं नासा मुखं ततः।
नाभिस्थाने लिङ्गमूले गुदस्थाने तथैव च॥
मनोद्वारं भ्रुवोर्मध्यं दशैकं द्वारमीरितम्।
प्रतिद्वारे न्यसेन्मन्त्रं चौराख्यं ब्राह्मणेश्वरि॥
चौरमन्त्रञ्चाह भद्रे प्रतिद्वारे कपाटवत्।
रहस्यं ते प्रवक्ष्यामि पञ्चाशद्गणतोषणम्॥
अङ्कुशं पञ्चमं बीजं प्रथमे दशधा जपेत्।
प्रजप्य सुभगे मातः कपाटं निःक्षिपेत्ततः॥
अन्यथा अङ्कुशैर्बीजैः कपाटं भेदिरे गणाः।
चन्द्रिकान्तर्गतानित्यं शङ्करं वरसुन्दरम्॥
चन्द्रिकासु समालीनः शिञ्जिनी अणिमा गुणः।
चन्द्रबिन्द्वात्मिका नित्या गणेशपरिपूजिता॥
ह्रीं ह्रीं बीजद्वयमिति विन्यसेन्नयनद्वये।
कर्णयोश्च तथा ह्रीं ह्रीं हुँ हुँ नासाद्वये तथा॥
मुखे स्त्रीं द्विविधं बीजं नाभौ क्लीं सुभगेश्वरि।
हसौ बीजं लिङ्गमूले गुदे वं परिकीर्तितम्॥
हुङ्कारञ्च भ्रुवोर्मध्ये मनःस्थाने तथैव च।
एतदकादशद्वारे चौरमन्त्राणि विन्यसेत्॥
दशधा चौरमन्त्रञ्च एकधा वापि बीजकम्।
अनेनैव जपेनापि प्रतिद्वारे कपाटकम्॥
(गणेशविमर्शिनी)

गणेशविमर्शिनी के अनुसार न्यासविधान में आंशिक भेद है और यह अधिक प्रचलित भी है। द्वारों की संख्या एवं स्थान तो पूर्ववत् ही

होते हैं किन्तु प्रयोग विधि में थोड़ा भेद है। इसमें पहले हृदय में अङ्कुश बीज (क्रों) को दस बार जपना है और साथ ही पञ्चम बीज को भी जपना है। पञ्चम बीज का अर्थ क्या हो, इसमें सम्प्रदायभेद से मतभेद है किन्तु 'सप्रणवं सर्वं पञ्चमं भवति' इस श्रुति से ओङ्कार का ग्रहण किया जा सकता है, जिसका प्रयोगविवेचन पूर्व में कर चुके हैं। शेष द्वारों के निमित्त कहते हैं - दोनों नेत्रों में 'ह्रीं - ह्रीं', दोनों कर्ण में भी 'ह्रीं - ह्रीं', दोनों नासाच्छिद्रों में 'हुँ - हुँ', मुख में 'स्त्रीं', नाभि में 'क्लीं', लिङ्गमूल में हसौः (मतान्तर से हसौः या हसौं), गुदा में 'वं' तथा भौंह के मध्य मनःस्थान में 'हुं', ऐसे ग्यारह स्थानों में प्रत्येक बीज को दस अथवा (सिद्ध साधक हो तथा समयाभाव हो तो) एक बार जप करने से प्रत्येक द्वार में कपाट लग जाता है।

अब इसका प्रयोग कब करना है ? सामान्यतः साधनाओं में प्रवृत्त होने के बाद आचमन, पवित्रीकरण, आसनशुद्धि, दिग्बन्धन, सङ्कल्पादि के अनन्तर भूतशुद्धि (अथवा जैसी जिसकी परम्परा हो), आदि करके चौरगणपति के मन्त्र से न्यास कर सकते हैं और जो नियमित साधक हैं, उनके लिए कहते हैं -

शृणु चापि प्रवक्ष्यामि मन्त्रस्य जपनिर्णयम्।
प्रातःकाले च शय्यायां मुक्तस्वापः स्वदेहके॥
पूर्ववन्मातृकान्यासं विन्यसेन्मातृकास्थले।
तथा एकादशद्वारे चौरमन्त्राणि विन्यसेत्॥
दशधा चौरमन्त्रञ्च एकधा वापि सञ्जपेत्।
चौरमन्त्रजपात्तुष्टिर्गणेशस्य तदा भवेत्॥
यमस्य नाधिकारोऽपि चौरमन्त्रजपात्प्रिये।
सर्वमन्त्रजपात्तेजः सर्वस्मात्समुपस्थितम्॥
तत्तेजोहरणे शक्तिर्गणेशस्य न चैव हि॥
(गणेशविमर्शिनी)

प्रातःकाल शय्या में ही सोकर उठने के बाद (चूंकि अजपागायत्री आदि का विधान जगते ही प्रारम्भ हो जाता है), यथास्थान अपनी परम्परा के अनुसार मातृकान्यास आदि करके उक्त एकादश स्थानों में चौरमन्त्रोक्त सम्बन्धित बीजों का दस अथवा (सिद्ध साधक हो तो) एक बार जप करे। चौरमन्त्र से भगवान् गणेश की सन्तुष्टि हो जाती है, फिर चौरमन्त्र जप के बाद यमराज का भी अधिकार नहीं रह जाता है। सभी मन्त्रों के जप का तेज सम्पूर्ण रूप से समुपलब्ध होता है, जिसका हरण करने की शक्ति गणेश्वर में भी नहीं है।

शास्त्रों में चोरों के स्वामी परमेश्वर हेतु भी अभिनन्दन की उक्तियों का बाहुल्य है। यथा यजुर्वेदोक्त शतरुद्रीय में 'तस्कराणां पतये नमः'' अथवा शिवरहस्य के तृतीय अंश, पूर्वार्द्ध के दशम अध्याय में 'तस्कराणाञ्च पतये' आदि उल्लेखनीय हैं। सूतसंहिता के मुक्तिकाण्ड में कहते हैं - 'तस्कराणां नमस्तुभ्यं पतये पापहारिणे'। साथ ही कहते हैं,

पतये तस्कराणां ते वनानां पतये नमः।
गणानां पतये तुभ्यं विश्वरूपाय साक्षिणे॥
(स्कन्दपुराण, ब्रह्मखण्ड - सेतुखण्ड, अध्याय - ४९, श्लोक - १८)

मात्र भगवान् गणपति में अनुराग रखने वालों के लिए ही नहीं, अपितु यह विधान शैव, वैष्णव, शाक्त तथा अन्य समस्त इष्टों से सम्बन्धित जनों के लिए व्यवहार्य एवं उपयोगी है अतः स्वाधिकारानुसार साधकों की प्रवृत्ति इसमें होनी चाहिए। स्वाचार्यानुशासन से लोकहितार्थ हमने इसे सार्वजनिक किया है।

किसी सज्जन ने यह चित्र भेजा है। श्रीहनुमान् जी के सामने ऊंट की मूर्ति है। क्या यह शास्त्रीय है ? बिल्कुल शास्त्रीय है। हनुमत्त्रयोदशार्णसाधना के अन्तर्गत कहते हैं - सहस्रवाजिरथिनं सहस्रभुजधारिणम्। उष्ट्रवाहनमत्युग्रं हनूमन्तमहं भजे॥ जिसने भी यह मन्दिर बनाया / बनवाया है, यह मूर्ति रखवायी है, हनुमतत्वसम्बन्धी तन्त्रशास्त्र का अच्छा विशेषज्ञ होगा। ऐसा नहीं है कि सहस्रभुजधारी हेतु ही है। सामान्य हेतु भी इन्द्रकृत स्तुति है - उष्ट्रारूढ कपिश्रेष्ठ त्वत्पादध्यानसंश्रयम्। दुःखसागरमग्नं मामुद्धरस्व जगत्पते॥ पञ्चमुखी रूप हेतु भी उष्ट्रारूढ ... पञ्चास्य तुभ्यं नमः आदि स्तुतियों में विहित है।

एक सज्जन ने कहा कि क्या हनुमान् जी ने श्रीमद्भगवद्गीता पर पैशाचभाष्य लिखा था ? उत्तर है, बिल्कुल लिखा था। एक बड़े प्रसिद्ध महात्मा ने मेरी बात का खण्डन करते हुए एक बार बिना प्रमाण के ही कहा था कि पैशाच भाष्य काल्पनिक है। बाद में जब पुरी के शंकराचार्य जी ने पैशाच भाष्य की चर्चा करते हुए उसे प्रामाणिक बताया तो फिर महात्मा जी कहने लगे कि वायुपुत्र श्रीरामभक्त भगवान् हनुमान् जी ने नहीं, अपितु किसी हनुमान् नामक मनुष्य आचार्य ने लिख दिया होगा।

हमने पैशाच भाष्य बहुत वर्ष पहले एक प्राचीन प्रति से पढ़ा था। श्रीकृष्ण जी से ऊपर बैठकर, अर्जुन के झंडे पर बैठकर सुने थे, बिना आज्ञा के, तो भगवान् ने पिशाच होने का शाप दिया और कहा कि भाष्य लिखकर दोष से शुद्ध होंगे। हमारे महावीर श्रीहनुमान् जी ही इसके भाष्यकार हैं, इसका पूरे कथानक के साथ प्रामाणिक वर्णन पराशर संहिता के एक सौ उन्नीसवें पटल में देवराज इन्द्र ने यागनिष्ठ नामक वैश्य के प्रति किया है।

भगवान् श्रीकृष्ण के जो ब्राह्मण मित्र उनसे मिलने आये थे, उनका नाम क्या था ? सुदामा या श्रीदामा ? इस विषय में अर्बुद पर्वतस्थित श्रीसर्वेश्वर रघुनाथ भगवान् के मठपति आचार्यश्री सियारामदास नैयायिक जी ने श्रीमद्भागवत की विभिन्न टीकाओं के विवेचन के द्वारा यह सिद्ध किया है कि भगवान् के ब्राह्मण मित्र का नाम श्रीदामा था। यह भी बताया कि श्रीदामा नामक दो मित्र हुए हैं, एक गोप और दूसरे ब्राह्मण अतः सुदामा शब्द श्रीदामा का ही अपभ्रंश है, मूल नाम श्रीदामा है। श्रीनैयायिक जी के विवेचन में प्रस्तुत प्रमाणों को स्वीकार करते हुए हम कुछ अन्य बातों को भी प्रस्तुत करते हैं।

शैवागमों की उपशाखा प्रकृष्टनन्दोक्तागम में कहते हैं -
सुधामयसुतः श्रीमान् सुदामा नाम वै द्विजः।
तेन गोपीपतिः कृष्णो विद्यामभ्यसितुं गतः॥

सुधामय ब्राह्मण के पुत्र सुदामा थे जिनके साथ श्रीकृष्ण भगवान् विद्याध्ययन हेतु गये थे।

शाक्तागमों की उपशाखा विलुप्तप्राय निग्रहागम में कहते हैं -
सुदामा समदृग्विप्रो दर्पकर्दमसम्भवः।
शिरोमणिर्विरक्तानां कृष्णस्य दयितः सखा॥

समदर्शी ब्राह्मण सुदामा दर्पकर्दम के पुत्र थे, विरक्तों में शिरोमणि और श्रीकृष्ण के प्रिय मित्र थे।

यदि श्रीनैयायिक जी यह कहें कि हम श्रीवैष्णव सम्प्रदाय से हैं अतः शैवागमों की बात हमारे सम्प्रदाय में मान्य नहीं, तो मैं यह कहूँगा कि आपने जिस श्रीधरी टीका का अवलम्बन करके अपनी बात कही है, उसके रचयिता श्रीश्रीधर स्वामीजी स्वयं गोवर्द्धन पुरी पीठ के शङ्कराचार्य बने जो श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत नहीं है। यदि यह कहा जाये कि निग्रहागमों का प्रकाशन आपकी दृष्टि में सन्दिग्ध है क्योंकि निग्रहाचार्य/निग्रहागम/निग्रहमतादि एक प्रकार से समाज के लिए नया विषय है अतः यह मेरी निजी कल्पना से प्रक्षेपित किया गया होगा, तो मैं अन्य असन्दिग्ध प्रमाण भी प्रस्तुत करता हूँ।

स्कन्दपुराण के अवन्तीखण्ड में श्रीविष्णुसहस्रनाम के अन्तर्गत भगवान् को विद्याध्ययन करने वाला, भूमिशयन करने वाला और सुदामा मित्र से युक्त बताया गया है - विद्याध्यायी भूमिशायी सुदामासुसखा सुखी। गर्ग संहिता में भी ब्राह्मण मित्र का नाम सुदामा बताया गया है -

श्रीकृष्णस्य सखा कश्चित् सुदामा नाम ब्राह्मणः।
स उवास स्वपुर्यां तु सत्या च भार्यया वृतः॥
विरक्तो धनहीनश्च वेदवेदाङ्गपारगः।
समानशीलया पत्न्या चक्रे वृत्तिमयाचिताम्॥
(गर्गसंहिता, द्वारकाखण्ड, अध्याय - २२, श्लोक - ०१-०२)

कोई सुदामा नामक ब्राह्मण श्रीकृष्ण के सखा थे जो अपनी नगरी में सत्या नाम वाली पत्नी के साथ रहते थे। वे धनहीन थे, विरक्त थे, वेदवेदाङ्ग के श्रेष्ठ वेत्ता थे। उनकी पत्नी भी वैसी ही सद्गुण वाली थीं और बिना मांगे जो मिल जाये, उसी से घर चलाते थे। (फिर लगभग श्रीमद्भागवत की प्रचलित कथा के अनुसार ही यहाँ भी सब वर्णन है, और आगे कहते हैं) -

ततः सुदामा विप्रस्तु कृष्णाय परमात्मने।
पृथुकाँस्तण्डुलान् राजन्न प्रायच्छदवाङ्मुखः॥
(गर्गसंहिता, द्वारकाखण्ड, अध्याय - २२, श्लोक - ४३)

सुदामा ब्राह्मण ने (सङ्कोचवश) परमात्मा श्रीकृष्ण को चिउड़ा नहीं दिया और मुख नीचे किये रहे। शेष कथा सामान्य ही है। यहाँ तक कि वेदों में भी वर्णन है - शमो मित्रः सुदामा च सत्याक्रूरोद्धवो दमः। यजुर्वेदीय कृष्णोपनिषत् में श्रुति कहती है - शम ही सुदामा मित्र हैं, सत्य अक्रूर हैं और दम के स्वरूप उद्धव जी हैं। भारतवर्ष के महामनीषी स्वामिश्री मधुसूदन सरस्वती जी ने शताधिक श्लोकों में आनन्दमन्दाकिनी लिखी है, उसके मङ्गलाचरण के तुरन्त पश्चात् ही अद्भुत भाव लिखते हैं -

नित्यं ब्रह्मसुरेन्द्रशङ्करमुखैर्दत्तोपहाराय ते
विस्वादास्तुषमिश्रतण्डुलकणान्विप्रः सुदामा ददौ।
तद्वद्देव निरर्थकैः कतिपयै रुक्षाक्षरैर्निर्मितां
वागीशप्रमुखस्तुतस्य भवतः कुर्यां स्तुतिं निस्त्रपः॥

हे प्रभो ! आपकी स्तुति तो ब्रह्मदेव, बृहस्पति आदि बड़े बड़े विद्वान् करते हैं, मैं भला आपकी क्या स्तुति करूँ ? फिर भी निर्लज्ज के समान स्तुति करता हूँ। कैसे ? ब्रह्मा, इन्द्र, महादेव जैसे बड़े बड़े देवता आपको दिव्य नैवेद्य का भोग लगाते हैं, फिर भी सुदामा ब्राह्मण ने आपको स्वादहीन, भूसा मिला हुआ चिउड़ा दिया तो आपने प्रेम से भोग लगाया ही था, वैसे ही हमारे द्वारा की जाने वाली कुछ निरर्थक और रूखे वचनों वाली स्तुति भी आप स्वीकार करें।

इस प्रकार हम समझते हैं कि हो सकता है, श्रीकृष्ण भगवान् के विरक्त ब्राह्मण मित्र का नाम श्रीदामा के रूप में भी वर्णित होगा, हमें आपत्ति नहीं। किन्तु प्रचलन में जो "सुदामा" नाम है, वह पूर्ण शास्त्रीय है, शुद्ध है, प्रामाणिक है। सुदामा और श्रीदामा, दोनों ही शास्त्रीय हैं किन्तु सुदामा शब्द शास्त्रीय होने के साथ ही, प्रसिद्ध और परम्पराप्राप्त भी है अतः उसका ही व्यवहार आचार्यों को करना चाहिए। कुछ मूर्ख मेरे पास आचार्य सियारामदास नैयायिक जी का उपहास कर रहे थे कि उन्होंने सुदामा जी को श्रीदामा बता दिया। मैंने कहा कि सुदामा और श्रीदामा, दोनों नाम मिले हैं उनके लिए भी - श्रीदामरङ्कभक्तार्थभूम्यानीतेन्द्रवैभवः (पद्मपुराण) सुदामा नाम प्रचलित अधिक है किन्तु शास्त्रीय दोनों ही हैं।

कुछ दिनों से धूर्तजन मेरे विरुद्ध दुष्प्रचार करते हुए बहुत से मिथ्यावाद का प्रयोग कर रहे हैं। कोई मुझे बौद्ध कहता है, कोई मुसलमान कहता है, कोई मिशनरियों का एजेंट कहता है, कोई मुझे गुप्तरोगी, मनोरोगी और समलैंगिक बताता है, कोई मुझे बढ़ई /सुथार आदि जाति का कहता है। सत्य यह है कि मैं सूर्यवंशी मग / भोजक / शाकद्वीपीय ब्राह्मण हूँ। मेरा गोत्र कौण्डिन्य है, पुर द्वादशारान्तान्तर्गत द्वितीय खण्टवार है। मेरे इस जन्म के पिताजी का नाम आचार्यश्री शङ्करदास गुरु है, माताजी का नाम श्रीमती ज्ञानवती देवी है। मेरे पितामह का नाम स्व० श्रीप्रसाददास गुरु है। मेरे प्रपितामह का नाम स्व० रघुनाथदास गुरु है। मेरे वृद्धप्रपितामह का नाम स्व० रङ्गलालदास गुरु है। "गुरु" मेरे वंश का ही आस्पद है, जो नारायण राजवंश (पद्मा महाराज) के शासकों के द्वारा प्रदान किया गया था। भारतीय गणतन्त्र में अपने शासन का सर्वप्रथम विलय करने वाला, राइट टू रिकॉल कानून की मांग करने वाला, भूदान आन्दोलन में सर्वाधिक भूमि देने वाला, भारतीय चुनावों में हेलीकॉप्टर का सर्वप्रथम प्रयोग करने वाला तथा लोकतन्त्र के बाद स्थापित अखिल भारतीय क्षत्रिय महासभा का सञ्चालन करने वाला 'प्रथम' राजवंश 'नारायण राजवंश' ही था।

उक्त राजवंश और हमारा वंश आज भी पृथ्वी पर सकुशल विद्यमान् है, जिसकी पुष्टि सम्बन्धित स्थान और लोगों से की जा सकती है। जब हमने मुझे 'बढ़ई' कहने वाले धूर्तों का खण्डन किया तो कुछ लोगों ने कहा कि आपको बढ़ई नहीं, रथकार कहा जा रहा है, जो आदिब्राह्मण विश्वकर्मा समुदाय से आते हैं। इस विषय में मेरी दृष्टि में जो शास्त्रीय बात है, उसे स्पष्ट करता हूँ। पहली बात, विश्वकर्मा आस्पद लगा लेने से कोई विश्वकर्मा का वंशज ही हो गया अथवा ब्राह्मण ही हो गया, ऐसा नहीं समझना चाहिए। किसी के नाम के आगे 'सिंह' लगा हो तो वह मृगराज सिंह नहीं हो जाता। चक्रवर्ती आस्पद होने से वह सम्राट् नहीं हो जाता, प्रजापति आस्पद होने से वह दक्षादि का वंशज नहीं हो जाता है। कलियुग में भी विशेषतः आधुनिक पीढ़ी में आस्पद का तो भरोसा करना ही नहीं चाहिए क्योंकि शास्त्रों में 'शर्मा' ब्राह्मण का आस्पद बताया गया है किन्तु ब्राह्मण के अतिरिक्त नापित, लौहकार, काष्ठकार आदि बहुत सी जातियाँ 'शर्मा' लगाने में प्रवृत्त हो गयी हैं।

जहाँ तक हम समझते हैं, रथकार शब्द वर्णसंकर हेतु शास्त्रों में व्यापकता से आया है। रथकार कौन सी जाति है ? यदि क्षत्रिय पुरुष वैश्य वर्ण की स्त्री से सन्तान उत्पन्न करे तो वह सन्तान "माहिष्य" कहाती है। यदि वैश्य पुरुष शूद्र वर्ण की स्त्री से सन्तान उत्पन्न करे तो उस सन्तान को "करण" कहते हैं। अब यदि माहिष्य जाति का पुरुष करण जाति की स्त्री से सन्तान उत्पन्न करे, तो उसे "रथकार" कहते हैं। अथर्ववेद के तृतीय काण्ड, पञ्चम सूक्त में रथकारों का वर्णन अन्य जाति जैसे कर्माकर / कर्मकार / कमार एवं धीवर / मछुवारों के साथ आया है।

ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान्॥

यजुर्वेदोक्त रुद्राष्टाध्यायी के पञ्चम अध्याय में भी इनका वर्णन तक्ष/बढ़ई, कुलाल / कुम्हार, कर्मार/ लौहकार / लुहार, निषाद, बहेलिया, व्याध, पुञ्जिष्ठ (एक प्रकार का म्लेच्छ), श्वन्य / चाण्डाल आदि अन्य जातियों के साथ आया है।

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः॥

इन मन्त्रों की व्याख्या में आचार्यों ने रथकारों के वर्णसंकर होने की बात की है -

ये च रथकाराः रथनिर्मातारो जातिविशेषाः। उक्तं हि - 'रथकारस्तु माहिष्यात्करण्यां यस्य सम्भवः' (अमरकोश २/१०/०४)

वैश्यायां क्षत्रियादुत्पन्नो माहिष्यः, शूद्रायां वैश्यादुत्पन्ना करणी। कैसे ? गरुड़पुराण के आचारकाण्ड, अध्याय - ९६ में याज्ञवल्क्य महर्षि ने सङ्कर जातियों का वर्णन किया है, जहाँ दूसरे श्लोक में "माहिष्यः क्षत्रियाज्जातो वैश्यायां म्लेच्छसंज्ञितः" कहा तथा पञ्चम श्लोक में "माहिष्येण करण्यान्तु रथकारः प्रजायते" भी कहा।

बोधायन धर्मसूत्र, हिरण्यकेशि श्रौतसूत्र, भारद्वाज श्रौतसूत्र आदि को देखना चाहिए। वैश्याच्छूद्रायां रथकारः तथा याज्ञवल्क्य स्मृति, आचाराध्याय - वर्णजातिविवेकप्रकरण के अन्तर्गत माहिष्येण करण्यान्तु रथकारः प्रजायते। असत्सन्तस्तु विज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः॥ आदि श्लोकों को भी ध्यान देना चाहिए। जो लोग भारद्वाज श्रौतसूत्र के "वसन्ते ब्राह्मण आदधीत ग्रीष्मे हेमन्ते वा राजन्यः शरदि वैश्यः वर्षासु रथकारः शिशिरः सार्ववर्णिकः" आदि वचनों के आधार पर सन्देह करें उनके लिए जैमिनी महर्षि ने पूर्वमीमांसा के रथकाराधिकरण में "वचनाद्रथकारस्याधानेऽस्य सर्वशेषत्वात्" सूत्र से प्रारम्भ करके समाधान किया है, इसमें शबरभाष्य के "त्रैवर्णिको रथकारः रथकर्मणा विशेषेणोच्यते, शूद्रो ह्यसमर्थत्वात्प्रतिषिद्धस्तस्मात्त्रैवर्णिको रथकारः स्यात्" आदि कथन और "गुणार्थेनेति चेत्" आदि सूत्रों पर भी चिन्तन करना चाहिए।

श्रीविश्वकर्मपुराण में भगवान् कालहस्तीन्द्र ने महाराज सुव्रत को भगवान् विश्वकर्मा के परब्रह्मरूप और उनके वंशजों का अनुशासन वर्णित किया है, उनके वेदोक्त उपनयन आदि का भी वर्णन किया है, जिसका समाधान "सौधन्वनास्तु हीनत्वान्मन्त्रवर्णात्प्रतीयेरन्" आदि सूत्र से कर लेना चाहिए। हो सकता है कि इस अनुशासन वाले कुछ ब्राह्मण "एवं चेत्पश्यसि, नास्ति त्रैवर्णिको रथकारः, प्रतिषिद्धत्वात् शिल्पोपजीवित्वस्येति। गुणार्थेन कश्चिद्भविष्यति रथकारः। आपदि जीवनं चैतस्य" आदि शबरवाक्यों के अनुसरण से रथकारकर्म करते हुए भी ब्राह्मण होते होंगे किन्तु इस विकट कलिकाल में जब असन्दिग्ध विप्रकुलों में भी बहुत व्यापकता से पतितत्व प्रसारित हो रहा है, सन्दिग्ध विषयों पर सबों को ब्राह्मण घोषित करना ऐहिकामुष्मिक दृष्टि से विप्लवकारी है। उपर्युक्त प्रमाणों से यह उन संघी और आर्य समाजी दुर्बुद्धियों का भी भ्रमभञ्जन सिद्ध होता है जो कहते हैं कि वेदों में जाति का वर्णन नहीं है।

उपर्युक्त प्रसङ्गों में जहाँ रथकार, बढ़ई, निषाद, केवट, लौहकार, कुम्हार आदि का वेदोक्त वर्णन है, वहां कोई निन्दा हेतु नहीं अपितु "नमोऽस्तु एवं मनीषिणः" आदि वचनों से उन्हें मनीषी बताकर उनमें स्थित रुद्रतत्त्व परमेश्वर को प्रणाम ही किया गया है। वैसे भी स्वकर्मनिष्ठ होने से ही शबरी, विदुर, धर्मव्याध, रविदास,

तुकाराम, जैसे महानुभाव सन्त और मनीषी माने गये और लोकवन्दित हुए। किसी भी जाति, वर्ण, लिङ्ग, भाषा का व्यक्ति यदि अपने लिए विहित शास्त्रीय मर्यादा का पालन करता है तो सभ्य समाज में उसका सम्मान होता है। यदि नहीं करता है तो उसे श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखा जाता है। प्रत्येक जाति का अपने स्थान पर सम्मान और महत्त्व अपरिहार्य है। रही बात हमारी तो इस जन्म में हम शाकद्वीपीय ब्राह्मण के शरीर में स्थित है, इसे स्पष्ट कर दिया है। इसके बाद भी किसी को सन्देह हो, कोई दुष्प्रचार करना चाहे तो स्वभ्रम एवं भ्रमोद्भूत दुर्गति हेतु वह स्वयं उत्तरदायी है।

'हंसवंशावतंस' निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु
Nigrahacharya Shri Bhagavatananda Guru

(हंसवंशावतंस का अर्थ 'सूर्यवंश में उत्पन्न' होता है, जो शाकद्वीपीय ब्राह्मण अनेकानेक असन्दिग्ध शास्त्रीय प्रमाणों से सिद्ध होते हैं। चित्र में पुस्तक हाथ में लेकर पाठ नहीं किया जा रहा है, सन्देह की स्थिति में विनियोग का ऋषि जानने के लिए पुष्टि हेतु प्रमाण देखा जा रहा है अतः दुष्प्रचारक स्वकल्पित प्रकरण का निर्माण न करें)

पूर्वकाल में श्रीकाशीविश्वनाथ-ज्ञानवापी प्रकरण में विधर्मियों के द्वारा देवालय परिसर पर आक्रमण के द्वारा विध्वंसपूर्वक अवैध अतिक्रमण के आलोक में जिस प्रकार हमारे द्वारा सनातन धर्मावलम्बियों के पक्ष को दृढ़ करने हेतु शास्त्रीय प्रमाण समुपलब्ध कराये गये थे, उसी प्रकार श्रीकृष्णजन्मभूमि मथुरा प्रकरण में भी सनातन धर्मावलम्बियों के पक्ष को दृढ़ करने हेतु शास्त्रीय प्रमाण उपलब्ध कराये जा रहे हैं। पूर्वकाल में तथा इस प्रकरण में भी कतिपय पण्डितम्मन्य जन हमारे लेखों को अपने नाम से प्रकाशित और प्रस्तुत करके अपनी धूर्तता का परिचय दे रहे हैं अतः उनका निराकरण करते हुए यह लेख प्रकाशित किया जा रहा है ताकि सद्धर्मनिष्ठ जन श्रीकृष्णजन्मभूमि - मथुरा को विधर्मियों के अनैतिक अतिक्रमण से मुक्त करा सकें।

श्रीकृष्णावतारविमर्श

भगवान् श्रीकृष्ण का वर्णन धर्मशास्त्रों में कलावतार, अंशावतार, पूर्णावतार, परिपूर्णावतार, परिपूर्णतमावतार एवं अवतारों के भी अवतारी के रूप में अलग अलग प्रसङ्गों और दृष्टिभेद से समुपलब्ध होता है। उनमें से सामान्यतम बोध के निमित्त कतिपय प्रमाण दिए जाते हैं।

कलावतार के रूप में वर्णन -

द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये।
कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे॥
(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध - १०, उत्तरार्द्ध, अध्याय - ८९, श्लोक - ५८)

भगवान् भूमापुरुष ने कहा - तुम दोनों (श्रीकृष्ण और अर्जुन) को देखने की इच्छा से मैं ब्राह्मण के बालकों को अपने पास बुला लेता था (ताकि जब उन्हें लेने हेतु तुम आओ तो मैं तुमसे मिलूँ), तुम दोनों इस पृथ्वी के भार को दूर करने हेतु मेरी ही कला से अवतरित हुए हो।

कलिकाले तु सम्प्राप्ते सन्ध्यायां द्वापरे युगे।
कला तु सकला विष्णोर्वामनस्य तथा कला॥
एकीभूता च देवक्यां जातो विष्णुस्तदा स्वयम्।
(भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व, खण्ड - ०४, अध्याय - ०५, श्लोक - २३)

कलियुग आने ही वाला था, उस समय द्वापरयुग के सन्ध्याकाल में भगवान् विष्णु की समस्त कला और वामन (यहाँ वामन से उनके त्रिपाद्विभूति का सङ्केत है) की कला को एकाकार करते हुए देवकी के माध्यम से स्वयं विष्णु अवतरित हुए।

अंशावतार के रूप में वर्णन -

एवं संस्तूयमानस्तु भगवान्परमेश्वरः।
उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ द्विजोत्तमाः॥श्लोक - २६॥
उवाच च सुरानेतौ मत्केशौ वसुधातले।
अवतीर्य भुवो भारक्लेशहानिं करिष्यतः॥श्लोक - २७॥
वसुदेवस्य या पत्नी देवकी देवतोपमा।
तस्या गर्भोऽष्टमोऽयं तु मत्केशो भविता सुराः॥श्लोक - ३०॥
ततोऽहं सम्भविष्यामि देवकीजठरे शुभे।
गर्भे त्वया यशोदाया गन्तव्यमविलम्बितम्॥श्लोक - ४३॥
प्रावृट्काले च नभसि कृष्णाष्टम्यामहं निशि।
उत्पत्स्यामि नवम्याञ्च प्रसूतिं त्वमवाप्स्यसि॥श्लोक - ४४॥
(ब्रह्मपुराण, अध्याय - १८१)

देवताओं और ब्राह्मणों के द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किए जाने पर परमेश्वर भगवान् विष्णु ने अपने एक श्वेत और एक काले रंग के केश को उखाड़ कर कहा - हे ब्राह्मणों और देवताओं ! मेरे यह दोनों केश पृथ्वी में अवतार लेकर भूभाररूपी कष्ट को दूर करेंगे। (फिर योगमाया से कहा) वसुदेवजी की जो दिव्य लक्षणों वाली पत्नी देवकी है, उसके आठवें गर्भ में रूप में मेरा केश अवतरित होगा। हे शुभे ! इस प्रकार मैं देवकी के गर्भ से उत्पन्न होऊंगा और तुम्हें भी यशोदा के गर्भ में अविलम्ब चले जाना चाहिए। भाद्रपद महीने के कृष्णपक्ष की अष्टमी को रात्रिकाल में मैं उत्पन्न होऊंगा और नवमी को तुम जन्म लोगी।

अंशेन भविता तत्र वसुदेवसुतो हरिः।
तदाहं प्रभविष्यामि यशोदायां च गोकुले॥
कार्यं सर्वं करिष्यामि सुराणां सुरसत्तमाः।
कारागारे गतं विष्णुं प्रापयिष्यामि गोकुले॥
शेषञ्च देवकीगर्भात्प्रापयिष्यामि रोहिणीम्।
(श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, स्कन्ध - ०४, अध्याय - १९, श्लोक - ३४-३६)

भगवती ने कहा - हे देवताओं ! वहाँ (मथुरा में) जब वसुदेव के पुत्र के रूप में श्रीहरि अपने अंश से अवतरित होंगे तब मैं गोकुल में यशोदा के गर्भ से उत्पन्न होकर देवताओं का सब कार्य सम्पादित करूँगी। विष्णु का जो अवतार कारागार में होगा, उसे मैं गोकुल में (वसुदेवजी के माध्यम से) मंगवा लूंगी। शेषनाग भी मेरे द्वारा देवकी के गर्भ से हटाकर रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित कर दिए जायेंगे।

एतौ भगवतः साक्षात् हरेर्नारायणस्य हि।
अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि॥
(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध - १०, पूर्वार्द्ध, अध्याय - ४३, श्लोक - २३)

मथुरा में कंस के रंगभवन में उपस्थित लोग कहने लगे - देखो ! ये दोनों (बलराम और कृष्ण) साक्षात् भगवान् हरि नारायण के ही अंश हैं जो वसुदेवजी के घर में अवतरित हुए हैं।

उपर्युक्त प्रमाणों में "अंशेन" शब्द का तात्पर्य कुछ लोग ऐसे लगाते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण अंशावतार नहीं हैं, अपितु "अंशेन बलेन सह

इति" अंश बलराम के साथ आये हैं, ऐसा समझना चाहिए। इस मत के समर्थन में वे निम्न प्रमाण देते हैं -

वसुदेवस्य देवक्यां भविष्यामि परः स्वयम्।
रोहिण्यां मत्कला शेषो भविष्यति न संशयः॥
(गर्गसंहिता, गोलोकखण्ड, अध्याय - ०३, श्लोक - ३६)

भगवान् कहते हैं - वसुदेव की पत्नी देवकी से मैं परब्रह्म स्वयं होऊंगा तथा मेरी कला शेषनाग रोहिणी के गर्भ से होंगे, इसमें संशय नहीं है।

इस प्रमाण से हमें आपत्ति नहीं है किन्तु अंशावतार के समर्थक मूल श्लोकों में ऐसा स्पष्ट अर्थ नही लग रहा है, तथा श्रीमद्भागवत के "एतौ अवतीर्णौ" से दोनों का ही अंशावतार होना सिद्ध होता है, साथ ही पद्मपुराण और महाभारत से इसकी पुष्टि भी हो जाती है -

अनन्तांशः सप्तमोऽत्र सम्प्रविष्टस्तु मा चिरम्।
तस्याः सपत्न्यां रोहिण्यां ददस्व शुभदर्शने॥
ततोऽष्टमे ममांशस्तु देवक्यां सम्भविष्यति।
(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय - २४५, श्लोक - २६-२७)

भगवान् ने योगमाया से कहा - हे शुभदर्शने ! अनन्त (शेषनाग) के अंश सातवें बालक के रूप में अभी तत्काल देवकी के गर्भ में प्रविष्ट हों जिन्हें तुम देवकी की सौत रोहिणी (के गर्भ) में दे देना। फिर मेरा अंश आठवीं सन्तान के रूप में देवकी के माध्यम से सम्भूत होगा।

यस्तु नारायणो नाम देवदेवः सनातनः।
तस्यांशो मानुषेष्वासीद्वासुदेवः प्रतापवान्॥
(महाभारत, आदिपर्व, अध्याय - ६८, श्लोक - १५१)

जो नारायण नामक सनातन देवाधिदेव हैं, उनके ही अंश प्रतापी वासुदेव (वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण) हुए।

यः स नारायणो नाम देवदेवः सनातनः।
तस्यांशो वासुदेवस्तु कर्मणोऽन्ते विवेश ह॥
(महाभारत, स्वर्गारोहणपर्व, अध्याय - ०५, श्लोक - २३)

जो वे नारायण नामक सनातन देवाधिदेव हैं, उनके ही अंश जो वासुदेव थे, अपना कार्य समाप्त होने पर उनमें ही लीन हो गये।

पूर्णावतार एवं अवतारों के भी अवतारी के रूप में वर्णन -

कृष्णचन्द्रः सदा पूर्णः तस्य षोडश या कलाः।
चित्सहस्रप्रभाभिन्ना अत्रास्ते तत्स्वरूपता॥
(स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्ड, भागवतमाहात्म्य, अध्याय - ०३, श्लोक - ०६)

उद्धवजी कहते हैं - हे परीक्षित् और वज्र ! श्रीकृष्णचन्द्र सदैव पूर्ण हैं। उनकी जो सोलह कलाएं हैं, वही अभिन्न प्रभा के रूप में सहस्रगुणित होकर यहाँ उनकी सोलह हजार पत्नियों के रूप में प्रकट होती हैं, यह उनका स्वरूप ही है।

कृष्णस्तु साक्षात्पुरुषोत्तमः स्वयं पूर्णः परेशः प्रकृतेः परो हरिः।
यस्यावतारांशकला वयं सुरा सृजाम विश्वं क्रमतोऽस्य शक्तिभिः॥
(गर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड, अध्याय - ०९, श्लोक - ०२)

ब्रह्मदेव कहते हैं - ये श्रीकृष्ण स्वयं साक्षात् पुरुषोत्तम हैं, पूर्ण हैं, परमेश्वर हैं, प्रकृति से परे श्रीहरि हैं, ये वही हैं जिनके अवतार और अंशकला आदि हम सब देवता हैं और इनकी ही शक्ति से हम सब क्रमशः सृष्टि की रचना आदि कार्य सम्पादित करते हैं।

परिपूर्णावतार के रूप में वर्णन -

नराकृतिः परं ब्रह्म परिपूर्णः परोदयः।
सर्वज्ञानादिसम्पूर्णः पूर्णानन्दः पुरातनः॥
(सात्वततन्त्र, श्रीकृष्णसहस्रनाम, श्लोक - ११०)

मनुष्य की आकृति होने पर भी ये परब्रह्म हैं, परिपूर्ण हैं, अन्धकार से परे नित्य उदित हैं, सभी ज्ञान के जनक और उनसे युक्त हैं, पूर्णानन्दरूपी और पुरातन हैं।

परिपूर्णतमावतार के रूप में वर्णन -

देवानां रक्षणार्थाय दैत्यानां हि वधाय च।
वसुदेवगृहे जातः परिपूर्णतमो हरिः॥
(गर्गसंहिता, माधुर्यखण्ड, अध्याय- ०६, श्लोक - २५)

देवताओं की रक्षा और दानवों के वध के लिए परिपूर्णतम श्रीहरि ने वसुदेवजी के घर में जन्म लिया।

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
असङ्ख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोके धाम्नि राजते॥
(गर्गसंहिता, ,गोलोकखण्ड, अध्याय - ०१, श्लोक - १९)

श्रीकृष्ण साक्षात् परिपूर्णतम एवं स्वयं भगवान् हैं। ये अगणित ब्रह्माण्ड के अधिपति हैं और गोलोकधाम में विराजते हैं।

उपर्युक्त प्रसङ्गों में व्यक्ति को भ्रमित नहीं होना चाहिए। वस्तुतः श्रीकृष्ण भगवान् तो सामान्य जनों के लिए अज्ञेय और अनिर्वचनीय ब्रह्मतत्व हैं किन्तु जिसने उनके स्वरूप का जैसा अनुभव किया, वैसा ही वर्णन किया। जैसे किसी मल्ल को यदि अपने बालक के साथ खेलना हो तो वह अपने वास्तविक बल का प्रदर्शन नहीं करता किन्तु रंगभूमि में अवश्य ही करता है, अथवा किसी धनकुबेर को सामान्य सब्जी खरीदने के समय अपने वास्तविक धन का प्रदर्शन नहीं करना होता है किन्तु किसी बड़ी व्यापारिक चर्चा में करना होता है, ऐसे ही सर्वसमर्थ परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण भी लीलाप्रसङ्ग के अनुरूप कभी अंशावतार और कलावतार के समान व्यवहार करते हैं तो कभी परिपूर्णतमावतार के समान।

कहीं कहीं भगवान् श्रीकृष्ण और भगवान् बलराम का अवतार कुछ भ्रामक भेदों के साथ वर्णित है।

देवक्याः सप्तमे गर्भे हर्षशोकविवर्द्धने।
व्रजं प्रणीते रोहिण्यामनन्ते योगमायया॥
अहो गर्भः क्व विगत इत्यूचुर्माथुरा जनाः॥
अथ व्रजे पञ्चदिनेषु भाद्रे स्वातौ च षष्ठ्यां च सिते बुधे च।
उच्चैर्ग्रहैः पञ्चभिरावृते च लग्ने तुलाख्ये दिनमध्यदेशे॥
सुरेषु वर्षत्सु च पुष्पवर्षं घनेषु मुञ्चत्सु च वारिबिन्दून्।
बभूव देवो वसुदेवपत्न्यां विभासयन्नन्दगृहं स्वभासा॥
(गर्गसंहिता, बलभद्रखण्ड, अध्याय - ०५, श्लोक - ०८-१० | गोलोकखण्ड के दशम अध्याय में भी वर्णित है)

प्राड्विपाक मुनि कहते हैं - देवकी का सातवां गर्भ, जो हर्ष एवं शोक दोनों देने वाला था (गर्भधारण से हर्ष एवं गर्भनाश से शोक), उसमें स्थित भगवान् अनन्त को जब योगमाया के द्वारा व्रज में निवास कर रही रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित कर दिया गया तो मथुरावासी कहने लगे कि देवकी का गर्भ पता नहीं, कहाँ चला गया। फिर भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष के पांच दिन बीतने पर षष्ठी तिथि, स्वाती नक्षत्र और बुधवार का संयोग हुआ, जब पांच ग्रह उच्च के थे, उस समय दिन के मध्यभाग में तुला लग्न आने पर, देवताओं के द्वारा पुष्पवृष्टि होने लगी, बादलों ने हल्की वर्षा आरम्भ की तथा वसुदेवजी की पत्नी (रोहिणी) के गर्भ से नन्दबाबा के घर को अपने तेज से प्रकाशित करते हुए भगवान् बलराम प्रकट हुए।

इसके बाद नन्दबाबा ने जातकर्म संस्कार आदि किए। बलरामजी का दर्शन करने के निमित्त वेदव्यासजी, देवल मुनि, वशिष्ठजी, देवर्षि नारद आदि सभी आये तब नन्दबाबा ने पूछा -

नन्दराज उवाच -
सुन्दरो बालकः कोऽयं न दृश्यो यत्समः क्वचित्।
कथं पञ्चदिनाज्जातस्तन्मे ब्रूहि महामुने॥
श्रीव्यास उवाच -
अहोभाग्यं तु ते नन्द शिशुः शेषः सनातनः।
देवक्यां वसुदेवस्य जातोऽयं मथुरापुरे॥
कृष्णेच्छया तदुदरात्प्रणीतो रोहिणीं शुभाम्।
नन्दराज त्वया दृश्यो दुर्लभो योगिनामपि॥
(गर्गसंहिता, गोलोकखण्ड, अध्याय - १०, श्लोक - ३१-३३)

हे ऋषियों ! हमने इतना सुन्दर बालक तो आजतक नहीं देखा। यह कौन है ? इसके समान तो दूसरा कोई नहीं। अपनी माता के गर्भ में मात्र पांच दिन ही रहकर इसने कैसे जन्म ले लिया ? इसके विषय में बतायें। तब वेदव्यासजी ने कहा - हे नन्दराज ! यह तुम्हारा बहुत बड़ा सौभाग्य है कि तुम्हारे घर स्वयं सनातन भगवान् शेषनाग बालक के रूप में आये हैं। पहले इन्हें वसुदेव और देवकी के माध्यम से मथुरा में जन्म लेना था किन्तु श्रीकृष्ण की इच्छा से उनके गर्भ से हटाकर इन्हें साध्वी रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित कर दिया गया। जिनका दर्शन योगियों के लिए भी दुर्लभ है, तुम उन्हें ही देख रहे हो।

ऐसा कहकर वेदव्यासजी ने सङ्क्षेप में ही बलरामजी के द्वारा भविष्य में होने वाली प्रधान लीलाओं की भविष्यवाणी करते हुए उनकी परिक्रमा की और प्रणाम करके ऋषियों के साथ चले गये। श्रीकृष्णजन्म के विषय में भी कहीं कहीं भाद्रपद के स्थान पर श्रावण मास, कृष्णपक्ष के स्थान पर शुक्लपक्ष और रोहिणी के स्थान पर अभिजित् नक्षत्र में भी वर्णित है -

श्रावणे मासि पक्षे च कृष्णेऽष्टम्यां प्रजापतेः।
नक्षत्रे वसुदेवस्य देवक्यां भगवान् हरिः॥
सर्वलोकहितार्थाय भूमेर्भारावतारणम्।
कर्तुमाविरभूद्भूमौ मध्यरात्रे महामते॥
(विश्वामित्रसंहिता, अध्याय - १६, श्लोक - ६५-६६)

श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को जब प्रजापति (ब्रह्मा) का नक्षत्र (रोहिणी) था, तब मध्यरात्रि को सभी लोकों का हित करने हेतु पृथ्वी के भार को हरण करने के लिए वसुदेव की पत्नी देवकी के माध्यम से भगवान् का अवतार हुआ।

अभिजिन्नाम नक्षत्रं जयन्ती नाम शर्वरी।
मुहूर्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दनः॥

(हरिवंशपुराण, विष्णुपर्व, अध्याय - ०४ - श्लोक - १७)

जब भगवान् जनार्दन (विष्णु) का अवतार हो रहा था, उस नक्षत्र का नाम अभिजित्, रात्रि का नाम जयन्ती और मुहूर्त का नाम विजय था।

द्वापरे समनुप्राप्ते विरोधिवत्सरे शिवे।
श्रावणे चाष्टमी शुक्ला बुधरोहिणीसंयुता॥
वज्रयोगे मध्यरात्रौ पूर्णः कृष्णो हरिः स्वयम्।
कंसस्य च वधार्थाय अर्जुनस्य हिताय च॥
(शक्तिसङ्गममहातन्त्रराज, छिन्नमस्ताखण्ड, पटल - ०६, श्लोक - ६३-६४)

द्वापरयुग के आने पर विरोधी नामक सम्वत्सर में जब श्रावण मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी बुधवार और रोहिणी नक्षत्र से युक्त थी, तब वज्रयोग में मध्यरात्रि को स्वयं श्रीहरि पूर्णावतार लेकर कंस के वध एवं अर्जुन के हित के लिए श्रीकृष्णरूप में आये।

अब इस प्रकार के प्रसङ्गों में लोगों को भ्रम होगा कि महीना तो भाद्रपद का था, कृष्णपक्ष था, नक्षत्र रोहिणी और रात्रि तो अष्टमी की थी, जबकि मुहूर्त अभिजित् नामक था, फिर ऐसा वर्णन क्यों ? हम समझते हैं कि वेदव्यासजी आदि ने यहाँ साहित्यालङ्करण किया है। "न क्षरति न गच्छतीति नक्षत्रम्" के अनुसार जो आपेक्षिकता के सिद्धान्त से हमें गतिशील न दिखाई पड़े, उसे नक्षत्र कहते हैं। अतः अभिजित् नामक नक्षत्र कहकर वेदव्यासजी ने सङ्केत किया कि भगवान् यद्यपि अवतरित हो रहे हैं किन्तु उनका क्षरण या पदच्युत होना घटित नहीं हो रहा है, वे पूर्णरूप में विजयशील हैं। अभिजित् तो मुहूर्त था और नक्षत्र के रूप में उसका नाम ले चुके अतः विजयसंज्ञक पर्याय का प्रयोग करते हुए मुहूर्त का स्मरण किया। अष्टमी तो बहुत आयी हैं किन्तु इस अष्टमी को विशेषकर जयन्ती कहा, स्कन्दपुराण के अनुसार -

जयं पुण्यञ्च कुरुते जयन्तीमिति तां विदुः।
रोहिणीसहिता कृष्णा मासे च श्रावणेऽष्टमी॥
अर्द्धरात्रादधश्चोर्द्ध्वं कलयापि यदा भवेत्।
जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशिनी॥

जो जय प्रदान करे, पुण्य दे, उसे जयन्ती कहते हैं। श्रावणमास के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को यदि रोहिणी नक्षत्र एक कला के लिए भी अर्द्धरात्रि के ऊपर नीचे प्राप्त हो जाए तो उसे जयन्ती कहते हैं। यह सभी पापों का नाश करने वाली है। (इस प्रमाण से उन मूर्खों का भी खण्डन हो जाता है जो जयन्ती को मृत्युतिथि मानकर जन्मोत्सव एवं जयन्ती का प्रलाप करते रहते हैं)

पूर्णिमान्त मत से चान्द्रमास में पहले कृष्णपक्ष आता है और बाद में शुक्लपक्ष आता है, फिर पूर्णिमा को मास समाप्त हो जाता है। अमान्त मत से चान्द्रमास में पहले शुक्लपक्ष आता है और बाद में कृष्णपक्ष आने पर अमावस्या को मास समाप्त हो जाता है। अतः शुक्लपक्ष तो दोनों मतों में एक साथ ही चलता है किन्तु कृष्णपक्ष में फेरबदल हो जाती है अतः जहाँ जन्माष्टमी के रूप में श्रावण कृष्णपक्ष का वर्णन है, उसे अमान्त मत का समझना चाहिए, जबकि पूर्णिमान्त मत में वही दिन भाद्रपद कृष्णपक्ष के रूप में गिना जायेगा। अब हमें इसमें कौन सा मानना है ? श्रावण मानें या भाद्रपद ? इसपर महर्षि भृगु ने अपनी संहिता में उत्तम समाधान दिया और कहा कि श्रावण और भाद्रपद, दोनों ही मान सकते हैं, आपको जैसे उत्सव मनाना हो, उसमें समस्या नहीं।

अतः परं प्रवक्ष्यामि जयन्त्युत्सवलक्षणम्।
जयन्ती श्रावणे मासि कृष्णपक्षेऽष्टमी शुभा॥
रोहिणीसहिता ज्ञेया सर्वपापहरा तिथिः।
तस्यां जातो जगन्नाथो जगत्पालनकाङ्क्षया॥
चन्द्रस्योदयकाले तु मध्यरात्रे स्वलीलया।

तस्मिन्वै दिवसे कृष्णमर्चयित्वा प्रयत्नतः॥
(भृगुसंहिता, प्रकीर्णाधिकार, अध्याय - २१, श्लोक - ४३-४५)

इसके बाद जयन्ती के उत्सव का लक्षण बताते हैं। श्रावण मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी को यदि रोहिणी नक्षत्र पड़ जाये तो उसे सभी पापों का हरण करने वाली तिथि जानना चाहिए। संसार का पालन करने की इच्छा से विश्व के स्वामी भगवान् ने अपनी लीला से ही चन्द्रोदय के समय मध्यरात्रि को जन्म लिया अतः उसी दिन श्रीकृष्ण की पूजा प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिए। पुनः आगे स्पष्ट किया -

रोहिणीसहिता कृष्णा मासि भाद्रपदेऽष्टमी।
अर्द्धरात्रादधश्चोर्ध्वं कलया वापि पूर्ववत्॥
जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशिनी।
(भृगुसंहिता, प्रकीर्णाधिकार, अध्याय - २१, श्लोक - ५०)

भाद्रपद महीने के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि यदि अर्द्धरात्रि के आगे पीछे रोहिणी नक्षत्र की कलामात्र से भी युक्त मिल जाए तो उसे सभी पापों का नाश करने वाली जयन्ती कहते हैं। अब प्रश्न यह है कि ये सब का समाधान तो हो गया किन्तु जहाँ शुक्लपक्ष का वर्णन है, वहाँ क्या समन्वय होगा ? इस आलोक में हमें पुनः स्कन्दपुराण का ही आश्रय लेना चाहिए।

अवतारेऽत्र कृष्णेन योगमायातिभाविताः।
तद्बलेनात्मविस्मृत्या सीदन्त्येते न संशयः॥
ऋते कृष्णप्रकाशं तु स्वात्मबोधो न कस्यचित्।
तत्प्रकाशस्तु जीवानां मायया पिहितः सदा॥
अष्टाविंशे द्वापरान्ते स्वयमेव यदा हरिः।
उत्सारयेन्निजां मायां तत्प्रकाशो भवेत्तदा॥
स तु कालो व्यतिक्रान्तस्तेनेदमपरं श्रृणु।
अन्यदा तत्प्रकाशस्तु श्रीमद्भागवताद्भवेत्॥
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं यत्र भागवतैर्यदा।
कीर्त्यते श्रूयते चापि श्रीकृष्णस्तत्र निश्चितम्॥
श्रीमद्भागवतं यत्र श्लोकं श्लोकार्द्धमेव च।
तत्रापि भगवान् कृष्णो वल्लवीभिर्विराजते॥
(स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्ड, भागवतमाहात्म्य, अध्याय - ०३, श्लोक - ०८-१३)

उद्धवजी कहते हैं - भगवान् श्रीकृष्ण जब अवतार लेते हैं तो उनकी योगमाया के प्रभाव में फंसे जनसामान्य भगवान् के ही बल के कारण आत्मस्वरूप न पहचानकर कष्ट पाते रहते हैं। कृष्णरूपी प्रकाश के अभाव में किसी को आत्मबोध नहीं होता। जीव तो माया से ढंके हुए होते हैं अतः कृष्णप्रकाश से वञ्चित रहते हैं। जब अट्ठाइसवें द्वापर के अन्त में स्वयं श्रीहरि अपनी इस माया को दूर करते हैं तो वह प्रकाश फैल जाता है। (श्रीकृष्ण के गोलोक चले जाने से) अब तो उस प्रकाश का समय बीत गया किन्तु दूसरा उपाय सुनो। श्रीमद्भागवत से भी वह प्रकाश फैलता है। जब भगवद्भक्तों के द्वारा श्रीमद्भागवत शास्त्र का कीर्तन या श्रवण होता है, वहाँ श्रीकृष्ण निश्चित ही रहते हैं। श्रीमद्भागवत का एक अथवा आधा श्लोक भी जहाँ है, वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्रिया के साथ विराजते हैं।

जातस्तु दशमासान्ते रात्रौ घोरतमोवृते॥
भाद्रकृष्णाष्टमीसौम्ये ब्राह्मनक्षत्रसंयुते।
प्रादुरासीज्जगन्नाथो देवक्याञ्च महोत्तमः॥
(भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व, खण्ड - ०३, अध्याय - ०९, श्लोक - ३२-३३)

देवकी के गर्भ के जब दस महीने पूरे हो गये, तब घोर अन्धकार से भरी उस रात्रि में, जब भाद्रपद कृष्ण अष्टमी थी, बुधवार और ब्रह्मा का नक्षत्र (रोहिणी) थे, जब देवकी के समक्ष महान् उत्तम जगन्नाथ भगवान् ने अपना प्राकट्य किया।

निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनार्दने।
देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः॥
आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः॥
(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध - १०, पूर्वार्द्ध, अध्याय - ०३, श्लोक - ०८)

जब भगवान् जनार्दन जन्म ले रहे थे, उस घनघोर अन्धकार वाली रात्रि में देवस्वरूपिणी देवकीजी के समक्ष सबों के आश्रयदाता अगोचर विष्णु वैसे ही प्रकट हुए जैसे पूर्व दिशा से पूर्णिमा का चन्द्रमा उदित हो रहा हो।

भाद्रे बुधे कृष्णपक्षे धात्रर्क्षे हर्षणे वृषे।
कर्णेऽष्टम्यामर्द्धरात्रे नक्षत्रेशमहोदये॥
अन्धकारावृते काले देवक्यां शौरिमन्दिरे।
आविरासीद्धरिः साक्षादरण्यामध्वरेऽग्निवत्॥
(गर्गसंहिता, गोलोकखण्ड, अध्याय - ११, श्लोक - २३-३४)

भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष में बुधवार को धाता (ब्रह्मा) के नक्षत्र (रोहिणी) में हर्षण योग, वृष लग्न में अर्द्धरात्रि को नक्षत्राधिपति चन्द्रमा के उदय के समय वसुदेव और देवकी के यहाँ घनघोर अन्धकार से घिरे उस कक्ष में भगवान् श्रीहरि वैसे ही प्रकट हुए, जैसे यज्ञ में अरणिमन्थन से अग्निदेव प्रकट हो जाते हैं।

स्कन्दपुराण, भविष्यपुराण, श्रीमद्भागवत और गर्गसंहिता आदि में वर्णित श्रीकृष्णप्रकाश, चन्द्रमा और अग्नि के समान अन्धकार को दूर करने वाले प्राकट्य के होने से ही यद्यपि वह कृष्णपक्ष की रात्रि थी किन्तु भगवान् की प्रभा के कारण शुक्लपक्ष के समान हो गयी अतः साहित्यालङ्कार में कृष्णपक्ष की रात्रि को शुक्लपक्ष के समान कहीं कहीं वर्णित किया गया है, ऐसा हम समझते हैं। श्लोक में शौरिमन्दिर शब्द आया है। वसुदेव जी का मन्दिर ... जबकि वे तो कारागार में थे, फिर मन्दिर क्यों कहा ? मन्द्यते सुप्यतेऽत्र मन्द्यते स्तूयते इति वा मन्दिरम्। जहाँ व्यक्ति शान्ति का अनुभव करे, जहाँ सुखपूर्वक शयन कर सके अथवा जहाँ आराध्य की स्तुति कर सके, इन स्थानों को मन्दिर कहा जाता है, अतः माता देवकी और वसुदेवजी ने भगवान् के अवतार के समय परमशान्ति का अनुभव किया, साथ ही विदितोऽसि भवान् साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः तथा रूपं यत्तत्प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम् आदि वचनों से स्तुति भी की है अतः वह कालकोठरी भी उस समय मन्दिर ही हो गयी, ऐसा हम समझते हैं।

वस्तुतः जब हम भगवान् के लिए 'जन्म-कर्म' शब्द का प्रयोग करते हैं तो यह समझना चाहिए कि भगवान् कर्मप्रारब्ध में फंसे होकर गर्भवास में कष्ट पाते हुए प्राकृतिक जन्म नहीं लेते और मनुष्य की आकृति में दिखते हुए भी मनुष्य नहीं हैं। 'अजायमानो बहुधा विजायते' श्रुति के अनुसार अजन्मा होकर भी वह स्वयं को अनेकों रूपों में प्रकट कर लेते हैं। जैसा कि भगवान् ने स्वयं कहा है -

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय - ०४, श्लोक - ०६)

मैं अजन्मा और अविनाशी होते हुए तथा सम्पूर्ण प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृति का अधिष्ठाता होकर अपनी योगमाया के माध्यम से प्रकट होता हूँ। फिर आगे स्पष्ट करते हैं -

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय - ०४, श्लोक - ०९)

हे अर्जुन ! संसार में दिखने वाला मेरा जन्म और कर्म प्राकृत नहीं, अपितु दिव्य है, इस प्रकार जो पुरुष तत्वतः जानता है, वह इस शरीर को त्यागकर फिर जन्म को नहीं प्राप्त होता, मुझे ही प्राप्त होता है।

आजकल बहुत से पाखण्डी, जिसमें आर्यसमाज और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ आदि के नेता प्रमुख हैं, वे श्रीकृष्ण भगवान् को परमेश्वर न मानकर प्राकृत महापुरुष मानते हैं, इसका भी खण्डन स्वयं श्रीकृष्ण ने ही किया है -

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥
(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय - ०९, श्लोक - ११)

जो मूर्ख हैं, ऐसे लोग मेरे सभी प्राणियों के शासक महान् ईश्वररूप को न जानते हुए मुझे मनुष्यशरीर का आश्रित मानकर अर्थात् साधारण मनुष्य मानकर मेरी अवज्ञा करते हैं। अतः यह समझना चाहिए कि भगवान् के लिए 'जन्म' जैसे शब्दों का प्रयोग हम मनुष्यों को समझने में सुविधा हेतु ही प्रयुक्त होता है, वस्तुतः भगवान् अजन्मा ही हैं, बस स्वयं को प्रकट और अगोचर करते रहते हैं।

भगवान् विष्णु का कारागार में स्थिति देवकी एवं वसुदेव के आठवें पुत्र के रूप में श्रीकृष्णावतार यूँ तो असन्दिग्ध है किन्तु फिर भी कतिपय शास्त्रप्रमाण हम प्रस्तुत करते हैं -

ब्रह्मोवाच
हरिवंशं प्रवक्ष्यामि कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम्।
वसुदेवात्तु देवक्यां वासुदेवो बलोऽभवत्॥
(गरुडपुराण, आचारकाण्ड, अध्याय - १४४, श्लोक - ०१)

उपर्युक्त प्रमाण में ब्रह्मदेव ने वसुदेव और देवकी के माध्यम से वासुदेव श्रीकृष्ण और बलराम का अवतरित होना बताया है। बलरामजी पहले देवकी के ही गर्भ में रहे थे।

ततो हरिः कृष्णरूपी बभूव देवक्यां वै वसुदेवात्स विष्णुः।
(गरुडपुराण, ब्रह्मकाण्ड/मोक्षकाण्ड, अध्याय - १५)

वसुदेवाच्च देवक्यां जज्ञे शौरिर्महायशाः।
(हरिवंशपुराण, हरिवंशपर्व, अध्याय - ३५ एवं ब्रह्मपुराण, अध्याय - १४)

देवक्यां कृष्ण उत्पन्नो रोहिणीनन्दनो बलः॥
(गर्गसंहिता, मथुराखण्ड, अध्याय - ०१)

वसुदेवान्महाबाहुर्वासुदेवो जगद्गुरुः।
बभूव देवकीपुत्रो देवैरभ्यर्थितो हरिः॥
रोहिणी च महाभागा वसुदेवस्य शोभना।
असूत पत्नी संकर्ष रामं ज्येष्ठं हलायुधम्॥
स एव परमात्माऽसौ वासुदेवो जगन्मयः।
हलायुधः स्वयं साक्षाच्छेषः सङ्कर्षणः प्रभुः॥
(कूर्मपुराण, पूर्वभाग, अध्याय - २४ - श्लोक - ७०-७२)

देवक्यां वसुदेवस्य तपसा पुष्करेक्षणः।
चतुर्बाहुस्तदा जातो दिव्यरूपो ज्वलञ्श्रिया॥
(मत्स्यपुराण, अध्याय - ४७)

देवक्यां वसुदेवेन तपसा पुष्करेक्षणः।
चतुर्बाहुस्तु सञ्जातो दिव्यरूपो जनाश्रयः॥
(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय - १३, श्लोक - १३६)

मनोर्वैवस्वतस्याहमष्टाविंशतिमे युगे॥
द्वापरान्ते भविष्यामि यदुवंशकुलोद्भवः।
देवक्यां वसुदेवस्य कृष्णो नाम्ना महामते॥
(लिङ्गपुराण, उत्तरभाग, अध्याय - ०३)

नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः।
कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम्॥
मोहयन्सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया।
प्रविष्टो मानुषीं योनिं प्रच्छन्नश्चरते महीम्॥
(ब्रह्माण्डपुराण, मध्यभाग, अध्याय - ७३, श्लोक - ९८-९९)

भूभारासुरनाशार्थं पातुं धर्मञ्च धार्मिकान्।
वसुदेवाद्भविष्यामि देवक्यां मथुरापुरे॥
(स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्ड, वासुदेवमाहात्म्य, अध्याय - १८)

अथ कारागारे बालध्वनिं श्रुत्वा शत्रुभीतः कंसः समागत्य जातमात्रां कन्यां गृहीत्वा शिलापृष्ठे पातयामास॥
(गर्गसंहिता, बलभद्रखण्ड, अध्याय - ०५)

वसुदेवं देवकीं च बद्ध्वाऽथ निगडैर्दृढैः।
ममर्द तं शिलापृष्ठे देवकीगर्भजं शिशुम्॥
(गर्गसंहिता, गोलोकखण्ड, अध्याय - १०, श्लोक - १२)

कारागारे ततः कंसो देवकीं देवसंस्तुताम्।
स्थापयामास रक्षार्थं सेवकान् समकल्पयत्॥
(श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, स्कन्ध - ०४, अध्याय - २३, श्लोक - ०६)

देवकीं वसुदेवञ्च निगृह्य निगडैर्गृहे।
जातञ्जातमहन्पुत्रं तयोरजनशङ्कया॥
(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध - १०, पूर्वार्द्ध, अध्याय - ०१, श्लोक - ६६)

कंसेन निगडे बद्धौ पीडितौ बहुवत्सरान्।
ययोः पुत्रो हरिः साक्षात्तपसा तोषितोऽभवत्॥
(श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, स्कन्ध - ०४, अध्याय - १७, श्लोक - २६)

उपर्युक्त प्रमाणों से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि देवकी और वसुदेव को कंस ने मथुरा के कारागार में बन्द कर दिया और उनकी सन्तानों

को जन्म लेते ही शिला पर पटक कर मार देता था। फिर स्वयं भगवान् विष्णु ने देवताओं की प्रार्थना को स्वीकार करके देवकी और वसुदेव की तपस्या से सन्तुष्ट होकर शेषनाग के अंश बलरामजी के साथ श्रीकृष्णावतार ग्रहण किया। शास्त्रों में स्पष्ट उल्लेख है -

सिंहराशिगते सूर्ये गगने जलदाकुले।
मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां कृष्णपक्षेऽर्धरात्रके।
वृषराशिस्थिते चन्द्रे नक्षत्रे रोहिणीयुते॥
(भविष्यपुराण, उत्तरपर्व, अध्याय - ५५, श्लोक - १४)

द्वापरान्ते कलेरादौ व्यतीते तु शरच्छते।
प्रौष्ठपद्यामथाष्टम्यां कृष्णायामर्द्धरात्रके॥
रोहिणीस्थे चन्द्रमसि स्वोच्चगेऽभूज्जनिर्मम॥
(आद्युपपुराण, अध्याय - १५)

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर भगवान् श्रीकृष्ण के जन्मकाल में चन्द्रमा का अपनी उच्च राशि वृष में रोहिणीनक्षत्र से युक्त तथा सूर्य का स्वराशि सिंह में होना सिद्ध होता है। यही मत सागरसंहिता का भी है। अपनी कुण्डली जब भगवान् ने स्वयं बतायी है तो किसी का सॉफ्टवेयर क्या बतायेगा ?

लक्ष्मीस्त्वं शृणु वक्ष्यामि कृष्णजन्ममहोत्सवम्।
नक्षत्रं तिथिवारञ्च योगं करणमेव च॥
पक्षमासौ वत्सरञ्च यदावतरदच्युतः।
द्वापरस्य कलेः सन्धौ शुभकृद्वात्सरे शुभे॥
सिंहमासे कृष्णपक्षे त्वष्टम्यां रोहिणीयुते।
हर्षकौलवसंयुक्ते बुधवारे शुभे दिने॥
कन्यां गते बुधे शुक्रे लग्नगे च बृहस्पतौ।
मकरे भूमिपुत्रे च तुलायाञ्च शनौ स्थिते॥
कटके (कर्कटे) च स्थिते राहौ केतौ च मकरे स्थिते।
वृषभे तु मृगाङ्के च आदित्ये सिंहगे सति॥
निशीथे वृषभे लग्ने सर्वलोकहितो हरिः।
वसुदेवस्य देवक्याञ्जातः कृष्णो भृगूद्भवे॥
(प्रश्नसंहिता, अध्याय - ४१, श्लोक - ०१-०६)

भगवान् कहते हैं - हे लक्ष्मी ! अब मैं तुम्हें श्रीकृष्णजन्म महोत्सव के विषय में बताता हूँ, सुनो। नक्षत्र, तिथि, वार, योग, करण, पक्ष, मास, संवत्सर आदि सब बताऊंगा, जब भगवान् अच्युत अवतरित हुए। द्वापर और कलियुग की सन्धि में शुभकृत् सम्वत्सर में सिंहमास (जब सूर्य सिंह राशि में हों, ऐसे भाद्रपद मास में), कृष्णपक्ष अष्टमी तिथि, रोहिणीनक्षत्र से युक्त, हर्ष (हर्षण) योग, कौलव करण और शुभ बुधवार दिन में भगवान् का प्राकट्य हुआ। उस समय बुध और शुक्र कन्या राशि में थे (पञ्चम भाव में), लग्न में बृहस्पति थे (वृष राशि के), मकर राशि में भूमिपुत्र मङ्गल (नवम भाव में) थे, तुला राशि में शनि थे (षष्ठ भाव में), कर्क राशि में राहु और मकर में केतु (क्रमशः तृतीय एवं नवम भाव में) थे। चन्द्रमा वृष राशि में (लग्न में) तथा सूर्य सिंह राशि (चतुर्थ भाव) में थे। हे भृगुनन्दिनी ! रात्रिकाल को वृष लग्न में सभी लोकों के हितकारी श्रीहरि वसुदेव की पत्नी देवकी के माध्यम से उत्पन्न हुए।

कुछ लोग कह रहे हैं कि अमुक सॉफ्टवेयर से बनाने पर श्रीकृष्ण जी के जन्म के समय शनि की वैसी स्थिति नहीं मिलती, आदि आदि। भाई, श्रीरामजी के समय भी एक महीने के लिए सूर्य की गति स्तम्भित हो गयी थी। मंकी ऋषि की तपस्या से ग्रहों की चाल बिगड़ गयी -

उत्पथाश्च महानद्यो ग्रहा उन्मार्गसंस्थिताः।
त्रैलोक्यं व्याकुलीभूतं यावत्प्राप्नोति संक्षयम्॥
(स्कन्दपुराण)

पूतना के मरने के समय भी ग्रहों की गति बिगड़ गयी - तस्याः स्वनेनातिगभीररंहसा साद्रिर्मही द्यौश्च चचाल सग्रहा (श्रीमद्भागवत)। महाभारत का भीष्मपर्व ही देख लें कि कैसे सभी ग्रह और तिथियां अपनी अपनी प्राकृतिक स्थिति के विरुद्ध एक दूसरे का अतिक्रमण करने लगीं किन्तु जिनके अनुशासन में सभी ग्रह स्थित हैं - भ्रमन्ति राशिचक्राणि ग्रहा वै यद्भयेन च तथा राशिचक्रं ग्रहाः सर्वे भ्रमन्ति यस्य शासनात् (ब्रह्मवैवर्तपुराण), ऐसे परब्रह्म के प्राकट्य के समय जो ग्रहदशा उन्होंने स्वयं बतायी है, उसपर अश्रद्धा कर लेनी चाहिए क्योंकि किसी का सॉफ्टवेयर इस गणना का रहस्य नहीं समझ पा रहा है ? जिनका जन्म दिव्य है, जो प्रकृति के अधीन होकर नहीं, अपितु प्रकृति के ही अधिष्ठाता बनकर अवतरित होते हैं - प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय, उनको अपने जन्म के समय जैसी ग्रहदशा की इच्छा होगी, वे स्वयं बना लेते हैं, इसमें सॉफ्टवेयर की गति नहीं होती।

भगवान् के प्राकट्य के विषय में इतने अधिक प्रमाण हैं कि सबका उल्लेख करना न सम्भव है और न आवश्यक। फिर भी अतिलघुरूप में सारभूत प्रमाणों को प्रस्तुत करते जा रहे हैं।

सिंहराशिगते सूर्ये श्रावणे मासि नारद।
कृष्णपक्षे तथाष्टम्यां बुधवारे निशार्द्धके।
वसुदेवेन देवक्यां जज्ञे कृष्णश्चतुर्भुजः॥
(नारदपुराण)

श्रावणे बहुले पक्षे कृष्णजन्माष्टमी व्रतम्।
न करोति नरो यस्तु भवति क्रूरराक्षसः॥
(भविष्योत्तरपुराण)

प्राजापत्येन संयुक्ता कृष्णा नभसि चाष्टमी।
जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सा ह्युपोष्या महाफला॥
(मार्कण्डेयपुराण)

प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता कृष्णा नभसि चाष्टमी।
मुहूर्तमपि लभ्येत सैवो पोष्या महाफला॥
(विष्णुरहस्य)

प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता अष्टमी तु यदा भवेत्।
श्रावणे बहुले सा तु सर्वपापप्रणाशिनी॥
(स्कन्दपुराण)

सिंहार्के रोहिणीयुक्ता नभःकृष्णाष्टमी यदा।
अत्र जातो जगन्नाथः कौस्तुभी हरिरच्युतः॥
(वाराहपुराण)

सिंहार्के रोहिणीयुक्ता नभःकृष्णाष्टमी यदा।
रात्र्यर्द्धपूर्वापरगा जयन्ती नाम सा तिथिः॥
(वाराहसंहिता)

शास्त्रों में तीन प्रकार की जन्माष्टमी सम्बन्धी जयन्ती बतायी गयी है। भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को सोमवार और रोहिणी नक्षत्र मिले, उसे ब्रह्मसंज्ञा वाली जयन्ती कहते हैं। भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को बुधवार और रोहिणी नक्षत्र मिले, उसे विष्णुसंज्ञा वाली जयन्ती कहते हैं। यदि भाद्रपद कृष्ण अष्टमी रात्रिकाल में नवमी से युक्त हो जाए तथा उस दिन रोहिणी नक्षत्र के साथ बुधवार या विशेषकर सोमवार हो, फिर उसे रुद्रसंज्ञा वाली जयन्ती कहते हैं -

सोमवारे तु सम्प्राप्ते नभोमासेऽसिताष्टमी।
रोहिणीसहिता सा चेज्जयन्ती ब्रह्मसंज्ञिता॥
नभस्वसितरोहिण्यां सौम्यवारयुताऽष्टमी।
जयन्ती विष्णुसंज्ञा च सर्वसिद्धिप्रदा नृणाम्॥
निशीथे रोहिणीयुक्ता नवमीसहिताऽष्टमी। बुधवारसमायुक्ता सोमेनापि विशेषतः।
नभः कृष्णजयन्ती च रुद्रसंज्ञाघनाशिनी॥

ब्रह्मसंहिता के अनुसार यदि श्रावण कृष्णपक्ष (पूर्णिमान्त मत में भाद्रपद कृष्णपक्ष) को पूरे साठ घड़ी (दिन-रात) वाली अष्टमी मिल जा रही है तो उसे सम्पूर्ण जन्माष्टमी समझना चाहिए -

श्रावण्यां कृष्णपक्षस्य घटीषष्टिर्यदाष्टमी।
तदा जन्माष्टमी ख्याता सा सम्पूर्णा प्रकीर्तिता॥
(ब्रह्मसंहिता)

इसमें सागरसंहिता में स्वयं भगवान् ने ब्रह्मदेव को एक विशेष बात कही -

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि जयन्तीनिर्णयं परम्।
सिंहराशिगते सूर्ये गगने जलदाकुले॥
मासि प्रोष्ठपदेऽष्टम्यामर्द्धरात्रे विधूदये।
बुधवारे वृषे लग्ने रोहिण्याश्चरमांशके॥
शुभे हर्षणयोगे च कौलवेन युते तथा।
वसुदेवेन देवक्यामहं जातोऽस्मि पद्मज॥
(सागरसंहिता)

भगवान् कहते हैं - हे ब्रह्मदेव ! मैं जयन्ती का परमनिर्णय बताता हूँ। सिंह राशि में जब सूर्य थे, आकाश में मेघ छाये हुए थे, भाद्रपद मास की अष्टमी तिथि को बुधवार था, मध्यरात्रि में चन्द्रोदय के समय रोहिणी नक्षत्र का चौथा चरण चल रहा था, हर्षण योग एवं कौलव करण के साथ वृष लग्न आया, तब मैंने वसुदेव और देवकी के माध्यम से जन्म लिया।

सनत्कुमारसंहिता में कहते हैं कि श्रावण मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी को कृष्णजन्माष्टमी कहते हैं जो बड़े बड़े पातकों का नाश कर देती है। यदि उसमें रोहिणी नक्षत्र भी मिल जाए तो उसी को जयन्ती कहते हैं। इसी का समर्थन अत्रिसंहिता, अनिरुद्धसंहिता और पद्मसंहिता ने भी किया है। यदि उस वर्ष जयन्ती न मिले तो शुद्ध अष्टमी का ही उपवास कर लें -

श्रावणे मासि कृष्णे च पक्षेऽष्टम्यां तिथौ हरेः।
रोहिण्यां जन्म कृष्णस्य लोकानां मङ्गलावहम्॥
जयन्ती नाम सा प्रोक्ता जयत्यशुभमित्यसौ।
मध्यरात्रे ततस्तस्मिन् कल्याणं सम्यगाचरेत्॥
(पद्मसंहिता, चर्यापाद, अध्याय - १४, श्लोक - ३१)

श्रावणे मासि तस्मिंश्च कृष्णपक्षे विशेषतः।
अष्टमी रोहिणीयुक्ता सा जयन्तीति कीर्तिता॥
(अत्रिसंहिता)

श्रावण्यां कृष्णपक्षे तु अष्टम्यां रोहिणीयुते।
जयन्ती नाम सा प्रोक्ता जयत्यशुभमित्यसौ॥
(अनिरुद्धसंहिता, अध्याय - २५, श्लोक - ०५)

सम्प्राप्ते श्रावणे मासि कृष्णपक्षे यदाष्टमी।
कृष्णजन्माष्टमी ज्ञेया महापातकनाशिनी॥
रोहिणीसहिता सा चेज्जयन्ती नाम सा तिथिः।
जयन्ती न भवेद्वर्षे शुद्धाष्टम्यामुपोषयेत्॥
(सनत्कुमारसंहिता)

ब्रह्मसंहिता में जो साठ घटी अष्टमी के श्रावणकृष्णपक्ष में प्राप्त होने पर सम्पूर्ण जन्माष्टमी का वर्णन है, उसके आलोक में सागरसंहिता में कहा गया -

श्रावणस्य तु मासस्य घटीषष्टिर्यदा भवेत्।
तदा जन्माष्टमी ख्याता सा सम्पूर्णा प्रकीर्तिता॥
(सागरसंहिता)

इस अनुसार ब्रह्मसंहिता का समर्थन तो है किन्तु सनत्कुमार संहिता में जो कहा कि श्रावण कृष्ण अष्टमी को रोहिणी न मिलने पर शुद्ध अष्टमी कर लें, तो सागरसंहिता में श्रावण और भाद्रपद को अमान्त/पूर्णिमान्त से एक ही न मानकर सर्वथा अलग अलग कहते हुए निर्देश दिया -

कृष्णाष्टम्यां श्रावणे तु रोहिणी वै न लभ्यते।
अष्टमीरोहिणी योगः सिंहार्के भाद्रपादके॥
तस्यामुपोष्य विधिवद्विष्णुं सम्पूज्य सादरम्॥
(सागरसंहिता)

श्रावणमास के कृष्णपक्ष की अष्टमी में यदि रोहिणी नक्षत्र की प्राप्ति न हो तो जब सूर्य सिंह राशि में हों और भाद्रपद का महीना आये, उसमें अष्टमी और रोहिणी का संयोग प्राप्त होने पर उपवास करके विधिवत् विष्णु भगवान् का पूजन करे। सागरसंहिता के इस मत का समर्थन श्रावण और भाद्रपद, दोनों के अनुसार वशिष्ठसंहिता भी करती है।

श्रावणे वा नभस्ये वा रोहिणीसहिताऽष्टमी।
यदा कृष्णा नरैर्लब्धा सा जयन्तीति कीर्तिता॥
श्रावणे न भवेद्योगो नभस्ये तु भवेद्ध्रुवम्।
तयोरभावे योगस्य तस्मिन्वर्षे न सम्भवः॥
(वशिष्ठसंहिता)

महर्षि भृगु ने तो अपनी संहिता के प्रकीर्णाधिकार में श्रावण और भाद्रपद, दोनों को जन्माष्टमी/जयन्ती मानते हुए दोनों के ही व्रत का विधान बता दिया है। अतः अपने अपने स्मार्त, पौराणिक, पाञ्चरात्र, वैखानस आदि परम्परा का अनुसरण करना चाहिए।

वसुदेव और देवकी पूर्वजन्म में कश्यप एवं अदिति थे। जब देवराज इन्द्र ने दिति के गर्भ में योगबल से प्रवेश करके आत्मरक्षा में भ्रूणहत्या का प्रयास किया तो व्रतबल से भ्रूण मरा तो नहीं किन्तु पहले सात और फिर उनचास भागों में विभक्त होकर प्रसूत हुआ। वह सभी बालक वायु के प्रकार उनचास मरुद्गणों में रूप में देवमण्डल में देवसख के नाम से प्रसिद्ध हुए। कालान्तर में दिति को इस घटना से क्षोभ हुआ तो उन्होंने अदिति को शाप दिया कि तुम्हारे बच्चे तुम्हारे सामने बार बार मारे जाएंगे और कारागार भी भोगना होगा। वैसे देखें तो प्रधानता से इन्द्र ने पहले दितिगर्भ के सात टुकड़े ही किए थे और बलरामजी के रूप में सप्तम गर्भ की हानि के साथ देवकी जी के कुल सात पुत्र नष्ट हुए। पुनः एक कथा के अनुसार कश्यपजी को चौर्यदण्ड के रूप में कारागार जाने का शाप मिला था, तो दोनों ही शाप एक साथ उन्हें वसुदेव और देवकी के रूप में भोगने पड़े। भगवान् ने पूर्वकाल में उनकी तपस्या के फलस्वरूप यह वरदान दिया था कि हम आपके पुत्र के रूप में तीन जन्मों तक आएंगे, वह भी सार्थक हुआ। देवकीजी के विवाह से लेकर कंस के वध तक लगभग बीस वर्षों का समय माना जा सकता है। इतने समय तक के कारागार में रहीं और कंस के वध के बाद उन्हें मुक्त कराया गया। यह सब बातें निम्न शास्त्रवाक्यों से सिद्ध हैं -

कश्यपो वसुदेवोऽभूद्देवकी चादितिर्वरा।
देवक्यां वसुदेवातु कृष्णोऽभूत्तपसान्वितः॥
(अग्निपुराण, अध्याय - २७६, श्लोक - ०१)

यथा मे कर्तितो गर्भस्तव पुत्रेण छद्मना।
तथा तन्नाशमायातु राज्यं त्रिभुवनस्य तु॥
यथा गुप्तेन पापेन मम गर्भो निपातितः।
अदित्या पापचारिण्या यथा मे घातितः सुतः॥
तस्याः पुत्रास्तु नश्यन्तु जाता जाताः पुनः पुनः।
कारागारे वसत्वेषा पुत्रशोकातुरा भृशम्॥
अन्यजन्मनि चाप्येव मृतापत्या भविष्यति।
(श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, स्कन्ध - ०४, अध्याय - ०३, श्लोक - ४७-५०)

कंसं स्वमातुलं कृष्णो हनिष्यति ततः परम्।
विमुच्य पितरौ बद्धौ यवनेशं निहत्य च॥
(नारदपुराण, उत्तरार्द्ध, अध्याय - ८१, श्लोक - ३८)

एक मत से भगवान् श्रीकृष्ण इस पृथ्वी पर तब आये, जब द्वापरयुग ११५ वर्ष शेष था।

द्वापरस्य युगस्यास्य तव राज्यान्महाभुज।
अवशेषे वर्षशते तथा पञ्चदशे नृप॥
तस्मिन् वर्षे यदुकुले मथुरायां यदोः पुरे।
भाद्रे बुधे कृष्णपक्षे धात्रर्क्षे हर्षणे वृषे॥
बवेऽष्टम्यामर्द्धरात्रे नक्षत्रेशमहोदये।
अन्धकारावृते काले देवक्यां शौरिमन्दिरे॥
भविष्यति हरिः साक्षादरण्यामध्वरेऽग्निवत्।
(गर्गसंहिता, माधुर्यखण्ड, अध्याय - ०५, श्लोक - १८-२०)

किन्तु अधिक प्रमाण और प्रचलित मत श्रीकृष्ण भगवान् का कार्यकाल १२५ वर्षों का मानता है और जिस दिन उन्होंने स्वधामगमन किया, उस दिन से कलियुग की गणना करता है -

पञ्चविंशतिवर्षे च शतवर्षाधिकं मुने।
तिष्ठञ्जगाम गोलोकं पृथिव्याञ्च पुरातनः॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड, अध्याय - ५४, श्लोक - २३)

भगवान् का श्रीकृष्णावतार मथुरा में कारागार के मध्य वसुदेव और देवकीजी के पुत्र के रूप में होगा, साथ ही वज्रनाभ ने केशवदेव मन्दिर भी बनवाया, इसमें बहुत से प्रमाण मैं पूर्व में दे चुका हूँ और कुछ आगे भी दे देता हूँ, जो वचन देवर्षि नारद, याज्ञवल्क्य, किम्पुरुष उपदेवता और स्वयं भगवान् के भी द्वारा कहे गये हैं -

तत्रैषा देवकी या ते मथुरायां लघुस्वसा।
योऽस्यां गर्भोऽष्टमः कंस स ते मृत्युर्भविष्यति॥
(हरिवंशपुराण, विष्णुपर्व, अध्याय - ०१, श्लोक - १६)

याज्ञवल्क्येन पूर्वोक्तो मथुरायां हरिः स्वयम्।
वसुदेवस्य देवक्यां भविष्यति न संशयः॥
(गर्गसंहिता, माधुर्यखण्ड, अध्याय- ०६, श्लोक - २०)

कला तु सकला विष्णोर्वामनस्य तथा कला।
एकीभूता च देवक्यां जातो विष्णुस्तदा स्वयम्॥
वसुदेवगृहे रम्ये मथुरायाञ्च देवताः।
ब्रह्माद्यास्तुष्टुवुर्देवं परं ब्रह्म सनातनम्॥
(भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व, अध्याय - ०५, श्लोक - २३-२४)

कंसेन निगडे बद्धौ पीडितौ बहुवत्सरान्।
ययोः पुत्रो हरिः साक्षात्तपसा तोषितोऽभवत्॥
जातोऽसौ मथुरायां तु गोकुले स कथं गतः।
कंसं हत्वा द्वारवत्यां निवासं कृतवान् कथम्॥
(श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, स्कन्ध - ०४, अध्याय - १७, श्लोक - २६-२७)

अहोऽतिधन्या मथुरापुरी वरा बभूव यस्यां परमेश्वरो हरिः।
अहोऽतिधन्यं सततं यदोः कुलं जातो हि यस्मिन्नखिलाण्डपालकः ॥
(गर्गसंहिता, विश्वजित्खण्ड, अध्याय - २६, श्लोक - ०४)

भुवो भारावताराय कंसादीनां वधाय च।
ब्रह्मणा प्रार्थितः साक्षाज्जातोऽहं वै त्वया सह॥
मथुरां हि गमिष्यामि हरिष्यामि भुवो भरम्।
शीघ्रमत्रागमिष्यामि करिष्यामि शुभं तव॥
(गर्गसंहिता, मथुराखण्ड, अध्याय - ०४, श्लोक - ०८-०९)

जनार्दनं च कुब्जाम्रे मथुरायां च केशवम्।
कुब्जके श्रीधरं तद्वद्गङ्गाद्वारे सुरोत्तमम्॥
(विष्णुधर्मपुराण, अध्याय - ३६, श्लोक - १४)

मथुरापुरी में भगवान् केशवदेव के रूप में भक्तों पर अनुग्रह करते हैं, यह शास्त्रसिद्ध बात है। मथुरा में आकर केशवदेव जी का दर्शन एवं यमुनास्नान करके मनुष्य को भगवान् का ही लोक मिलता है।

मथुरां समनुप्राप्य दृष्ट्वा देवं तु केशवम्।
स्नात्वा पुनस्तु कालिन्द्यां मम लोके महीयते॥
(वराहपुराण, अध्याय - १५८, श्लोक - ०६)

भगवान् ने स्वयं ही मथुरा को अपनी जन्मभूमि बताया है -

मथुरेति च विख्यातं तस्मान्नास्ति परं मम।
सा रम्या च सुशस्ता च जन्मभूमिस्तथा मम॥
(वराहपुराण, अध्याय - १५२, श्लोक - ११)

भगवान् श्रीशिव ने कुमार कार्तिकेय को तीर्थों का वर्णन करते समय मथुरा को भगवान् का जन्मस्थान बताया और उसके माहात्म्य का वर्णन किया -

तपोपवासनिरतो मथुरायां षडानन।
जन्मस्थानं समासाद्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
(स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्ड, बदरिकाश्रममाहात्म्य, अध्याय - ०१, श्लोक - ३२)

अतएव भगवान् ने स्वयं कहा कि मैं मथुरा में सदैव निवास करता हूँ। इसमें श्रुतिप्रमाण है - मथुरायां स्थितिर्ब्रह्मन्सर्वदा मे भविष्यति। (गोपालतापिन्युपनिषत्) और मथुरा में परब्रह्म भगवान् का सगुण पुरुषोत्तमावतार वसुदेवजी के पुत्र के रूप में होगा, इसकी भविष्यवाणी भी वेदों में है -

वैवस्वतेऽन्तरे सगुणं ब्रह्म चिद्घनानन्दैकरूपं पुरुषोत्तमरूपेण मथुरायां वसुदेवसद्मन्याविर्भविष्यति (गोपीचन्दनोपनिषत्)

भगवान् श्रीकृष्ण ने भी स्वयं को लोकमान्यता और वैदिक वर्णन के अनुसार पुरुषोत्तम ही बताया है -

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥
(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय - १५, श्लोक - १८)

भगवान् श्रीकृष्ण के मन्दिर केशवदेव जी का संस्थापन उनके प्रपौत्र वज्र ने गर्गमुनि के आदेश से किया था।

गर्गवाक्यात्ततो वज्रो मथुरायां मुनीश्वरैः।
चकार हयमेधं वै यथा नागपुरेश्वरः॥
ततः स मथुरायां च दीर्घविष्णुं च केशवम्।
वृन्दावने च गोविन्दं हरिदेवं गिरीश्वरे॥
गोकुले गोकुलेशं च गोकुलाद्योजने बलम्।
स्थापयामास वज्रस्तु हरेश्च प्रतिमाश्च षट्॥
बलस्य प्रतिमाश्चान्याः पञ्च वै व्रजमण्डले।
नृणां शुभाय वज्रस्तु स्थापयामास हर्षितः॥
अब्दाश्चतुःसहस्राणि कलौ पञ्च शतानि च।

गते गिरिवरे हि श्रीनाथः प्रादुर्भविष्यति॥
तं पूजयिष्यति व्रजे विष्णुस्वामी रवेस्तनुः।
वल्लभाद्याश्च तच्छिष्याश्चान्ये गोकुलस्वामिनः॥
(गर्गसंहिता, अश्वमेधखण्ड, अध्याय - ६२, श्लोक - २५-३०)

गर्गमुनि के आदेशानुसार महाराज वज्र ने मथुरा में मुनियों के साथ मिलकर उसी प्रकार अश्वमेध यज्ञ किया, जैसे महाराज परिक्षित् ने हस्तिनापुर में किया था। फिर मथुरा में उन्होंने बड़े विष्णुजी का और केशवदेव जी का मन्दिर बनवाया। वृन्दावन में गोविन्ददेवजी और गोवर्द्धन में हरिदेवजी की स्थापना की। गोकुल में गोकुलेश भगवान् और वहाँ से एक योजन दूर बलरामजी की स्थापना की। इस प्रकार वज्र ने प्रसन्न होकर लोगों के शुभ के लिए श्रीहरि के छः तथा बलरामजी के व्रजमण्डल में पहले के अतिरिक्त और पांच, कुल बारह मन्दिर बनाकर मूर्तिस्थापना की। कलियुग के साढ़े चार हज़ार वर्ष बीतने पर गिरिराजजी के पास श्रीनाथ भगवान् प्रकट होंगे, जिनकी पूजा सूर्यदेव के अवतार श्रीविष्णुस्वामी करेंगे। फिर उनके वल्लभाचार्य आदि शिष्य भी गोकुलेश भगवान् की आराधना करेंगे।

अब भगवान् श्रीकृष्ण का इस पृथ्वी पर प्रत्यक्ष लीलाकाल क्या था, इसपर चर्चा करते हैं। ब्रह्मदेव के जीवकाल के अहोरात्रमिश्रित ७२००० कल्पों में ३६००१वां वर्तमान श्वेतवाराह कल्प चल रहा है। इसके चौदह में यह सातवां मन्वन्तर चल रहा है। इस सातवें वैवस्वत मन्वन्तर के ७१ चतुर्युगों में यह अट्ठाईसवें चतुर्युग का कलियुग चल रहा है, जिसके ४,३२,००० वर्षों में ५१२४वां वर्ष चल रहा है। राजतरङ्गिणीकार कहते हैं -

शतेषु षट्सु सार्द्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले।
कलेर्गतेषु वर्षाणामभवन् कुरुपाण्डवाः॥

कलियुग के ६५३ वर्ष बीतने पर कौरव एवं पाण्डव हुए थे। किन्तु हम इस गणना से सहमत नहीं हैं। क्योंकि कलियुग के सम्वत् प्रवर्तक राजाओं की गणना में कहते हैं - आदौ कलियुगे राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः। कलियुग के पहले राजा युधिष्ठिर हुए।

कुछ लोग कुतर्क करेंगे कि सत्ययुग में शुक्लवर्ण, त्रेता में रक्तवर्ण, द्वापर में पीतवर्ण कलियुग में कृष्णवर्ण का अवतार होता है, इसीलिए कौरव-पाण्डव एवं उनके समकालीन श्रीकृष्ण भगवान् का समय कलियुग का ही है और अपने समर्थन में निम्न श्लोक देंगे -

कृते शुक्लं हरिं विद्यात्त्रेतायां रक्तवर्णकम्।
द्वापरे पीतवर्णञ्च कलौ कृष्णत्वमागतः॥

अथवा इदानीं कृष्णतां गतः आदि वचन भी कहेंगे किन्तु वह समीचीन नहीं है। क्योंकि भगवान् का जब अवतार हुआ तो वह द्वापर और कलियुग का सन्धिकाल का। द्वापरयुग की अपरासन्ध्या मानवीय गणना से ७२००० वर्षों की है तथा कलियुग की पूर्वासन्ध्या ३६००० वर्षों की है। इस अनुसार १,०८,००० वर्षों की तो द्वापर और कलि की संयुक्त सन्ध्या ही हो गयी। सन्ध्याकाल में दोनों युगों के लक्षणों में मिश्रण हो जाता है। फिर स्पष्ट कहा -

द्वापरे भगवान् श्यामः पीतवासा निजायुधः।
श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षितः॥
(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध - ११, अध्याय - ०५, श्लोक - २७)

द्वापरयुग में भगवान् का अवतार पीताम्बरधारी, श्यामसुन्दर, अपने शङ्खचक्रादि आयुधों एवं श्रीवत्स के चिह्न से युक्त स्वरूप में होता है। मथुरा के कारागार में जब भगवान् का अवतार हुआ तो उनका स्वरूप ऐसा ही तो था -

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्॥

(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध - १०, पूर्वार्द्ध, अध्याय - ०३, श्लोक - ०९)

महाभारतयुद्ध के बाद छत्तीस वर्षों तक युधिष्ठिर ही राजा रहे।

षट्त्रिंशे त्वथ सम्प्राप्ते वर्षे कौरवनन्दनः।
ददर्श विपरीतानि निमित्तानि युधिष्ठिरः॥
(महाभारत, मौसलपर्व, अध्याय - ०१)

महाभारत युद्ध के छत्तीस वर्ष बीतने पर कुरुनन्दन युधिष्ठिर ने अपशकुनों को होते देखा।

षट्त्रिंशेऽथ ततो वर्षे वृष्णीनामनयो महान्।
अन्योन्यं मुसलैस्ते तु निजघ्नुः कालचोदिताः॥
(महाभारत, मौसलपर्व, अध्याय - ०२)

महाभारतयुद्ध के छत्तीस वर्ष बीतने पर वृष्णिवंशियों ने एक दूसरे को घनघोर युद्ध में मूसल के प्रहार से मार डाला।

इधर महाराज युधिष्ठिर ने अपशकुनों को होता देखकर अर्जुन को कहा कि द्वारिका जाकर वहाँ के सुहृदों का समाचार ले आओ। किन्तु सात महीनों तक अर्जुन नहीं लौटे तो युधिष्ठिरजी ने भीमसेन से वार्ता करते हुए अपशकुनों के आधार पर सन्देह व्यक्त किया कि कहीं कलियुग आ तो नहीं गया ?

सम्प्रेषितो द्वारकायां जिष्णुर्बन्धु दिदृक्षया।
ज्ञातुञ्च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम्।
गताः सप्ताधुना मासा भीमसेन तवानुजः।
नायाति कस्य वा हेतोर्नाहं वेदेदमञ्जसा॥
(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध - ०१, अध्याय - १४, श्लोक - ०६-०७)

फिर जब अर्जुन ने आकर वञ्चितोऽहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा आदि कथनों से भगवान् के स्वधामगमन एवं यदुकुल के संहार का शोकसमाचार दिया तो महाराज युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र और उनकी वैश्यवर्ण की दासी से उत्पन्न सबसे छोटे और जीवित बचे धर्मात्मा पुत्र युयुत्सु को बुलाकर राज्य का संरक्षक बनाया एवं युयुत्सु तथा सुभद्रा देवी के मार्गदर्शन में परीक्षित् को हस्तिनापुर तथा भगवान् श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ (वज्र) को इन्द्रप्रस्थ का राज्य सौंप दिया। चूंकि मथुरा नगरी खण्डहर हो गयी थी और द्वारिका समुद्र में लीन हो गयी थी अतः बचे खुचे यदुवंशियों को इन्द्रप्रस्थ में ही बसाया गया। बाद में परीक्षित् जी ने मथुरा नगरी को फिर से बसाकर वज्र को वहाँ विधिवत् स्थापित किया।

ततो युयुत्सुमानाय्य प्रव्रजन्धर्मकाम्यया।
राज्यं परिददौ सर्वं वैश्यापुत्रे युधिष्ठिरः॥
अभिषिच्य स्वराज्ये च राजानं च परिक्षितम्।
दुःखार्तश्चाब्रवीद्राजा सुभद्रां पाण्डवाग्रजः॥
एष पुत्रस्य पुत्रस्ते कुरुराजो भविष्यति।
यदूनां परिशेषश्च वज्रो राजा कृतश्च ह॥
परिक्षिद्धास्तिनपुरे शक्रप्रस्थे च यादवः।
वज्रो राजा त्वया रक्ष्यो मा चाधर्मे मनः कृथाः॥
(महाभारत, महाप्रस्थानिकपर्व, अध्याय - ०१, श्लोक - ०६-०९)

अब कलियुग की गणना किस दिन से करनी है ? जिस दिन भगवान् श्रीकृष्ण इस पृथ्वी को छोड़कर गये, उसी दिन सभी सत्कर्मों का विनाशक कलियुग आ गया, उस समय भगवान् श्रीकृष्ण के लीलाकलेवर की आयु १२५ वर्ष की थी। भगवान् श्रीकृष्ण के गोलोकगमन का समाचार युधिष्ठिर को कई महीनों के बाद ज्ञात हुआ, तब तक उन महीनों में वे ही कलियुग के आने के बाद भी शासन करते रहे अतः कलियुग के पहले राजा भी वही हुए - आदौ कलियुगे राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।

भगवान् श्रीकृष्ण के स्वधामगमन के समय उनकी आयु १२५ वर्ष थी तथा उसी दिन से कलियुग की गणना करनी है, इसका प्रमाण निम्न शास्त्रवाक्यों से पुष्ट हो जाता है -

यदा मुकुन्दो भगवान् क्ष्मां त्यक्त्वा स्वपदं गतः।
तद्दिनात्कलिरायातः सर्वसाधनबाधकः॥
(अथवा पाठभेद)
यदा मुकुन्दो भगवान् क्ष्मां त्यक्त्वा स्वपदं गतः।
कलिस्तद्दिनमारभ्य प्रवृत्तः सत्यबाधकः॥
(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय - १९३)

यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम।
शरच्छतं व्यतीयाय पञ्चविंशाधिकं प्रभो॥
नाधुना तेऽखिलाधार देवकार्यावशेषितम्।
कुलञ्च विप्रशापेन नष्टप्रायमभूदिदम्॥
ततः स्वधाम परमं विशस्व यदि मन्यसे।
सलोकाल्लोकपालान्नः पाहि वैकुण्ठकिङ्करान्॥
(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध - ११, अध्याय - ०६, श्लोक - २५-२७)

यत्पञ्चविंशत्यधिकं वर्षाणां शतकं गतम्।
व्यक्त्वेमां स्वपदं यासि रुदन्तीं विरहातुरम्॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड, अध्याय - १२९, श्लोक - १८)

यदैव भगवान्विष्णोरंशो यातो दिवं द्विज। वसुदेवकुलोद्भूतस्तदैवात्रागतः कलिः॥
(विष्णुपुराण, चतुर्थांश, अध्याय - २४, श्लोक - १०८)

यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि।
प्रतिपन्नं कलियुगं इति प्राहुः पुराविदः॥
(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध - १२, अध्याय - ०२, श्लोक - ३३)

यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि।
प्रतिपन्नं कलियुगं तस्य सङ्ख्यां निबोध मे॥
त्रीणि लक्षाणि वर्षाणां द्विज मानुष्यसङ्ख्यया।
षष्टिश्चैव सहस्राणि भविष्यत्येष वै कलिः॥
(विष्णुपुराण, चतुर्थांश, अध्याय - २४, श्लोक - ११३-११४)

उपर्युक्त प्रमाण में जिस दिन भगवान् धराधाम छोड़कर गये, उसी दिन कलियुग आ गया, ऐसा वर्णन करने के बाद यह बताया कि कलियुग कब तक रहेगा। इसमें कलियुग की आयु मनुष्यों के अनुसार ३६०००० वर्ष बतायी गयी है, जो उसकी उभयसन्ध्या को बिना जोड़े

कही गयी है। इसमें मुख्यायु का १०-१०% पूर्वापरा सन्ध्या का मान जोड़ने पर यह आयु ४,३२,००० मानवीय वर्ष की हो जाती है, जिसे मत्स्यपुराण में स्पष्ट किया।

यस्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि॥
प्रतिपन्नं कलियुगं प्रमाणं तस्य मे श्रृणु॥
चतुःशतसहस्रन्तु वर्षाणां वै स्मृतं बुधैः।
चत्वार्यष्टसहस्राणि सङ्ख्यातं मानुषेण तु॥
(मत्स्यपुराण, अध्याय - २७३, श्लोक - ४८-४९)

यस्मिन्दिने हरिर्यातो दिवं सन्त्यज्य मेदिनीम्।
तस्मिन्दिनेऽवतीर्णोऽयं कालकायः कलिः किल॥
(ब्रह्मपुराण, अध्याय - २१२, श्लोक - ०६)

यस्मिन्दिने हरिर्यातो दिवं सन्त्यज्य मेदिनीम्।
तस्मिन्नेवावतीर्णोऽयं कालकायो बली कलिः॥
(विष्णुपुराण, पञ्चमांश, अध्याय - ३८, श्लोक - ०८)

यदा मुकुन्दो भगवानिमां महीं जहौ स्वतन्वा श्रवणीयसत्कथः।
तदाहरेवाप्रतिबुद्धचेतसामधर्महेतुः कलिरन्ववर्तत॥
(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध - ०१, अध्याय - १५, श्लोक - ३६)

वर्तमान कलियुग का ५१२४वां वर्ष चल रहा है। इसकी गणना उस दिन से करनी है, जब भगवान् स्वधामगमन किए और तब उनका लीलाकलेवर १२५ वर्ष का हो चुका था, साथ ही महाभारत के युद्ध को ३६ वर्ष भी व्यतीत हो गये थे। ऐतिहासिक तथा शास्त्रीय प्रमाणों से सिद्ध है कि १०१७ ई० में गजवनी के आक्रमण में ध्वस्त किए जाने से पूर्व श्रीकृष्णजन्मभूमि में विशाल मन्दिर था जिसका पुनर्निर्माण ११५० ई० में राजा विजयपाल देव ने कराया था। फिर जब सिकन्दर लोधी ने आक्रमण करके इस मन्दिर को क्षति पहुंचायी तो ओरछा नरेश वीरसिंह जूदेव के द्वारा १६१३ ई० में इसे पुनः बनाया गया जिसका अधिकांश भाग ध्वस्त करके औरंगजेब के द्वारा १६६९ ई० में मस्जिद के द्वारा अवैध कब्जा कर लिया गया, जिसका संघर्ष आजतक जारी है।

भारत की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक संरचना विविधताओं में भरी हुई है। वर्तमान में भारत की पहचान विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्र के रूप में है किन्तु विशेषज्ञों का मानना है कि यहाँ लोकतन्त्र तब तक ही सम्भव है जब तक हिन्दू बहुसंख्यक हैं। यदि अतीत पर दृष्टि डालें तो भारत के टूट कर अलग हुए पाकिस्तान, अफगानिस्तान, बांग्लादेश जैसे देशों में हिन्दू जनसंख्या को पूरी तरह से अथवा अधिकांशतः समाप्त कर दिया गया है और आज उन देशों में लोकतन्त्र अथवा सामाजिक न्याय की स्थिति बहुत ही दयनीय है। भारत में ही पूरे देश की बात न भी करें तो भी जिन प्रान्तों में हिन्दू अल्पसंख्यक हैं, वहाँ संविधान का प्रभाव बहुत क्षीण है। हिन्दुओं के ऊपर आज चार मोर्चों से प्रहार किया जा रहा है - धन के प्रभाव वाली ईसाई मिशनरियाँ, हथियार के प्रभाव वाले इस्लामी गिरोह, वामपन्थ से भटकाए हुए कथित दलित नवबौद्ध और भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूबी हुई संवैधानिक संस्थाएं।

किसी इस्लामी राज्य में संविधान, वामपन्थ और ईसाईयत या बौद्धों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। ऐसे ही किसी वामपन्थ शासित क्षेत्र में बौद्ध, ईसाई अथवा इस्लाम की स्थिति अच्छी नहीं है। भारत में इन सबों का एकमात्र शिकार हिन्दू बनता जा रहा है। एक ओर लाखों एकड़ वन्य और संरक्षित भूमि पर अनियन्त्रित चर्च खड़े हो रहे हैं तो दूसरी ओर प्रत्येक प्रमुख स्थान पर नकली मजारों को संजाल

तैयार करके अपने गुप्तचर स्थापित किए जाने लगे हैं। एक ओर वामपन्थ के बहकावे में फ़र्ज़ी एसटी-एससी एक्ट के मुकदमों ने हिन्दुत्व को और भी क्षीण किया है तो दूसरी ओर व्यभिचार और घरेलू हिंसा को बढ़ावा देने वाले अनैतिक कानूनों और उन्हें लागू करवाने के न्यायालयीय दुराग्रह ने 'परिवार एवं समाज' नामक संस्था के अस्तित्व पर भी संकट उत्पन्न कर दिया है।

हाल ही में उत्तरप्रदेश में एक ओर अतिक्रमण हटाने के नाम पर प्रशासन के द्वारा एक हिन्दू परिवार को घर में ही जिन्दा जलाकर मारने की घटना होती है किन्तु दूसरी ओर हल्द्वानी में बड़े हज़ारों अवैध मुस्लिम परिवारों के ऊपर कार्रवाई करने में प्रशासन और न्यायपालिका के हाथ कांपने लगते हैं। बंगाल में रोज जलते मरते हिन्दुओं की प्राथमिकी भी नहीं लिखी जाती, न्यायाधीश स्वयं को मामले की सुनवाई से अलग कर लेते हैं किन्तु दूसरी ओर आतंकवादियों के लिए आधी रात को भी अदालत खुल जाती है। आत्मरक्षा की बात करने वाली काजल और नूपुर के विरुद्ध तत्काल कानूनी कार्रवाई की जाती है किन्तु मौलाना साद और मदनी के विरुद्ध सरकार कुछ नहीं कर पाती। रोहित वेमुल्ला की आत्महत्या पर प्रधानमन्त्री का हृदय कांपने लगता है किन्तु पालघर के साधुओं की निर्मम हत्या पर एक शब्द नहीं निकलता। ये स्थिति तब है, जब हिन्दू बहुसंख्यक हैं और कथित रूप से हिन्दूवादियों की ही सरकार भी है।

हिन्दुओं के मठ-मन्दिरों की सम्पत्ति पर अलग अलग आयोगों के माध्यम से सरकारों ने कब्जा कर रखा है और मन्दिरों की आय का एक बड़ा भाग हिन्दू विरोधी कार्यों में बलपूर्वक लगाया जाता है किन्तु चर्च और वक़्फ़ बोर्ड को एक प्रकार से राष्ट्र में कहीं भी अघोषित रूप से कब्जा करने का अधिकार भी दे रखा है। भारत में हिन्दुओं के अतिरिक्त कोई दूसरा समाज लोकतन्त्र का समर्थक नहीं है, भारत के मूल स्वरूप का समर्थक नहीं है। पंजाब, कश्मीर, बंगाल, नागालैंड, केरल, तमिलनाडु आदि में हिन्दुओं के अल्पसंख्यक होने से राष्ट्रविखण्डन तक की स्थिति आ गयी है। यदि कुछ दशकों में ये प्रान्त भारत से टूट कर अलग हुए तो वहाँ से भारतीयता का नामोनिशान मिट जाएगा, साथ ही वे प्रान्त भी वैश्विक रणनीति के सापेक्ष स्वतन्त्र शासन करने में समर्थ नहीं हो पाएंगे। पाकिस्तान आदि के समान अव्यवस्था के कारण असन्तुष्ट राष्ट्र बनकर या तो किसी के गुलाम बनेंगे अथवा आतंकवाद के पोषक। भारत में परजीवियों के समान रहने वाले गैर-हिन्दू समुदायों में भारत और अपने पन्थ को अलग अलग रखकर देखने की प्रवृत्ति प्रबल है। हिन्दू भारत और धर्म को एक ही समझकर व्यवहार करता है अतः उसका औदार्य ही भारत की सहिष्णुता और शत्रुबोधहीनता हेतु है।

भारत में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ 'हिन्दूविरोध' हो गया है। दुःखद यह है कि हिन्दूविरोध का एक कुकर्म हिन्दुओं के ही द्वारा अधिक कराया जा रहा है। जनसंख्या नियन्त्रण के नाम पर हिन्दुओं को कहा जा रहा है कि अधिक बच्चे होने पर सरकारी नौकरी नहीं मिलेगी और इस कारण हिन्दू परिवार सिमटते जा रहे हैं। वहीं दूसरी ओर इस्लाम के सदस्य सरकारी नौकरी चाहते ही नहीं। वे स्वरोजगार करके अपना जीवनयापन कर रहे हैं और जनसंख्या बढ़ाकर सीधे सरकार और सत्ता पर पहले वोट, फिर हथियार के माध्यम से नियन्त्रण करने की योजना में हैं, जिसका उल्लेख कई बार सरकारी सुरक्षा एजेंसियों द्वारा किया जाता रहा है। ऐसे में कई शताब्दियों से अपने अस्तित्व का बाह्यान्तरिक युद्ध लड़ते आ रहे हिन्दू समाज के मध्य भारत को हिन्दू राष्ट्र बनाने की मांग उठती आ रही है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रमुख मोहन भागवत और उनके सहयोगी हिन्दू राष्ट्र की अपनी नयी परिभाषा बनाकर हिन्दुओं को निर्बल करने का प्रयास करते रहे हैं। विश्वास जीतने के नामपर राष्ट्रीय मुस्लिम मंच और ईसाई मंच बनाकर, मदरसों को अनुदान दिलाकर, भगवान् श्रीरामजी को 'इमाम-ए-हिन्द' कहकर, हिन्दू धर्मशास्त्रों को बदलने की बात और हिन्दू मुसलमान का डीएनए समान है, ऐसा कहकर उन्होंने अपना नया ही शास्त्रविरुद्ध हिन्दुत्व का राग प्रारम्भ कर दिया है जो मूलतः हिन्दुओं से हिन्दुत्व ही समाप्त करके उन्हें एक एनजीओ का गुलाम बना देगा।

इन सबों के मध्य पुरी पीठ के शंकराचार्य स्वामिश्री निश्चलानन्द सरस्वती ने भारत के साढ़े तीन वर्षों में हिन्दू राष्ट्र बनने की घोषणा की है और इस आलोक में देश भर में उनके अनुयायी अधिवेशनों का भी आयोजन कर रहे हैं। वैसे साढ़े तीन वर्ष की अवधि की बात 2021 में भी हुई, 2022 में भी और अब 2023 में भी साढ़े तीन ही वर्ष कहा गया है, जिससे इस योजना के वास्तविक काल का बोध होना कठिन है। पुनः, चूंकि हिन्दुओं में एकमात्र शांकर सम्प्रदाय या पीठ ही नहीं हैं तो अन्य सम्प्रदाय और सिद्धान्तों के आलोक में उस हिन्दू राष्ट्र में व्यक्तिवाद और शास्त्रवाद के मध्य वरीयता किसे देंगे, यह भी अनुत्तरित ही है। ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में शृङ्गेरी पीठ के द्वारा अभिषिक्त स्वामिश्री अविमुक्तेश्वरानन्द सरस्वती ने 'हिन्दूराष्ट्र' शब्द को ही आपत्तिजनक बताया है और कहा कि हिन्दूराष्ट्र तो रावण एवं कंस का भी था, अतः हमें रामराज्य चाहिए। ज्योतिष्पीठ के इस वक्तव्य के विरुद्ध पुरी पीठ ने वक्तव्य दिया कि

अविमुक्तेश्वरानन्द अभी बालक हैं अतः उन्हें सीखना चाहिए, सिखाना नहीं। हिन्दू राष्ट्र में ही रामराज्य हो सकता है, अतः दोनों भिन्न नहीं हैं। कुल मिलाकर परम्परागत शास्त्रसिद्धान्त के विरोधी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के हिन्दू राष्ट्र तथा शास्त्रीयता के पक्षधर शांकरपीठों के हिन्दूराष्ट्र अथवा रामराज्य की परिकल्पना के मध्य कोई सामञ्जस्य बनता दृष्टिगत नहीं हो रहा है।

भारत में लोकतन्त्र हिन्दू बहुल स्थिति में ही बना रह सकता है। यद्यपि वर्तमान लोकतन्त्र से हिन्दुओं को ही बहुत हानि है किन्तु हिन्दुओं के बहुसंख्यक होने पर भारत में लोकतन्त्र और शेष पन्थ भी रहेंगे किन्तु हिन्दुओं के क्षीण होते ही भारत एक इस्लामी या ईसाई प्रान्त बन जाएगा जिसमें शेष का कोई स्थान नहीं होगा। हिन्दुओं की वृत्ति विस्तारवाद की नहीं, उपेक्षावाद की है। कई बार तो उन्हें हिन्दू होने पर भी अपराधी जैसा बोध कराया जाता है। विभिन्न सिनेमा और पत्रिकाओं के द्वारा हिन्दुओं की मान्यताओं, रीतियों, ग्रन्थों और आराध्यों पर प्रहार किया जाता रहा है। प्रशासन, राजनीति एवं न्यायपालिका में नियुक्त हुए हिन्दू भी हिन्दुओं के लिए कम और अन्य के हितों में अधिक कार्य करते हैं किन्तु अन्य समुदाय के अधिकारी भी हिन्दुओं के ही विरुद्ध अपने समुदाय का ही हित करने में लगे रहते हैं। ऐसे में हिन्दू राष्ट्र की मांग और भी प्रबल हो जाती है। आगामी कुछ दशकों में भारत अपने राजनैतिक और जनसांख्यिकी वैषम्य के कारण भीषण गृहयुद्ध में पड़ने वाला है जिसमें एक ओर शास्त्रवादी हिन्दू होंगे और दूसरी ओर शेष सभी। धर्म, मज़हब, रिलीजन, पन्थ आदि के मध्य जो भेद है, उसे स्पष्ट किए बिना सामाजिक सुरक्षा की कल्पना नहीं की जा सकती। भारत एक हिन्दू राष्ट्र के रूप में ही विश्व के द्वारा देखा और जाना जाता है। सबों के हित में होगा कि यह उसी रूप में शासित एवं प्रभावी भी बने।

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु

(ये लेखक के निजी विचार हैं जिनका प्रकाशक संस्था से कोई सम्बन्ध नहीं है)

प्रश्नकर्ता (१) श्रीरामकृपाल त्रिपाठीजी - श्रीरामजी ने शबरी के जूठे फल खाए हैं, ऐसा किसी रामायण में वर्णित है ?
प्रश्नकर्ता (२) हृतिक मिश्र - शबरीजी ब्राह्मणी थीं अथवा भीलनी थीं ?

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु -

शबरीप्रसङ्गपरपक्षखण्डनम्

श्रीरामकथा में महनीयता की पराकाष्ठा माता शबरी ब्राह्मणी थीं अथवा भीलनी, इसपर विगत कुछ दशकों से विवाद छिड़ा हुआ है। पूर्वकाल के स्वामिश्री करपात्रीजी एवं वर्तमानकाल के पण्डित श्रीगङ्गाधर पाठकजी ने विभिन्न युक्तियों से माता शबरी को ब्राह्मणी सिद्ध करने का प्रयास किया है तथा इनके समर्थक भी ऐसा ही करते आ रहे हैं। इस सन्दर्भ में कुछ मुख्य बिन्दु इनके द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं, जिनके आधार पर अतिमीमांसा करके शबरीजी को ब्राह्मणी सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है। उनका पक्ष विस्तार से रामायण मीमांसा एवं श्रीपाठकजी के निबन्धों में उल्लिखित है, अतः यहाँ मात्र उनका सार उद्धृत किया जाता है।

पूर्वपक्ष (स्वामिश्री करपात्रप्रभृति मनीषीगण) - शबरीजी के लिए भगवान् वाल्मीकि ने तापसी और श्रमणा आदि शब्दों का प्रयोग किया है अतः इस शब्दों से उनका ब्राह्मणी होना सिद्ध है। अनेक टीकाकारों ने श्रमणा का अर्थ तापसी ही लिखा है तथा शम्बूक के प्रसङ्ग से सिद्ध है कि उस काल मे शूद्र हेतु तपस्या विहित नहीं थी, अतः शबरीजी का ब्राह्मणी होना सिद्ध है।

उत्तरपक्ष (निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु) - श्रमणा का अर्थ मात्र तापसी ही नहीं, सुदर्शना भी है, ऐसा कोषग्रन्थों में ही वर्णन है। श्रमणीम्- तापसीम्; 'श्रमु तपसि खेदे च'। इस सूत्र से श्रमणी या श्रमणा को तपस्विनी बताया जा सकता है किन्तु शबरीजी का नाम शबरी नहीं, "श्रमणा" था। वे शबरकुल में उत्पन्न तपस्विनी थीं, इसमें शबरी जातिवाचक और श्रमणा व्यक्तिवाचक संज्ञा है ऐसा हम निम्न प्रमाणों से समझते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता की टीका में अठारहवें अध्याय के -

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥

श्लोक की व्याख्या में भगवान् वेदान्तदेशिक वेङ्कटनाथ स्वामी स्पष्ट करते हैं -

विदुरादिवज्जातिस्मरेषु जन्मान्तरप्रारब्धपरविद्याप्रतिसन्धायिषु स्वकर्मणामकरणनिमित्तप्रत्यवायपरिहारार्थत्वं साक्षात्संसिद्धियोग्यत्वं द्रष्टव्यम्। यथोक्तं भगवता शौनकेन -
धर्मव्याधादयोऽप्यन्ये पूर्वाभ्यासाज्जुगुप्सिते।
वर्णावरत्वे सम्प्राप्ताः संसिद्धिं श्रमणी यथा॥ (विष्णुधर्म)

यहाँ धर्मव्याध, विदुर और श्रमणी नाम की सिद्धा तापसी का उदाहरण देकर उन्होंने यह सिद्ध किया है कि वर्ण की दृष्टि से हीनजन्मा होकर भी उन्होंने पूर्वार्जित संस्कार से ब्रह्मसिद्धि को प्राप्त कर लिया था।

कथं तर्हि विदुरधर्मव्याधप्रभृतीनां ब्रह्मज्ञत्वम्। पूर्वजन्माधिगतज्ञानाप्रमोषात् "धर्मव्याधादयोऽप्यन्ये पूर्वाभ्यासाज्जुगुप्सिते। वर्णावरत्वे संप्राप्तास्संसिद्धिं श्रमणी यथा॥" इति हि स्मरन्ति ब्रह्मज्ञानमपि तेषाम्। हीनजातिषु जननं तु प्रारब्धबलात्।

महान् अद्वैतीस आचार्य अप्पय दीक्षित जी अद्वैतमञ्जरी - न्यायरक्षामणि में अपशूद्राधिकरण के अन्तर्गत श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात् स्मृतेश्च (०१/०३/३८) की व्याख्या में शबरीजी को विदुर, धर्मव्याध आदि के उदाहरण के साथ अवरवर्ण का ही मानते हैं। इस प्रमाण को शङ्कराचार्यजी के अनुयायी मानेंगे कि नहीं ? यहां भी शबरीजी के ब्राह्मणी होने का निषेध स्पष्ट मिल जाता है। यह श्लोक विष्णुधर्म में शौनकमुनि के द्वारा कहा गया है, जिसे स्वामिश्री वेदान्तदेशिकजी ने भी उद्धृत किया है।

इसमें श्रमणा के नाम से शबरीजी का ही उल्लेख समझना चाहिए। श्रीभवभूतिकृत उत्तररामचरितम् एवं महावीरचरितम्, दोनों पर स्वामिश्री वीरराघवाचार्य जी की टीका है। उत्तररामचरितम् में स्वयं लक्ष्मण जी कहते हैं कि "तत्र श्रमणी नाम सिद्धा शबरतापसी।" इस कथन का खण्डन वीरराघवाचार्य जी ने नहीं किया है जिससे सिद्ध है कि आचार्य भवभूति के समय भी उनकी दृष्टि से शबरीजी शबरजाति की ही मान्या थीं। महावीरचरितम् में स्वयं शबरीजी बताती हैं -
अहं हि श्रमणा नाम सिद्धा शबरतापसी।
मतङ्गाश्रमवास्तव्या रामान्वेषिण्युपागता॥

इसकी टीका में स्वामिश्री वीरराघवाचार्य जी लिखते हैं - अहं हीति। शबरी चासौ तापसी चेति विग्रहे कर्मधारयः।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी विनय पत्रिका में स्पष्ट लिखा - गीध को कियो सराध, भीलनी को खायो फल, सोऊ साधु - सभा भलीभाँति भनियत है।

दूसरी बात, शम्बूक की तपस्या और शबरीजी की तपस्या को एक ही समझना वैसी ही अज्ञता है, जैसा कोई हलाला और गर्भाधान संस्कार के मध्य अभेदबुद्धि रख बैठे। हमने अपने पूर्व लेखों में इसपर विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया है। महाभारततात्पर्यनिर्णय में जगद्गुरु मध्वाचार्य जी ने स्पष्ट किया कि शम्बूक पूर्वजन्म में जङ्घासुर नामक राक्षस था जो कल्पायु होकर अगले जन्म में शम्बूक के नाम से सदेह रुद्रत्व और पार्वतीशत्व की सिद्धि हेतु लोकसंहारक तप कर रहा था। कौशिक रामायण में महर्षि विश्वामित्र ने स्पष्ट किया कि शम्बूक श्रीरामजी के राज्य में मुख्य स्वास्थ अधिकारी था, जो दुर्भावना के कारण स्वकर्मत्यागपूर्वक उग्र तपस्या करने चला गया था जिसके फलस्वरूप महामारियों के कारण प्रजा विनष्ट होने लगी। आनन्द रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने स्पष्ट किया कि शम्बूक की उस अव्यवस्थोत्पादिनी तपस्या के कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, लुहार, तेली आदि सभी मृत्यु को प्राप्त होने लगे थे फलतः भगवान् ने उसका वध किया और उसके बाद भी दिव्य शरीर और लोक प्रदान किया। पद्मपुराण के प्रमाण से भी शम्बूक की भगवतत्कृपा से ऊर्ध्वगति सिद्ध है। जगद्गुरु वल्लभाचार्य जी ने श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के श्लोक "अशास्त्रविहितं घोरं ...

विद्ध्यासुरनिश्चयान्" की व्याख्या में आसुरी तपस्या को समझाने हेतु शम्बूक का ही उदाहरण दिया है।

वहीं शबरीजी की तपस्या श्रीमद्भगवद्गीता के ही सत्रहवें अध्याय में वर्णित सदाचारपूर्वक भक्तियोगाश्रित दैहिक, वाचिक एवं मानसिक तपस्या थी, जिसमें न कोई अशास्त्रीयता सिद्ध होती है और न शम्बूकादिवत् कोई दुष्प्रभाव ही लक्षित होता है। मात्र तापसी अथवा तपस्विनी शब्द आ जाने से शबरीजी को ब्राह्मणी घोषित कर देना वैसा ही अज्ञान है, जैसा कोई व्यक्ति किसी कश्यप अथवा कर्दम नामधारी व्यक्ति को प्रजापति घोषित कर दे। स्ववर्णगत सदाचार का अतिक्रमण करके जो अविधिगत तपस्या विप्रोचितानुकरण से की जाती थी, वह शूद्रों के लिए निषिद्ध थी, न कि सदाचरण वाली विधिवाक्यगत तपस्या। अब इसके सन्दर्भ में हम सर्वप्रथम श्रीवाल्मीकीयरामायण से ही प्रमाण प्रस्तुत करेंगे।

महर्षि वाल्मीकिकृत आर्ष रामायण और आनन्द रामायण, दोनों में श्रवण कुमार का प्रसङ्ग वर्णित है। श्रीवेदव्यासकृत अध्यात्म रामायण में भी यह वृत्तान्त उद्धृत है। राजा दशरथ के द्वारा मारे गए श्रवण कुमार ने यह स्पष्ट किया है कि वे ब्राह्मण नहीं, अपितु वैश्य पिता और शूद्रा माता से उत्पन्न सन्तान हैं, अतः राजा दशरथ को ब्रह्महत्या नहीं लगेगी। वाल्मीकीय रामायण के अयोध्याकाण्ड में श्रवण कुमार ने स्वयं कहा है -

न द्विजातिरहं राजन् माभूत्ते मनसो व्यथा।
शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो जनपदाधिप॥

श्रवण कुमार ने स्वयं के लिए "तपस्या में स्थित वैश्य" शब्द का प्रयोग किया है।

ब्रह्महत्या स्पृशेन्न त्वां वैश्योऽहं तपसि स्थितः।
पितरौ मां प्रतीक्षेते क्षुत्तृड्भ्यां परिपीडितौ॥
(अध्यात्म रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग - ०७, श्लोक - २७)

यहाँ श्रवण कुमार ने स्वयं को तपस्वी और वैश्य दोनों बताया है अतः मात्र तापसी शब्द से शबरीजी को ब्राह्मणी घोषित कर देना समुचित नहीं है। एक अन्य प्रमाण इसी प्रसङ्ग में वाल्मीकीय रामायण से ग्रहण करें। श्रवण कुमार के पिता ने विलाप करते हुए अपनी शूद्रा भार्या के निमित्त भी तपस्विनी शब्द का प्रयोग किया है -

इमामन्धां च वृद्धां च मातरं ते तपस्विनीम्।
कथं पुत्र भरिष्यामि कृपणां पुत्रगर्धिनीम्॥
(वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग - ६४, श्लोक - ३६)

क्या उपर्युक्त प्रसङ्ग में श्रवणकुमार की माता, जो शूद्रा स्त्री थीं, उनके लिए तपस्विनी शब्द का प्रयोग नहीं आया है ? क्या तपस्विनी शब्द आने से मनीषियों को उन्हें भी ब्राह्मणी घोषित कर देना चाहिए ?

इतना ही नहीं, वाल्मीकीय रामायण में सैकड़ों स्थानों पर भगवती सीता, कौसल्या एवं यहाँ तक कि तारा के लिए भी तपस्विनी विशेषण का प्रयोग हुआ है। तापसी शब्दमात्र की अतिमीमांसा करके जो आचार्य शबरीजी को ब्राह्मणी सिद्ध करने चले हैं, उन्होंने इसी विशेषण के आधार पर कभी श्रवणकुमार की माता, सीताजी, कौसल्या जी, देवी तारा आदि को ब्राह्मणी समझने की भूल क्यों नहीं की ? अचानक से केवल शबरीजी के ही प्रसङ्ग में उन्हें यह ब्रह्मज्ञान कैसे हो गया कि यहाँ तो तापसी शब्द आया है और शम्बूक को तपस्या के कारण मारा गया था जबकि शबरीजी को नहीं, अतः शबरीजी ब्राह्मणी हो गयीं। अद्भुत ! आचार्यों को ध्यान देना चाहिए कि ब्राह्मण विश्वामित्र विधिपूर्वक लोकहितार्थ यज्ञ कर रहे थे अतः भगवान् ने उनके यज्ञ की रक्षा की। वहीं, ब्राह्मणकुलोत्पन्न रावण ने जब अविधिपूर्वक लोकहिंसार्थ यज्ञ को प्रारम्भ किया तो भगवान् ने स्वयं उसका यज्ञ विध्वंस कराया। वैसे ही अब्राह्मणी शबरीजी शास्त्रविधिपूर्वक तपस्या कर रही थीं, अतः भगवान् ने उनपर अनुग्रह किया जबकि अब्राह्मण शम्बूक ने अशास्त्रीय तपस्या की, अतः भगवान् ने उसका निग्रह किया। आपको तो शबरीजी के प्रसङ्ग तक पहुंचने से पहले ही श्रवणकुमार की शूद्रा माता के लिए आए तपस्विनी शब्द से समझ जाना

चाहिए था कि मात्र इस शब्द का सन्दर्भ देकर किसी को ब्राह्मणी घोषित करना इस विषय में अधीराज्ञता का ही परिचायक है।

"शूद्रातापस्यफलस्वरूपे क्वचिद्रामायणेऽकालमृत्युर्वक्तव्य आसीत्स च नोक्त इति शबरी शूद्रा नेति कश्चित्।" शब्दापशब्दविवेककार ने उक्त शम्बूकव्याजाश्रित भ्रम से शबरी को शूद्रा न मानने का जो कश्चिन्मत प्रस्तुत किया है, वह भी उपर्युक्त युक्तिप्रमाणविलास से निरस्त होता है। अब हम वाल्मीकीय रामायण के अनेकों में से ही कुछ प्रमाण देंगे जहाँ ब्राह्मणातिरिक्तों के निमित्त भी स्त्रीविवक्षा में तपस्विनी शब्द प्रयुक्त है। शबरीजी अरण्यकाण्ड में स्थित हैं, अतः पहले वहीं से ग्रहण करें जहाँ माता कौसल्या के लिए श्रीरामजी ने तपस्विनी शब्द का प्रयोग किया है -

सपुत्रराज्यां सिद्धार्थां मृतपुत्रा तपस्विनी।
उपस्थास्यति कौसल्या कच्चित् सौम्येन कैकयीम्॥

बाद में सीताजी के लिए भी तपस्विनी शब्द आया है -

हृता मृता वा वैदेही भक्षिता वा तपस्विनी।
न धर्मस्त्रायते सीतां ह्रियमाणां महावने॥

तीसरा प्रमाण सुन्दरकाण्ड से ग्रहण करें, जहाँ सीताजी के लिए तपस्विनी शब्द आया है -

अबन्धुर्भक्षिता सीता रावणेन तपस्विनी॥

महाराज दशरथ ने भी देहत्याग के प्रसङ्ग में सीताजी के लिए तपस्विनी विशेषण को सम्बोधित किया है, अयोध्याकाण्ड से देखें -

हा राम रामानुज हा हा वैदेहि तपस्विनि।
न मां जानीत दुःखेन म्रियमाणमनाथवत्॥

युद्धकाण्ड में भी मायासीतावधादि के प्रसङ्ग में सीताजी के लिए तपस्विनी शब्द आया है। अद्भुत बात है कि शबरीजी के प्रसङ्ग से पहले अनेकों बार शूद्रवर्ण की श्रवणमाता, पितृकुलात् वैश्यवर्ण के श्रवणकुमार, क्षत्रियवर्ण की कौसल्या एवं सीताजी के लिए तपस्विनी आदि शब्द आए किन्तु इन सब प्रसङ्गों में आचार्यों को इनके ब्राह्मणत्व का बोध नहीं हुआ। बस, जैसे ही शबरीजी के लिए तापसी और श्रमणा शब्द आ गया, अचानक से सबको बोध हो गया कि शबरीजी को तो ब्राह्मणी सिद्ध करना पड़ेगा।

अब कुछ अन्य ग्रन्थों के भी प्रमाण देखें जहाँ अब्राह्मणी स्त्रियों के लिए भी ऐसे शब्द उद्धृत हैं। कुन्तीदेवी ने महाभारत के आश्रमवासिकपर्व में स्वयं के लिए तापसी शब्द का प्रयोग किया है -

श्वश्रूश्वशुरयोः पादाञ्शुश्रूषन्ती वने त्वहम्।
गान्धारीसहिता वत्स्ये तापसी मलपङ्किनी॥

इसी प्रसङ्ग में आगे पाण्डवों ने भी कुन्तीदेवी के लिए तपस्विनी शब्द का प्रयोग किया है -

दिष्ट्या द्रक्ष्यामि तां कुन्तीं वर्तयन्तीं तपस्विनीम्।
जटिलां तापसीं वृद्धां कुशकाशपरिक्षताम्॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध, अध्याय - १३, श्लोक - ३९ में गान्धारी के निमित्त भी यह सम्बोधन आया है -

नाहं वेद गतिं पित्रोः भगवन् क्व गतावितः।
अम्बा वा हतपुत्रार्ता क्व गता च तपस्विनी॥

अध्याय - ०९, श्लोक - ४८ भी देखें -

ततो युधिष्ठिरो गत्वा सहकृष्णो गजाह्वयम्।
पितरं सान्त्वयामास गान्धारीं च तपस्विनीम्॥

भार्गव और्व महर्षि ने सूर्यवंशी महाराज सगर की रानियों के निमित्त भी तपस्विनी विशेषण का प्रयोग किया है -

षष्टिं पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वेका तपस्विनी।
एकं वंशधरं त्वेका यथेष्ठं वरयत्विति॥
(हरिवंशपुराण, हरिवंशपर्व, अध्याय - १५)

देवी द्रौपदी के चीरहरण का प्रसङ्ग महाभारत के सभापर्व में वर्णित हैं, वहां अनेकों बार उनके लिए तपस्विनी शब्द आया है, यथा -

आसादितमिदं घोरं तुमुलं रोमहर्षणम्।
पाञ्चालीमपकर्षद्भिः सभामध्ये तपस्विनीम्॥
अथवा
तां वेपमानां सव्रीडां प्रलपन्तीं स्म पाण्डवान्।
दुःशासनः सभामध्ये विचकर्ष तपस्विनीम्॥

सत्यभामाजी के कन्यादान के प्रसङ्ग में भी उनके निमित्त तपस्विनी शब्द आया है -

सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां व्रतिनी च दृढव्रता।
तथा तपस्विनी चैव पिता कृष्णाय तां ददौ॥
ब्रह्माण्डपुराण, मध्यभाग, अध्याय - ७१ | वायुपुराण में भी है)

जब महर्षि पराशर ने उपरिचरवसु के वीर्य के माध्यम से अद्रिका मत्स्याप्सरा की गर्भप्रसूता एवं कैवर्तदाशराज के द्वारा पालिता मत्स्यगन्धा सत्यवती के गर्भ में वेदव्यासजी का भ्रूणाधान करने का विचार करके कुहासे की सृष्टि की, उस समय सत्यवती के लिए भी तपस्विनी शब्द ही आया, महाभारत के आदिपर्व में ही वर्णन है -

दृष्ट्वा सृष्टं तु नीहारं ततस्तं परमर्षिणा।
विस्मिता साभवत्कन्या व्रीडिता च तपस्विनी॥

परीक्षित् के प्राणरक्षार्थ आतुर उत्तरा के निमित्त तपस्विनी शब्द महाभारत के आश्वमेधिकपर्व में देखें -

सैवं विलप्य करुणं सोन्मादेव तपस्विनी।
उत्तरा न्यपतद्भूमौ कृपणा पुत्रगृद्धिनी॥

भीष्मपितामह के वध की इच्छा रखने वाली काशिराजपुत्री अम्बा के निमित्त भी तापसी शब्द का प्रयोग महाभारत के उद्योगपर्व में दृष्ट है -

तां देवो दर्शयामास शूलपाणिरुमापतिः।
मध्ये तेषां महर्षीणां स्वेन रूपेण तापसीम्॥

इसी प्रसङ्ग में आगे वही अम्बा जन्मान्तर में शिववरदानगौरवात् द्रुपदपुत्री शिखण्डिनी बनी (बाद में यक्षकारुण्य से महारथी शिखण्डी),

उस समय भी उसके लिए तपस्विनी शब्द ही आया -

एवं संभाषमाणौ तु दृष्ट्वा शोकपरायणौ।
शिखण्डिनी तदा कन्या व्रीडितेव तपस्विनी॥

प्रमाण तो इतने हैं कि सैकड़ों पृष्ठ केवल प्रमाण से भर जाएंगे किन्तु मेरे द्वारा बारह ऐतिहासिक पात्रों के प्रमाणों से प्रबुद्धों को समझना चाहिए कि क्या मात्र तापसी या तपस्विनी शब्द के कारण मनीषीजन कौसल्या, सीता, सगरभार्या, द्रौपदी, अम्बा, शिखण्डिनी, कुन्ती, गान्धारी, उत्तरा, सत्यवती, सत्यभामा और यहाँ तक कि श्रवणकुमार की शूद्रा माता तक को ब्राह्मणी सिद्ध करने की भूल करेंगे, जैसा वे शबरीजी के प्रसङ्ग में कर बैठे हैं ?

पूर्वपक्ष - शबरीजी ने भगवान् को अपना जूठा फल खिलाया, यह बात भी अप्रामाणिक है क्योंकि मनुस्मृति आदि ग्रन्थों के आधार पर किसी को उच्छिष्ट खिलाना निषिद्ध है। फिर स्वयं शबरीजी ऐसा अनर्थ कैसे कर सकती हैं तथा शबरीजी यदि करना भी चाहें तो श्रुतिसेतुपालक मर्यादापुरुषोतम श्रीरामजी ऐसा कैसे कर सकते हैं ? अतः यह सब बात समुचित नहीं है। पद्मपुराण आदि में उद्धृत "परीक्ष्य परिभक्ष्य च" आदि वचनों का अर्थ जूठा खिलाने से नहीं, अपितु वृक्ष के कुछ फलों का स्थालीपुलाकवत् परीक्षणार्थ सञ्चय करके भक्षण करने और उसके बाद पुनः उनके पक्व होने का बोध प्राप्त करके स्वच्छ सङ्ग्रह करने से समझना चाहिए।

उत्तरपक्ष - मनुस्मृति आदि में उच्छिष्टभक्षणादि का निषेध सदाचारबोधक अवश्य है और सामान्य स्थिति में अनुपालनीय भी है किन्तु भगवान् श्रीरामजी मात्र मनुष्यरूप में आ जाने से अपना ऐश्वर्य छोड़ देते हैं, ऐसा नहीं है। 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः' तथा 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ ईश्वरः' आदि वचनों से ईश्वर में कर्मानुबन्धनिर्लिप्तता की स्वाभाविक संसिद्धि है। जो भगवान् 'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः' का उद्घोष करके अपने प्रपन्नों का पापनाश करते हैं, जिनके बोधमात्र से कर्मप्रारब्ध क्षीण होते हैं - 'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे' तथा स्वेच्छा से जो मृत वानरों को, विप्रपुत्रादि का पुनर्जीवन करवा सकते हैं, ऐसे परब्रह्म श्रीरामजी उच्छिष्टभक्षण के दोष से ग्रस्त हो जाएंगे, सो ऐसी कथा प्रामाणिक नहीं, यह सोचना हास्यास्पद ही है।

ज्यादा मीमांसक बनने से बहुत समस्या हो जाती है। मीमांसकशिरोमणि श्रीकुमारिलभट्ट ने तन्त्रवार्त्तिक में नास्तिकों का मुँह बन्द करने के लिए इन्द्र-अहिल्या प्रसङ्ग के विषय में कह दिया कि भौतिक सूर्य ही इन्द्र है और रात्रि ही अहिल्या है। प्रतिदिन सूर्य उदित होकर रात्रि का क्षयात्मक जरण करते हैं, यही इन्द्र का अहिल्या से जारकर्म करना कहलाता है। अतः इन्द्र द्वारा परस्त्रीव्यभिचार नहीं हुआ –

"समस्ततेजाः परमैश्वर्यनिमित्तेन्द्रशब्दवाच्यः सवितैवाहनि लीयमानतया रात्रेरहल्याशब्दवाच्यायाः क्षयात्मकजरणहेतुत्वाज्जीर्यत्यस्मादनेनैवोदितेनेत्यादित्य एवाहल्याजार इत्युच्यते न तु परस्त्रीव्यभिचारात्।"

जबकि परम्परा से इन्द्र-अहिल्या का इतिहास क्या है, उसके बाद इन्द्र का सहस्रभगवान् होना, प्रायश्चित्त, अहिल्या का उद्धार आदि सब कुछ एकदम स्पष्ट ही है। गौतम ऋषि की पत्नी से व्यभिचार सिद्ध ही है।

अतः इस अंश में श्रीकुमारिलभट्ट के कथन को "सत्यसहिष्णुता की क्रमिक अभिव्यक्ति" हेतु ही कहना होगा। दुराग्रह करके "न तु परस्त्रीव्यभिचारात्" को ही उस प्रसङ्ग का अन्तिम सत्य कहने वाले असाम्प्रदायिक मूर्ख ही कहलाएँगे।

पूर्वपक्षी नया प्रलाप लाए हैं - "प्रमाणविरुद्ध आख्यायिका होती है गुणवाद।" गुणवाद कहाँ होता है ? जहाँ "आदित्यो यूपः" इस प्रकार प्रमाण से स्पष्ट विरोध हो। आदित्य और यूप को एक ही बताने वाला यह कथन प्रमाणविरुद्ध है, क्योंकि आदित्य और यूप में भेद सिद्ध है। परन्तु किस प्रमाण से यह स्पष्ट बोध हुआ कि श्रीराम ने शबरी के जूठे फल कभी नहीं खाये ? जो घटना तुम्हारे मत में कभी हुई ही नहीं, उसके विरुद्ध कौन सा प्रमाण मिल जाएगा ?

जो "नहीं हुआ", उसे अभावप्रमाण से अघटित सिद्ध किया जाता है, प्रमाण के विरोध से अघटित सिद्ध नहीं किया जाता। जैसे, कोई कहे कि श्रीराम का सिर काटकर रावण ने उनकी खोपड़ी में खीर बनाकर भोजन किया। तब उस व्यक्ति से कहा जाए कि इसका प्रमाण दो। वह

कहे, मेरे पास इसका कोई प्रमाण नहीं है। तब प्रमाण का अभाव होने से कहा जायेगा कि अभावप्रमाण से सिद्ध होता है कि ऐसा कुछ नहीं हुआ। श्रुति स्पष्ट कहती है - अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥ श्रीमद्भगवद्गीता में भी वर्णन है - गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते। अथवा अठारहवें अध्याय में ही देखें -

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥

जिस ब्रह्म का बोध हो जाने मात्र से व्यक्ति कर्ताभिमानविरहित होकर शुभाशुभकर्म से मुक्त हो जाता है, वह ब्रह्म स्वयं उच्छिष्टभक्षण के दोष से लिप्त हो जाएगा, यह सोचना अज्ञता ही है।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसयासङ्घैः।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः॥
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः॥
(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय - ११, श्लोक - २६-२७)

भगवान् शङ्कराचार्य जी कहते हैं - केचित् मुखानि प्रविष्टानां मध्ये विलग्नाः दशनान्तरेषु मांसमिव भक्षितं संदृश्यन्ते उपलभ्यन्ते चूर्णितैः चूर्णीकृतैः उत्तमाङ्गैः शिरोभिः।

इस प्रकार जो परब्रह्म लोकभक्षण कर सकते हैं, पूरे विश्व को आहारवत् स्वोदरस्थ कर सकते हैं, उनमें उच्छिष्टभक्षण का दोषारोपण सम्भावित करना मूर्खता ही समझता हूँ। देवी यशोदा के पास मृत्तिकाभक्षण आदि लोकविरुद्धकृत्य करके भी भगवान् दोषयुक्त नहीं होते हैं। जब भगवान् की ऐसी लीलाएं होती हैं तो रासलीला, गोपीवस्त्रापहरण आदि प्रसङ्ग को रामभद्राचार्य जैसे व्यक्ति अनर्थप्रयोग से विकृत व्याख्या करते हैं अथवा प्रक्षिप्त बताते हैं किन्तु स्वामिश्री करपात्रीजी जैसे लोग 'तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा' आदि उक्तियों से शास्त्र की रक्षा करते हैं। आश्चर्य है कि शबरीजी के प्रसङ्ग में स्वामी करपात्रीजी, पण्डित गङ्गाधर पाठकजी अथवा इनके इस प्रसङ्ग में समर्थकों को 'तेजीयसां न दोषाय' विस्मृत हो जाता है और मनुस्मृति का स्मरण हो आता है। 'नापवस्त्रां समीक्षेत' के आश्रय से कोई गोपीवस्त्रापहार पर प्रहार करे तो उसके परिहार के निमित्त 'तेजीयसां न दोषाय' इन्हें स्मरण आ जाता है किन्तु इस प्रसङ्ग में स्मरण नहीं आता।

अब इसपर कुछ लोग यह भी कहेंगे कि भगवान् श्रीरामजी ने 'मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं' के अनुसार आर्यव्रतशीलानुसार मर्यादापुरुषोत्तम का अवतार लिया था, अतः श्रीकृष्णावतार की अपेक्षा उनके लिए व्यवहारसन्तुलन विशेष अपेक्षित है। इसमें हम कहेंगे कि भगवान् ने प्रत्येक कृत्य और लीला को 'मनुष्यों ! तुम भी ऐसा ही करना', इस भाव से नहीं किया है। क्या उन्होंने यह कहा कि मैंने धनुषभङ्ग करने के बाद विवाह किया है, मैंने निषादराज को गले लगाया है, मैंने जटायु का भी श्राद्ध किया है, मैंने समुद्र पर भी सेतुबन्धन किया है, मैंने स्वर्गमृग का भी संहार किया है, और मर्यादापुरुषोत्तम तो मैं हूँ ही, अतः हे मनुष्यों ! तुम भी विवाह धनुषभङ्ग के बाद ही करना, निषादों को गले लगाते रहना, गिद्धों का श्राद्ध करते रहना, समुद्र पर पुल बांधते रहना, मृगों का शिकार करते रहना ... !

तन्त्रवार्तिक में सदाचारप्रामाण्यनिरूपण प्रकरण में श्रीकुमारिलभट्ट ने भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में कहा–

"येन ह्यन्यत्रैवमुक्तम्–

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ इति।
स कथं सर्वलोकादर्शभूतः सन् विरुद्धाचारं प्रवर्तयिष्यति।"

इन वाक्यों से तो उनके मत में श्रीकृष्ण भी मर्यादापुरुषोत्तम ही सिद्ध हो गए। अब रासलीला आदि का रक्षण इसके आलोक में आप जिस प्रकार करेंगे, उसी प्रकार शबरीप्रसङ्ग का कर लें। भगवान् का कौन सा चरित्र लोकशिक्षणार्थ है और कौन सा चरित्र ऐश्वर्यप्रकाशनार्थ है, इसका विवेकदृष्टि से समीक्षण किए बिना शास्त्रतात्पर्य समझ में नहीं आ सकता है। ऐश्वर्यप्रकाशनार्थ में 'तेजीयसां न दोषाय' का नियम लगता है और लोकशिक्षणार्थ में 'यद्यदाचरति श्रेष्ठः' का नियम लगता है।

अब यदि स्मार्त मर्यादा की ही बात करें तो जब श्रीरामजी ने क्षत्रिय होकर ब्राह्मणी गौतमपत्नी अहल्या का चरणों से स्पर्श किया तो उनका मर्यादापुरुषोत्तमत्व आर्यव्रतशीलधर्म कैसे सुरक्षित रह गया ? गौतममुनि ने तो शापमुक्ति हेतु यही विधान निश्चित किया था -

यदा त्वदाश्रयशिलां पादाभ्यामाक्रमिष्यति।
तदैव धूतपापा त्वं रामं सम्पूज्य भक्तितः॥
(अध्यात्म रामायण, बालकाण्ड, सर्ग - ०५, श्लोक - ३१)

महर्षि विश्वामित्र ने भी ऐसा ही निर्देश दिया था -

तव पादरजःस्पर्शं काङ्क्षते पवनाशना।
आस्तेऽद्यापि रघुश्रेष्ठ तपोदुष्करमाश्रिता॥
(अध्यात्म रामायण, बालकाण्ड, सर्ग - ०५, श्लोक - ३४)

पुनः भगवान् श्रीरामजी ने भी ऐसा ही किया। पहले चरणों से स्पर्श किया और शापमुक्त होने पर मूलरूपधारिणी अहल्या को प्रणाम भी किया -

रामः शिलां पदा स्पृष्ट्वा तां चापश्यत्तपोधनाम्।
ननाम राघवोऽहल्यां रामोऽहमिति चाब्रवीत्॥

अहल्यादेवी ने भी भगवान् श्रीरामजी के चरणरज के माहात्म्य का वर्णन करते हुए उन्हें प्रणाम किया है -

अहो कृतार्थास्मि जगन्निवास ते
पादाब्जसंलग्नरजःकणादहम्।
स्पृशामि यत्पद्मजशङ्करादिभि -
र्विमृग्यते रन्धितमानसैः सदा॥
(अध्यात्म रामायण, बालकाण्ड, सर्ग - ०५, श्लोक - ४३)

स्मार्त मर्यादा के इतने बड़े संरक्षक श्रीरामजी ने स्वयं क्षत्रियकुलोत्पन्न होकर जब ब्राह्मणी अहल्या को अपने चरणों से स्पर्श किया तो उनका मर्यादापुरुषोत्तम होना बाधित नहीं हुआ क्या ? अब यदि यहाँ आप यह कहेंगे कि भगवान् परब्रह्म होने से ऐसा करने में समर्थ हैं, अतः दोष नहीं, तो फिर यह बताएं कि अहल्या के शापमुक्त होते ही क्या भगवान् ईश्वरत्व से क्षीण हो गए और अहल्या जी को ही प्रणाम कर बैठे ? और उसके तुरन्त बाद उसका ईश्वरत्व पुनः जागृत हो गया एवं अहल्या जी उन्हें प्रणाम करने लगीं ? अभूतपूर्व ! अद्भुत। अर्थात् जब मन करे, श्रीरामजी को अपने मनोनुकूल क्षत्रिय घोषित कर दो और जब मन करे, ईश्वर बता दो।

वाल्मीकि जी के ही वचनों पर ध्यान दें तो श्रीराम और लक्ष्मण, दोनों को शबरीजी ने पैर पकड़ कर प्रणाम किया है -

तौ च दृष्ट्वा तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः।
रामस्य पादौ जग्राह लक्ष्मणस्य च धीमतः॥
पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद्यथाविधि।
तामुवाच ततो रामः श्रमणीं संशितव्रताम्॥

जब शबरीजी ब्राह्मणी होकर क्षत्रियकुलावतंस श्रीरामजी और लक्ष्मणजी को प्रणाम कर रही थीं तो आपके मर्यादापुरुषोत्तम स्मार्तरक्षक श्रीरामजी क्या कर रहे थे ? इस समय तो पूर्वपक्षी यह कह देंगे कि उन्हें क्षत्रिय समझकर थोड़े ही प्रणाम किया, भगवान् समझ कर किया, अतः दोष नहीं है। मेरे बन्धु ! शबरीजी ने जब अभिवादन के ही समय उन्हें भगवान् के रूप में जान लिया तो भोजन कराने के समय वो भाव अचानक से किस पाताल में जा धंसा ? मतलब आने के समय श्रीरामजी भगवान् हो गए, भोजन के समय क्षत्रिय हो गए और जाते हुए फिर भगवान् हो गए ? अद्भुत ! शबरीजी ने प्रणाम और स्वागत के समय भगवान् समझा और भोजन के समय क्षत्रिय ? अतः वहां पहले मनुस्मृति लागू नहीं थी और भोजन के समय लागू हो गयी और भोजन के बाद तुरन्त निष्प्रभावी भी हो गयी अतः भगवान् शबरीजी को उपदेश करने बैठ गए ? अद्भुत हास्यास्पद कुतर्क है !

अध्यात्म रामायणमें भगवान् ने शबरीजी को नवधा भक्ति का जो उपदेश किया है, उसके ही आश्रय से गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी श्रीरामचरितमानस में लिखा है। श्रौत-स्मार्त्त मर्यादा में कहाँ लिखा है कि क्षत्रिय गृहस्थ किसी ब्राह्मणी को स्वयं की भक्ति का उपदेश कर दे, स्वयं को ईश्वर बताए ? मुक्तिकोपनिषत्, रामरहस्योपनिषद् आदि श्रुतियों और रामगीता आदि स्मृतियों में भी तो श्रीराम ने स्वयं को ईश्वर बताकर ही उपदेश किया है, अपनी भक्ति का उपदेश किया है। तब कहाँ गई सामान्य मनुष्य के लिए लागू होने वाली इनकी तथाकथित श्रौतस्मार्त्त मर्यादा ?

पतित्वा पादयोरग्रे हर्षपूर्णाश्रुलोचना।
स्वागतेनाभिनन्द्याथ स्वासने संन्यवेशयत्॥
रामलक्ष्मणयोः सम्यक्पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः।
तज्जलेनाभिषिच्याङ्गमथार्घ्यादिभिरादृता॥
(अध्यात्म रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग - १०, श्लोक - ०६-०७)

इनकी ब्राह्मणी शबरीजी जब तक क्षत्रिय श्रीराम और लक्ष्मण जी के चरणों में प्रणाम करके, उनका चरण पखारकर चरणोदक ले रही थीं, उस समय तक श्रीराम इन लोगों के लिए सर्वसमर्थ भगवान् थे, बस फलभक्षण के समय अचानक से स्मृति के अनुशासन में आबद्ध मनुष्य बन गए ? क्या इन पूर्वपक्षियों के मत में सामान्य मनुष्य के लिए यह कोई आदर्श श्रौत-स्मार्त्त आचरण है कि स्वयं को ईश्वर बताकर अपनी भक्ति की विधि और अपने धाम की प्राप्ति के मार्ग आदि बताए ? भगवान् को शास्त्र में वर्णित स्वरूप में स्वीकार करने के स्थान पर अब स्वयं ही भगवान् के लिए अपनी कल्पना से एक मर्यादा बना कर उसी में भगवान् को कीलित करने का कुप्रयास किया जा रहा है।

अहल्याजी को चरणों के स्पर्श करने के समय, शबरीजी के द्वारा प्रणाम किए जाने के समय आप श्रीरामजी को भगवान् समझकर इस दोष से मुक्त बताते हैं किन्तु फलभक्षण के समय भगवान् का भगवत्तत्व क्षीण हो जाता है क्या ? ले देकर स्वामिश्री करपात्रीजी के कथन के समर्थन हेतु जो बन पाए, जोड़तोड़ करते रहना ही एकमात्र लक्ष्य बच गया है। आपकी ब्राह्मणी शबरीजी इतने दिनों से क्षत्रिय राम की प्रतीक्षा कर रही थीं या भगवान् राम की ? प्रणाम के समय क्षत्रिय राम को प्रणाम कर रही थीं या भगवान् राम को ? उनकी सद्गति का वरदान क्षत्रिय राम ने दिया या भगवान् राम ने ? मात्र फलभक्षण के ही समय आपको अचानक होश हुआ कि अरे नहीं नहीं, ये तो क्षत्रिय राम हैं, मनुस्मृति के रक्षक हैं और मनुस्मृति के अनुसार तो जूठा खाना मना है, अतः मर्यादापुरुषोत्तम मर्यादा कैसे तोड़ सकते हैं ?

'रामो विग्रहवान् धर्मः' की बात लाकर उच्छिष्टभक्षणखण्डनार्थ धर्मरक्षा की दुहाई देने वाले महानुभाव यह क्यों भूल जाते हैं कि साधारण

धर्म भी भगवान् सूर्य ने भविष्यपुराण में पांच प्रकार के बताए हैं -

वेदधर्मः स्मृतस्त्वेक आश्रमाणां स तत्परः।
वर्णाश्रमस्तृतीयस्तु गुणनैमित्तिको यथा॥

इसमें पुनः एक के भी कई और प्रभेद होते हैं। ये सब तो जीवों के लिए हुए। ईश्वर के लिए धर्म की एकमात्र वही सीमा और परिभाषा नहीं रहती जो हम अपनी लोकदृष्टि से देखते हैं। महानिर्वाणतन्त्र के अनुसार जिस ब्रह्मतत्त्व का चिन्तन करके तद्रूप हो अवधूतगण भौतिक शुद्ध्यशुद्धि से निर्मुक्त हो जाते हैं, वह सर्वव्यापी ब्रह्म स्वयं उच्छिष्ट भक्षण करके दोषयुक्त हो सकता है, ऐसी कल्पना निरर्थक है। वैसे भी भगवान् ने यह तो कहा नहीं कि हम ऐसा कर रहे हैं इसीलिए आज से तुम सब भी इसी कृत्य की नकल करते रहना।

जिसको जो मानना ही नहीं है, वो मानेगा ही नहीं। वस्तुतः श्रीरामजी मर्यादापुरुषोत्तम हैं, ये तो सब मान ही रहे हैं किन्तु मर्यादा की अपनी अपनी परिभाषा बनाकर श्रीरामजी को उसमें व्यवस्थित करने का प्रयास करते हैं। जैसे मर्यादा की जो परिभाषा रामभद्राचार्य ने बनायी, उस अनुसार यह ठान लिया कि गर्भवती पत्नी का परित्याग अमर्यादा है, अतः भगवान् श्रीराम ने सीतानिर्वासन किया ही नहीं। अब वो ठान चुके तो ठान चुके, चाहे सैकड़ों ग्रन्थों को गलत ठहराने की ब्रह्महत्या करनी पड़े लेकिन मानना ही नहीं है। एक अपनी मर्यादा की परिभाषा आर्य समाज भी बनाकर घूम रहा है, जिसके अनुसार सीतारामजी कर्मणा क्षत्रिय थे और सीताजी का विवाह अठारह वर्ष की अवस्था में हुआ, जबकि यह भी अशास्त्रीयता ही है। ऐसे ही शबरीजी को ब्राह्मणी सिद्ध करने हेतु अन्य जनों ने भी मर्यादा भी अपनी परिभाषा बना कर उसमें श्रीरामजी को व्यवस्थित करने का प्रयास किया है, जिसका निराकरण हम अकाट्य शास्त्रीय प्रमाणों से अवश्य ही करेंगे।

शबरीप्रसङ्गशास्त्रपक्षमण्डनम्

शबरीजी के भीलनी होने तथा उनके द्वारा भगवान् के प्रति जूठे फल निवेदित करने एवं भगवान् के द्वारा भक्षण करने की कथा प्रसिद्धरूपतः भक्तशिरोमणि सूरदासजी एवं श्रीनाभाजीकृत भक्तमाल आदि में वर्णित पदों के समन्वय से समझी जा सकती है। अगोचर ब्रह्म भी जिनकी भक्ति के वशीभूत होकर जिनके पास बालकवत् क्रीड़ा करते थे, ऐसे ब्रह्मसिद्धिसंसिद्ध सूरदासजी के वचनों पर अश्रद्धा रखना शोभनीय नहीं है। स्वयं गोवत्सपालापहरणदोषनिवृत्त्यर्थ ब्रह्मदेव ने नाभाजी के रूप में भक्तों का विशद चरित्र जिस भक्तमाल के रूप में वर्णित किया, उसपर अश्रद्धा रखने वाले जन दुर्भाग्यवान् ही हैं। फिर भी, जिन्हें आर्ष ग्रन्थों का ही प्रमाण रुचिकर लगता है, उनके निमित्त हम दुग्धशौक्लवत्तिग्मांशुप्रभावत् सुस्पष्ट प्रमाण भुशुण्डि आदिरामायण के माध्यम से प्रस्तुत करेंगे।

विरोधाभास यह है कि रामायण मीमांसा में स्वामिश्री करपात्रीजी ने स्वयं भुशुण्डि रामायण आदि अनेक ग्रन्थों की प्रामाणिकता को स्वीकार करने के बाद भी शबरीजी के प्रसङ्ग में उसका उल्लेख किए बिना अथवा उसमें वर्णित कथानकों का प्रयोग किए बिना ही घोषणा कर दी कि शबरीजी न तो भीलनी थीं और न ही उन्होंने भगवान् को जूठे फल खिलाए। यह कुछ वैसा ही है, जैसे कोई व्यक्ति बृहस्पति को ग्रह के रूप में स्वीकार तो करे किन्तु नवग्रहों की गणना के मध्य बृहस्पति का कोई उल्लेख किए बिना ही घोषणा कर दे कि आठ ही ग्रह होते हैं। कोई व्यक्ति द्वितीय विश्वयुद्ध के समय परमाणु बमों के अस्तित्व की बात को स्वीकार तो करे किन्तु जापान के ऊपर ऐसा कोई हमला हुआ जिसमें लाखों लोग मरे, इस बात को ही स्वीकार न करे। इस घाव में नमक के रूप में पण्डित गङ्गाधर पाठकजी का लेख भी प्रस्तुत हो गया जिसमें उन्होंने भी भुशुण्डि रामायण की चर्चा तो की, किन्तु इस सन्दर्भ में उसका कोई श्लोक खण्डन या मण्डन में नहीं दिया और भुशुण्डि रामायण के प्रकाशित संस्करण के सम्पादक डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह आदि के वचनों के आश्रय से भुशुण्डि रामायण की प्रामाणिकता को ही एकदेशीय सम्प्रदायोक्त घोषित कर दिया।

क्या ऐसे मनीषियों के लिए यह शोभनीय है कि स्वयं ब्रह्मदेव, महर्षि अगस्त्य एवं श्रीरामजी की बात स्पष्ट शास्त्रीय वाणी की अपेक्षा सम्पादक भगवतीप्रसाद सिंह के निजी मत को अधिक पुष्ट समझा जाए ? ऐसे तो कल कोई इस वृत्ति का अनुसरण करके महावीर मन्दिर, पटना से प्रकाशित सीताराम चतुर्वेदी जी की मारुति टीका वाली श्रीरामचरितमानस की "सम्पादकीय" के आधार पर यह निर्णय

ले सकता है कि हनुमान् जी का शरीर वानर का नहीं था, उसमें कोई पूंछ नहीं थी। डॉ० राधाकृष्णन् की सम्पादकीय को पढ़कर यह धारणा बना सकता है कि श्रीमद्भगवद्गीता वेदव्यासकृत नहीं है अपितु बाद के लोगों ने उसे जोड़ जोड़कर बढ़ा दिया और फिर आर्य समाजी कुविचार के अनुसार स्वमतविरुद्ध श्रीमद्भगवद्गीता के ९०% श्लोकों को ही नकार सकता है। विवेकानन्द के कथन के अनुसार मैक्समूलर को महान् वेदान्ती मान सकता है, श्रीरामशर्मा के कथनानुसार कार्ल मार्क्स को महर्षि मान सकता है, मोहन भागवत आदि के अनुसार शास्त्रों को परिवर्तनीय और वेदों को दो सहस्र ईसापूर्व का लिखित पौरुषेय साहित्य मान सकता है, रोमिला थापर के अनुसार युधिष्ठिर को अशोक का परवर्ती मान सकता है, जयदयाल गोयन्दका के अनुसार श्रीरामनाम और अल्लाह को एक ही मान सकता है, और तो और, पृथ्वी में ही रहने वाले दो अरब लोगों का अनुसरण करते हुए पृथ्वी को चपटी भी मान सकता है।

सम्पादक के मत के आधार पर ग्रन्थ कब से प्रामाणिक या अप्रामाणिक होने लग गए ? दस प्रकार के सम्पादक दस प्रकार की बातें करेंगे, जिसमें शास्त्रीयता को समझना सम्भव नहीं है। दुर्भाग्यपूर्ण है कि भगवतीप्रसाद सिंह के कथन के आधार पर ब्रह्मदेव की वाणी की प्रामाणिकता जांची जा रही है और स्वमतपोषण हेतु कल्पभेद का नाम भी लगाया जा रहा है। कल्पभेद ऐसे लगता है ? कल्पभेद के नाम पर कुछ भी मनमाना बताया जा सकता है तो फिर आपको जैनियों या बौद्धों से ग्रन्थों से क्या समस्या हो जाती है ? श्रीसीतारामजी, श्रीहनुमान् जी के नाम पर जो प्रलाप जैनियों और बौद्धों के ग्रन्थों में मिलते हैं, उन्हें भी कल्पभेद से स्वीकार क्यों नहीं कर लेते ? कल्पभेद वहां लगता है जहाँ दो प्रकार की बातें ऋषिप्रोक्त ही हों, दोनों ही प्रमाण हों। जैसे वेदव्यासकृत अध्यात्म रामायण में श्रीरामजी का अवतार वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईसवें त्रेता में होना वर्णित है जबकि वेदव्यास जी के द्वारा ही लिखित वायुपुराण में चौबीसवें त्रेता का उल्लेख है। ये होता है कल्पभेद। जैसे वेदव्यासकृत श्रीमद्भागवत में श्रीरामजी का कार्यकाल तेरह हजार वर्ष का है तो वेदव्यासकृत श्रीमद्देवीभागवत में ग्यारह हजार वर्षों का। ये पाद्म और सारस्वत का कल्पभेद है। जैसे वाल्मीकिकृत आर्ष रामायण में शत्रुघ्न जी को सुमित्रानन्दन बताया गया जबकि वाल्मीकिजी ने ही आनन्द रामायण में उन्हें कैकेयीनन्दन कहा है। ऐसे लगता है कल्पभेद। अपने मन से कुछ भी जोड़कर कल्पभेद की आड़ में विहित सिद्ध नहीं कर दिया जाता है। सम्पादकों की राय से ग्रन्थों की प्रामाणिकता सिद्ध नहीं करना चाहिए। वाल्मीकि जी ने यदि शबरी के लिए भीलनी शब्द नहीं लिखा तो ब्राह्मणी भी नहीं लिखा। तापसी शब्द तो उन्होंने और अन्य ऋषियों ने भी ब्राह्मणातिरिक्त किनके लिए प्रयुक्त किया है, इसके बारह उदाहरण हम दे चुके हैं। वैसे तो भुशुण्डि आदिरामायण में यह प्रसङ्ग बहुत स्पष्टता से वर्णित है किन्तु विस्तारभय से हम मात्र मुख्य मुख्य श्लोकों को ही प्रस्तुत करेंगे। पहले तो अध्यात्म रामायण के श्लोकों का प्रमाण ग्रहण करें। शबरीजी ने श्रीरामजी के दर्शन होने पर यह बात कही -

तव सन्दर्शनं राम गुरूणामपि मे न हि।
योषिन्मूढाप्रमेयात्मन् हीनजातिसमुद्भवा॥
(अध्यात्म रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग - १०, श्लोक - १७)

हे श्रीराम ! आपका दर्शन हमारे गुरुजनों को भी नहीं हो पाया किन्तु हे अगोचर अनन्त ! मैं हीन जाति में उत्पन्न मूर्ख स्त्री होकर भी आपका दर्शन प्राप्त कर सकी।

शबरीजी की इस बात को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने उत्तर दिया -

श्रीराम उवाच
पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जातिनामाश्रमादयः।
न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम्॥
यज्ञदानतपोभिर्वा वेदाध्ययनकर्मभिः।
नैव द्रष्टुमहं शक्यो मद्भक्तिविमुखैः सदा॥
(अध्यात्म रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग - १०, श्लोक - २०-२१)

श्रीराम ने कहा - पुरुष, स्त्री या इनसे भिन्न (नपुंसकादि) होना, किसी जाति, नाम, आश्रम आदि का होना मेरे भजन में कारण नहीं है, भक्ति ही कारण है। यज्ञ, दान, तपस्या अथवा वेदाध्ययन आदि सत्कर्म करने वाला व्यक्ति भी यदि भक्ति से विमुख हो जाए तो मेरा

दर्शन प्राप्त नहीं कर सकता है।

शबरीजी की मुक्ति होने पर श्रीशिवजी ने निम्न भाव प्रस्तुत किया है -

किं दुर्लभं जगन्नाथे श्रीरामे भक्तवत्सले।
प्रसन्नेऽधमजन्मापि शबरी मुक्तिमाप सा॥
किं पुनर्ब्राह्मणा मुख्याः पुण्याः श्रीरामचिन्तकाः।
मुक्तिं यान्तीति तद्भक्तिर्मुक्तिरेव न संशयः॥
(अध्यात्म रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग - १०, श्लोक - ४२-४३)

भक्तवत्सल जगन्नाथ श्रीरामजी के प्रसन्न होने पर ऐसा क्या है जो दुर्लभ हो, अतः अधम जन्म लेकर भी शबरी मुक्ति को प्राप्त हो गयी। फिर जो गणमान्य पुण्यात्मा श्रीरामचिन्तक ब्राह्मण हैं, वे भी मुक्ति को प्राप्त कर जाएं, इसमें संशय नहीं, क्योंकि उनकी भक्ति ऐसी ही है।

पूर्वपक्ष के जो लोग अधमजन्मा और हीनजातिसमुद्भवा का अर्थ श्रीमद्भगवद्गीता के 'येऽपि स्युः पापयोनयः' के आधार पर स्त्रीवाचक लगाते हैं, वे बताएं कि पूरे रामायण में बस शबरीजी ही स्त्री थीं क्या जो स्त्री होने मात्र से उन्हें अधमजाति की बता दिया गया ? अन्य कौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा, सीता, उर्मिला, अनसूया, अरुन्धती, मन्दोदरी, तारा आदि किसी के लिए अधमजाति या हीनजाति शब्द नहीं आ सकता था ? या फिर आप इन्हें स्त्री नहीं मानते, बस शबरी ही एकमात्र स्त्री थीं और आपके अनुसार तो इतनी गजब की स्त्री थीं कि सिद्धा तापसी शब्द उल्लिखित होने से ब्राह्मणी तक आपने सिद्ध कर दिया किन्तु स्त्री होने मात्र से हीनजाति की ही बतायी गयीं, उसमें उन्हें ब्राह्मणी होने से श्रेष्ठजातिसमुद्भवा नहीं बताया जा सका। इतने के बाद भी हीनजातिसमुद्भवा कहने से पूर्व अपने लिए उन्होंने योषित् शब्द, स्त्रीवाचन हेतु अलग से कहा, इधर क्यों ध्यान नहीं दिया जाता ? श्रीरामजी ने स्त्रीत्व और जाति, दोनों को अलग अलग वर्णित करके भजन में अहेतु बताया है। श्रीशिवजी ने अधमजन्मा और ब्राह्मणाः, ऐसे दोनों अलग अलग बताकर तुलना की है, सारे श्लोकबद्ध प्रमाण दे चुका हूँ। यहाँ स्त्री होना, अधमजन्मा होना और ब्राह्मण होना, तीनों बिल्कुल अलग अलग स्वतन्त्र प्रयोग में उपलब्ध हैं, जिनपर ध्यान देना मनीषियों को उचित नहीं लगता, बस जो कह दिया सो कह दिया।

अब हम ब्रह्मदेव के द्वारा कथित भुशुण्डि आदिरामायण के प्रमाणों को प्राधान्यतः प्रस्तुत करेंगे और उनका सरलतम सङ्क्षिप्त हिन्दी अनुवाद भी सम्मिलित कर देंगे।

अद्येदमद्भुतमिमं भिल्लानां वनमुत्तमम्।
क्षेममध्यासिता स्वो वै सुखयन्तौ वनेचरान्॥
वनेऽस्मिन् मम भक्तैका विद्यते भिल्लसुन्दरी।
यस्याः प्रेम्णा वशीभूतो मुनीन् विगणयाम्यम्॥
(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १६५, श्लोक - ०४-०५)

श्रीराम ने कहा - यहाँ यह भिल्लों का अद्भुत वन है जो क्षेमादि से परिपूर्ण तथा सुखी वन्य जीवों से भरा हुआ है, जहाँ हम निवास करेंगे। इस वन में मेरी एक भक्ता "भिल्लसुन्दरी" रहती है, जिसके प्रेम के वशीभूत होकर मैं उसके समक्ष मुनियों को भी उतना महत्वपूर्ण नहीं गिनता हूँ।

इसके बाद कुछ और प्रसङ्गों का वर्णन करके भगवान् कहते हैं -

ब्रह्मा शेषः पशुपतिर्भक्त्यैव प्रियतां गताः।
तेषां विभूतिमाहात्म्यं न मे प्रेमानुबन्धनम्॥
अतः सात्यन्तभक्ता मे सौमित्रे भिल्लजातिजा।

पश्यतां मुनिवर्याणां माननीया विशेषतः॥
वनजैः फलसन्दोहैः सा नः सम्मानयिष्यति।
तया भक्त्योपनीतं मे सुधातोऽप्यधिकं मतम्॥
न वर्णश्रेष्ठता न श्रीर्न कुलं न च बन्धुता।
मम तोषाय सौमित्रे प्रीयेऽहं भक्तिमात्रतः॥
अवमत्य मुनिश्रेष्ठान् पश्यतः स्वालयागमम्।
यास्ये भिल्लपुरन्ध्रीं तामूषितुं निशमेकिकाम्॥
त्वया मया च सौमित्रे तस्यै मानः प्रदीयताम्।
पश्यत्सु मुनिवर्येषु मत्यक्ताश्रमसद्मसु॥
(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १६५, श्लोक - ०९-१४)

लक्ष्मण ! ब्रह्मा, शेष तथा शिव आदि देवता भक्ति के द्वारा ही मेरे प्रिय हुए हैं। उनके प्रभाव या शक्तियों से हम उनके प्रेम के बन्धन में नहीं हुए। हे सौमित्र ! वह "भिल्ल जाति में उत्पन्न" मेरी अनन्य भक्त है अतः ऋषियों के द्वारा देखते देखते हमारे द्वारा सम्मान पाने योग्य है। वन में उत्पन्न फलादि के द्वारा वह हमारा सम्मान करेगी। भक्ति के द्वारा प्रस्तुत वे फल मेरे लिए अमृत से भी बढ़कर हैं। मेरी प्रसन्नता हेतु न तो "श्रेष्ठ वर्ण में जन्म चाहिए", न तो धन चाहिए तथा न ही कुटुम्ब चाहिये। हे लक्ष्मण ! मैं बस भक्ति से ही प्रसन्न हो जाता हूँ। अपने आश्रम में मेरे आगमन की प्रतीक्षा कर रहे मुनियों को छोड़कर मैं उस "भीलनी" के पास ही जाऊंगा और वहीं एक रात्रि निवास भी करूँगा। हे लक्ष्मण ! अपने घर और आश्रम में मति को लगाए रहने वाले इन मुनियों के देखते हुए ही मेरे और तुम्हारे द्वारा उसे सम्मान दिया जाना चाहिए।

इसके बाद भगवान् अन्य प्रशंसापरक वचनों को कहते हुए शबरीजी के आश्रम की ओर आगे बढ़े।

अथ तपति मयूखैर्भूरिमध्यन्दिनार्के नभसि च परितो निःकूजकोयष्टिसार्थे।
अपगतभुजिवेलः सानुजोऽयं वियोजी शबरवनमविक्षद्धाम यस्मिन् शवर्याः॥
(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १६५, श्लोक - ३०)

मध्याह्नसूर्य की तप्त किरणों से आक्रांत उस नीरव वन में सीताजी के विरह से व्याकुल, श्रीरामजी अपने भाई के साथ उनकी ही भुजाओं का सहारा लेकर उस शबरवन का निरीक्षण करते हुए पहुंचे, जहाँ शबरी की कुटिया है।

मद्गृहं राम आगत्य कतिचित्स्थास्यति क्षणान्।
एवमाशासमायुक्ताः सर्व एव महर्षयः॥
पाद्यादिकं समायोज्य तस्थुः स्वस्वाश्रमे द्विजाः।
सर्वेषां पश्यतां तेषां रामोऽगाच्छबरीगृहम्॥
यत्र सा भिल्लजातीया प्रकृत्या शुद्धमानसा।
सर्वोपकरणैः सज्जा श्रीरामप्रेमविह्वला॥
(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १६६, श्लोक - ०६-०८)

मेरे घर में भी राम आएंगे और कुछ क्षण रुकेंगे, इस आशा से सभी महर्षि अपने अपने आश्रमों में पाद्यार्चन आदि की व्यवस्था करके स्थित हो गए किन्तु श्रीराम उनके देखते हुए ही शबरी के गृह में चले गए जहाँ "भिल्लजाति" की वह स्वभावतः शुद्ध मन वाली शबरी समस्त आवश्यक वस्तुओं को सजाकर श्रीराम के प्रेम में विह्वल होकर स्थित थी।

तां प्रेमबन्धपुलकाञ्चितगात्रयष्टिं स्वान्वीक्षणक्षणसुखावहितान्तरां च।
भिल्लीं ददर्श कृपया रघुसार्वभौम आरात्तदीक्षणवशाद्विहितोत्सवाढ्यः॥

(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १६६, श्लोक - २२)

रामप्रेम से अत्यन्त पुलकित क्षीण शरीर वाली तथा स्वदर्शन से उत्पन्न अत्यन्तोत्तम सुख को प्राप्त करने की अभिलाषा वाली "भीलनी" को रघुवंशी श्रीराम ने कृपापूर्वक देखा जिसने उनके दर्शन हेतु उत्सव के समान प्रबन्ध करके इतने उद्यम से रखा था।

अब यहाँ एक विचित्र बात का वर्णन है। चूंकि राम आएंगे, ये तो शबरी को ज्ञात था किन्तु किस रूप में आएंगे, यह ज्ञात नहीं था। तो उसने जिस रूप की प्रतीक्षा की थी, पहले भगवान् ने उस रूप और अपने वर्तमान रूप का सम्मिश्रित रूप शबरीजी को दिखाया है।

आयान्तं रघुपुङ्गवं प्रियतमायुक्तं प्रभुं सानुजं
नव्येन्दीवरसुप्रसन्ननयनं पीताम्बरं सुन्दरम्।
अंसन्यस्तधनुर्धरं कटियुगप्रोद्भासितूणीयुगं
खड्गाढ्यं जटया पिशङ्गमहसं भिल्ली ददर्शोच्चकैः॥
रामस्तस्याश्चक्षुषी पूरयाणः सान्द्रानन्दैर्दर्शनेन प्रभूतैः।
पादन्यासैः पावयन् भूरितीर्थैर्विश्वाराध्यः प्राविशद्भावदर्शी॥
(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १६६, श्लोक - २७-२८)

ऊंचे स्थान पर खड़े होकर उस "भीलनी" ने देखा कि रघुश्रेष्ठ श्रीरामजी अपने छोटे भाई लक्ष्मण और प्रियतमा सीताजी के साथ सुन्दर नवविकसित कमल के समान नेत्र और पीताम्बरधारी स्वरूप में आ रहे हैं। फिर उसने देखा कि भगवान् ने धनुष धारण किया है, कमर में दो तरकस एवं तलवार बन्धी है तथा कपिलवर्ण की उनकी जटाओं से वे प्रभापूर्ण प्रतीत होते हैं। भक्त की भावना को देखने वाले विश्वपूजित श्रीरामजी ने भी उसके नेत्रों को अपने आनन्दवर्द्धक प्रचुर दर्शनलाभ से पूर्ण करते हुए समस्त तीर्थों के स्वरूप अपने चरणों से पवित्र करते हुए उसकी कुटिया में प्रवेश किया।

इनके अनन्तर ब्रह्मदेव ने शबरीजी के द्वारा श्रीरामलक्ष्मण के स्वागत और स्तुति का वर्णन किया है, उसके बाद आतिथ्यप्रसङ्ग में विविध फलों के वर्णन के बाद बताते हैं -

पृथक्पृथग्द्रोणगतानि तानि स्वादूनि रुच्यानि रसावहानि।
आमानि पक्वानि मनोहराणि सा तत्पुरस्ताच्चक्लृपे फलानि॥
तानि स्वयं स बुभुजे परमात्मा सनातनः।
यज्ञभुग्यज्ञपुरुषो महोदारः सहानुजः॥
शश्लाघे प्रतिकवलं रघुप्रवीरो भुञ्जानोऽमृतरसभाञ्जिसत्फलानि।
प्रेमाक्तान्यधिकरसावहानि तानि भक्तायाः स्वदितुमसौ परं प्रवीणः॥
(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १६७, श्लोक - १४-१६)

अलग अलग दोनों में उसने स्वादिष्ट एवं रुचिकर, विभिन्न रसों से पूर्ण कच्चे और पके हुए मनोहर फल श्रीरामजी के सामने सजाकर प्रस्तुत कर दिए। स्वयं सनातन परमात्मा यज्ञभोजी यज्ञपुरुष भगवान् ने अपने भाई लक्ष्मणजी के साथ उनका भक्षण किया। रघुराज श्रीरामजी ने अमृत के समान उन उत्तम फलों का भक्षण करते हुए प्रत्येक कौर में उनकी प्रशंसा की। भक्ता के प्रेम के कारण उन फलों का रस कुछ अधिक ही बढ़ गया था और भगवान् तो प्रेम के आस्वादन में प्रवीण हैं ही।

अब इस प्रसङ्ग में पूर्वपक्ष यह सन्देह व्यक्त कर सकता है कि लक्ष्मण जी ने फलों का भक्षण कैसे कर लिया जबकि मेघनाद को मारने हेतु भोजन, निद्रा आदि का परित्याग अनिवार्य था। इसमें हम कर्ताभिमाननिवृत्ति से प्रारब्धजन्य बन्धन के विमोचन हेतु श्रीमद्भगवद्गीता के "यस्य नाहंकृतो भावो" का प्रमाण प्रस्तुत करेंगे और उससे सन्तोष नहीं होगा तो अध्यात्म रामायण का प्रमाण देंगे -

यस्तु द्वादशवर्षाणि निद्राहारविवर्जितः।
तेनैव मृत्युर्निर्दिष्टो ब्रह्मणास्य दुरात्मनः॥
(अध्यात्म रामायण, युद्धकाण्ड, सर्ग - ०९, श्लोक - ६४/६५)

विभीषण जी ने बताया है कि बारह वर्षों तक जो निद्रा और आहार का परित्याग कर दे, वही दुरात्मा मेघनाद को मार सकता है, ऐसा ब्रह्मदेव ने निश्चित किया है।

अतः शबरीजी के प्रसङ्ग में श्रीरामजी के वनवास के बारह से अधिक वर्ष बीत चुके थे, लक्ष्मण जी का व्रत सिद्ध हो चुका था सो इस दृष्टि से यह वर्णन असंगत नहीं है। अब भुशुण्डि रामायण में आगे का प्रसङ्ग देखें -

फलानि कानिचित्तत्र प्रभवे मुग्धयानया।
परीक्षार्थं समास्वाद्य मिष्टानि जगृहेतमाम्॥
तान्येष हृदि जानानः प्रेमाक्तानि स्वभावतः।
बुभुजेऽभ्यधिकप्रीतिरास्वादनविचक्षणः॥
सस्वदेऽतितरां रामः श्लाघमानो मुहुर्मुहुः।
शबरीवदनोच्छिष्टान्यतिस्वादूनि हर्षितः॥
शबरीवदनोच्छिष्टैः प्रेमपूतैः फलैरसौ।
आत्मानं तर्पयामास सर्वाभ्यधिकसारवित्॥
(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १६७, श्लोक - २०-२३)

मोहित चित्त वाली उस शबरी ने उस समय फलों की मिठास चखने के लिए कुछ फलों को परीक्षण हेतु आस्वादन करके रख दिया और स्वादग्रहण में अतिकुशल भगवान् ने उन्हें स्वभावतः ही प्रेमपूर्ण समझते हुए हृदय के शुद्ध भाव को जानकर और भी प्रेम से भक्षण किया। शबरीजी के मुख से उच्छिष्ट उन अत्यन्त स्वादिष्ट फलों की श्रीरामजी ने बारम्बार विशेष प्रशंसा करके रसास्वादन किया। शबरी के मुख से उच्छिष्ट हुए प्रेम से भरे उन फलों के माध्यम से सभी रसों के ज्ञान में सर्वाधिक निपुण भगवान् ने अपनी आत्मा को तृप्त कर दिया। ('परीक्ष्य परिभक्ष्य च' का जो लोग वृक्षों के फलों का परीक्षण करने का भाव लगा रहे थे, वे भी इन्हीं श्लोकों से खण्डित हो जाते हैं)

ब्रह्मोवाच
ललज्जेऽतितरां सा तु तत्वज्ञानवती क्षणात्।स्वोच्छिष्टानिफलान्यस्य समर्प्य जगदीशितुः॥
पूर्वं तु प्रेमरभसादविचारितमाचरत्।
उत्पन्नतत्त्वधीः पश्चाच्छुशोच शबरी हृदि॥
अहो मया कृतमिदं किं तु साक्षाज्जगत्पतौ।
यदुच्छिष्टफलान्यस्मै समर्पितवती कुधीः॥
क्वायं महामहाराजमौक्तिरत्नमरीचिभिः।
नीराजिताङ्घ्रिकमलो रामस्त्रिभुवनेश्वरः॥
क्वाहं जात्याधमामूढा स्त्रीधर्मेण विदूषिता।
अनुग्रहोऽस्यैव परो नीताहं येन पात्रताम्॥
अपराधमहं चक्रे स्वोच्छिष्टविनिवेदनात्।
प्रेममत्तमतिः किञ्चिन्न विचारितवत्यपि॥
इति तामनुशोचन्तीं राम आत्माखिलात्मनाम्।
उवाच तत्परप्रेमवशीभूतोऽखिलार्थदः॥
(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १६८, श्लोक - ०१-०७)

ब्रह्मदेव कहते हैं - इस घटना के बाद उद्भूत तत्त्वज्ञान वाली वह शबरी क्षणमात्र में अत्यन्त लज्जित हो गयी कि मैंने अपने जूठे फलों को इन जगदीश्वर के लिए कैसे समर्पित कर दिया ! पहले तो प्रेम के अतिरेक में वे बिना विचार किए ही ऐसा कर बैठी थीं और अब तत्त्वज्ञान होने पर शबरी अपने हृदय में बहुत चिन्ता करने लगीं। साक्षात् जगत्पति परमात्मा में प्रति यह मैंने क्या कर दिया ! मुझ मूर्खा ने इन्हें अपने जूठे फल समर्पित कर दिए ! कहां तो ये त्रिलोकाधिपति श्रीराम हैं, जिनके चरणकमलों की आरती महाराजाओं के भी महाराजाओं के द्वारा रत्न-मोती आदि के प्रकाश से की जाती है और कहाँ मैं स्त्रीधर्म से दूषित, मूर्ख, "अधम जाति" वाली हूँ। यह तो इनकी परम कृपा है कि इन्होंने मुझे योग्य बना दिया और मैंने अपना जूठन देकर इनका ही अपराध किया। मैं प्रेम में इतनी मतवाली हो गयी कि कुछ भी विचार नहीं किया ? ऐसी चिन्ता करती हुई शबरी के मन की बात को जानकर सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीराम ने उसके प्रेम के वशीभूत होकर निम्न वचन कहे।

श्रीराम उवाच

त्वयाऽऽहृतानि स्वादूनि प्रेम्णैवानन्यवृत्तिना।
खण्डितानि फलान्येतान्यखण्डानि मुदे मम॥
जाने प्रेमवनीवास्तुः कापि धन्यतमाशुकी।
आस्वादयत्फलान्येतान्यतिमाधुर्यभाञ्जि यत्॥
अथ त्वमतिपुण्यासि भिल्लजातिरपि स्फुटम्।
वेदविद्भ्योऽपि विप्रेभ्यो मदनुग्रहभाजनम्॥
जातासि सपदि त्वं तु तीर्थपावनपावनी।
परमेण मयि प्रेम्णा तवानेतातिभूयसा॥
श्रौतं स्मार्तं तान्त्रिकं वापि कर्म पुण्योपास्ति तद्विशुद्धं तपो वा।
ज्ञानं ब्रह्मात्मैक्यसंविद्विशुद्धं न मे तुष्ट्यै जायते भाग्यपूर्णे॥
प्रेमैवैकमप्यसाधारणं यत्तैस्तैर्भावैः सुविशुद्धैरुपेतम्।
स्वभावेनासोढविश्लेषलेशं तेनैवाहं स्यां वशीभूतचित्तः॥
(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १६८, श्लोक - ०८-१४)

श्रीराम ने कहा - तुम्हारे द्वारा अनन्य प्रेम से लाये गये ये स्वादिष्ट फल खण्डित होने पर भी अखण्डित ही हैं और मेरी प्रसन्नता के कारक हैं। मैं समझता हूँ कि इस प्रेमरूपी वन में घर बनाकर रहने वाली तुम कोई धन्यतमा शुकी (तोती) हो, जिसने इन फलों को चखा है, जिससे ये और भी अधिक मधुर हो गए हैं। "भील जाति" में उत्पन्न होकर भी तुम "वेदज्ञ ब्राह्मणों की अपेक्षा भी अधिक पुण्यवती" हो अतः मेरी कृपा की पात्र हो। मेरे अनन्य, अटूट परम प्रेम में कारण तुम तत्काल ही सभी तीर्थों को भी पवित्र करने वाली हो गयी हो। वैदिक, स्मार्त अथवा तान्त्रिक आदि जो कुछ भी कर्म है, पुण्य के उपाय हैं, विशुद्ध तपस्या है, अद्वैतसिद्धि का ब्रह्मज्ञान अथवा शुद्धतम प्रज्ञा है, हे भाग्यशालिनी ! ये सब मुझे सन्तुष्ट नहीं करते। जो असाधारण (अनन्य) प्रेम है, उसके माध्यम से जो अत्यन्त विशुद्ध भाव उत्पन्न होता है, जो स्वभावतः ही कभी वियुक्त नहीं होता, ऐसे प्रेम के कारण ही मैं भक्त के वशीभूत हो जाता हूँ।

फिर भगवान् ने और कुछ बातें भक्ति के माहात्म्य में कही हैं एवं भोजन को पूर्ण किया।

इत्युच्चैः प्रेममधुरं ब्रुवाणो रघुनन्दनः।
भुक्तिं समापयामास सानुजः शबरीगृहे॥
शबरीसमुपानीतैः पानीयैः स्वादुशीतलैः।
पीयूषविमलैः शुद्धैः स आत्मानमतर्पयत्॥
शबरीकरपद्मस्थपात्रधाराविनिर्गतैः।
मुखमक्षालयद्रामः सानुजोऽमलवारिभिः॥
ताम्बूलमर्पयामास किराती क्रमुकान्वितम्।

मुखरञ्जनकृच्चूर्णसंयुतं तत्र सानुजे॥
(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १६८, श्लोक - १५-१८)

इस प्रकार से जोर जोर से मधुर प्रेमपूर्ण वाणी में बोलते हुए रघुनन्दनजी ने अपने छोटे भाई लक्ष्मण के साथ भोजन पूर्ण किया। शबरीजी के द्वारा लाये गये अमृत के समान शुद्ध, स्वादिष्ट एवं शीतल जल को पीकर उन्होंने अपनी आत्मा को तृप्त किया। शबरीजी के करकमलों के स्थित पात्र से गिराए जा रहे निर्मल जल से भगवान् ने अपने भाई के साथ हाथ मुंह का प्रक्षालन किया। इसके बाद उस "किराती" ने सुपारी और मुखवास आदि से युक्त ताम्बूल अनुजसहित श्रीरामजी को निवेदित किया।

इसके बाद के प्रसङ्ग में वर्णन है कि शबरी ने यह प्रश्न किया कि आप सीताजी के साथ क्यों नहीं आये ? (चूंकि प्रथम दर्शन में उन्होंने सीताजी के साथ ही भगवान् का अवलोकन किया है, वो भी पीताम्बर पहने, किन्तु सामने आने पर सीताजी दिखी नहीं और भगवान् भी वल्कल वस्त्रों में थे, अतः) शबरी ने पूछा कि हमने ऐसा क्या पाप किया कि आप प्रियारहित होकर विरहमुद्रा के साथ आए हैं ! तब भगवान् ने सीताहरण का सङ्केत करते हुए आश्वासन दिया कि तुम मेरे योगिदुर्लभ दिव्य धाम को जाओगी किन्तु यदि सीताजी के साथ मेरे दर्शन की इच्छा है तो अगले कल्प में इसी स्थान पर आकर दर्शन कर लेना और फिर भगवान् एक रात्रि विश्राम करके आगे की यात्रा में बढ़ गए। यह सब प्रसङ्गगत श्लोक वहीं देखे जा सकते हैं जो हमने विस्तारभय से नहीं लिखा है।

भगवान् शबरी के घर गए किन्तु हमारे यहाँ नहीं आए, इस बात से ऋषियों को बड़ा क्षोभ हुआ। ब्रह्मदेव वर्णित करते हैं -

गते तु रघुशार्दूले सानुजे शबरी गृहात्।
मुनयो ब्राह्मणाश्चेत्थमूचुस्तद्वनवास्तवः॥
अहो बुद्धिविपर्यासो महतामपि दृश्यते।
प्रायोऽखिलक्षोभकृतः कालस्यैव विपर्ययात्॥
यदेष सम्मतः शिष्टै रामो रघुकुलोद्भवः।
शबर्या गृहमागच्छेदनादृत्यमुनीनपि॥
(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १६९, श्लोक - ०१-०३)

जब लक्ष्मणजी के साथ श्रीराम शबरी के घर से चले गये तो जस वन में रहने वाले ब्राह्मण और मुनियों ने इस प्रकार कहा - "अहो ! श्रेष्ठ जनों की बुद्धि भी कभी कभी भ्रष्ट हुई देखी जाती है क्योंकि सबों को क्षुब्ध करने वाला काल गड़बड़ कर जाता है। बताओ भला, रघुकुल में उत्पन्न होकर, शिष्टसम्मत व्यक्तित्व वाले राम भी हम मुनियों का निरादर करते हुए शबरी के घर में चले गए !"

फिर शबरीजी और श्रीरामजी की निन्दा में और भी वचनों को कहकर अन्त में मुनियों ने कहा -

सातिमन्दा दुराचाराधमा जात्या च कर्मणा।
चकार कथमातिथ्यं रामे शिष्टौघसम्मते॥
अग्राह्यं जलमप्यस्याः का कथान्नस्य वाडवाः।
अहो बुद्धिविपर्य्यासो राघवस्य बतेदृशः॥
(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १६९, श्लोक - ०९-१०)

वह मन्दबुद्धि, दुराचारिणी, जाति और कर्म से अधम स्त्री भला किस प्रकार शिष्टजनों के द्वारा सम्मत राम का आतिथ्य कर सकती है ? ब्राह्मणों ! हम तो इसका पानी भी नहीं पीते, फिर भोजन करने की बात ही क्या है ! बड़े दुःख की बात है कि राघव की बुद्धि भी ऐसी उल्टी हो गयी !

ब्राह्मणों और मुनियों के ऐसा कहते ही उनके आश्रम की नदी सड़ गयी, उसमें निर्मल जल के स्थान पर दुर्गन्ध वाला रक्त और पीब बहने लगा। उनके आश्रमों के पुष्प मुरझा गये, अग्निहोत्र की अग्नि बुझ गयी और उनका ब्रह्मतेज क्षीण हो गया। इस वैपरीत्य से भयभीत

होकर वे सब महर्षि अगस्त्य की शरण में गये। अगस्त्यजी ने पूछा कि सच सच बताओ, क्या तुमने किसी पूजनीय का अपमान किया है ? तब मुनियों ने कहा -

वसत्यस्मिन् वने काचित्किराती भाग्यसम्भृता।
अतिथिः समभूद्यस्या रामो रघुकुलोद्भवः॥
श्रोत्रियान् ब्राह्मणश्रेष्ठान् सार्घहस्तान् कृतस्पृहान्। पश्यतोऽस्माननादृत्य ययौ तस्या निकेतने॥
शिष्ट एवं कथं कुर्यात्तेनास्माभिरमर्षतः।
किरातीसदनं गच्छन् विगीतो रघुपुङ्गवः॥
अधमा कर्मणा जात्या मांसगृध्नुः किरातजा।
कथं सा योग्यतां प्राप्ता रामस्यातिथिदानतः॥
इति निन्दावचोऽस्माभिस्तथ्यं चेत्तस्य भाषितम्।
नापराद्धं तदास्माभिरन्यथा त्वपराधिनः॥
(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १७०, श्लोक - ०२-०६)

एक कोई "किराती (भीलनी)" इस वन में रहती है जिसका अचानक से बड़ा भाग्योदय हो गया क्योंकि रघुकुल में उत्पन्न राम उसके अतिथि बने। हम वेदपाठी श्रेष्ठ ब्राह्मण हाथों में अर्घ्य आदि लेकर खड़े और हमारे देखते देखते हमारी उपेक्षा करके श्रीराम उसके घर में चले गये। ये कहाँ का सदाचार है, ऐसा विचार करके हमें अमर्ष हुआ और उस "किराती (भीलनी)" के घर में जाते हुए रघुश्रेष्ठ श्रीराम की हमने निन्दा की। भला अधम कर्म और जाति वाले मांसभक्षी किरातों के यहाँ उत्पन्न वह राम का अतिथिपूजन करने से योग्य कैसे हो जायेगी ? इस प्रकार हमने निन्दा तो की है किन्तु जो तथ्य है, वही कहा है। अतः हम इस बात को अपराध नहीं समझते, हमसे अवश्य ही कोई दूसरा अपराध हुआ होगा।

श्रुत्वा कुम्भोद्भवस्तेषां वचनं तदकैतवम्।
सर्वदर्शी मुनिश्रेष्ठ इदमाह द्विजोत्तमान्॥
हन्त द्विजवराः सम्यगपराधो बभूव वः।
किराती रामभक्ता सा विगानं कथमर्हति॥
सोढव्यमेव रामेण विगानं स्वस्य कर्हिचित्।
न तु रामः स्वभक्ताया विगानं सोढुमर्हति॥
(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १७०, श्लोक - ०७-०९)

ऋषियों ने कुछ भी कपट न करते हुए सब सत्य बता दिया था, इस बात को सुनकर सब कुछ जानने वाले महर्षि अगस्त्य ने उन उत्तम ब्राह्मणों को इस प्रकार कहा - "बड़े खेद की बात है कि आपलोगों से यह बहुत बड़ा अपराध हो गया है। वह 'किराती (भीलनी)' श्रीरामजी की भक्ता है, उसकी निन्दा कैसे हो सकती है ? एक बार को श्रीरामजी अपनी निन्दा सुनकर सहन लें किन्तु अपनी भक्ता की निन्दा को वे कभी सहन नहीं करेंगे।"

अगस्त्यजी की बात सुनकर सभी ऋषिमुनि उसी दिशा की ओर दौड़े जिधर श्रीरामजी गए थे। बहुत देर नहीं हुई थी अतः वे शीघ्र ही मिल गए। उनसे जाकर ऋषियों ने क्षमा मांगी तो भगवान् ने स्पष्ट कहा -

मद्विगानं मया विप्राः सोढमेव न संशयः।
तस्यास्तु मम भक्ताया विगानं सर्वनाशनम्॥
सैव क्षमापनीया वो गत्वा तस्या निकेतनम्।
भिल्लजातिरितीयं वः शङ्कनीया न सोत्तमा॥
सा धन्या भूरिभागा च महायोगा तपस्विनी।

नमस्या सर्वदेवानां कथान्येषां तु का नृणाम्॥
नित्यं वशेऽस्म्यहं तस्या मत्प्रेमावहितात्मनः।
कृपयिष्यति वो विप्रा नियतं सा कृपावती॥
तस्याः पादरजःस्पर्शादतीर्थं तीर्थतामियात्।
अतो भूयः समाराध्या भवद्भिः सा किरातिनी॥
तस्या विगानतो जातमनिष्टं वो द्विजातयः।
न मद्विगानतः शक्यं यदहं भवतां हितः॥
(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १७१, श्लोक - १९-२४)

हे ब्राह्मणों ! आपलोगों ने मेरी निन्दा की होती तो उसे मैं निश्चय ही सहन कर लेता किन्तु मेरी उस भक्ता की निन्दा तो सब कुछ नष्ट कर देने वाली है। आप सब उसके ही घर जाकर उससे क्षमा मांगे। मन में यह शंका संकोच न करें कि वो "भील जाति" की है तो कैसे क्षमा मांगेंगे। वह उत्तम है, धन्य है, बहुत भाग्यशालिनी है, महायोगिनी और तपस्विनी है। सभी देवताओं के द्वारा उसे प्रणाम किया जाना चाहिए, फिर मनुष्यों की बात ही क्या है। मैं उसके प्रेम के कारण सदैव उसके वश में रहता हूँ। हे ब्राह्मणों ! वह बहुत कृपामयी है, आपके ऊपर अवश्य कृपा करेगी। जो तीर्थ नहीं है, वह भी उसके चरणों की धूल से तीर्थ के समान पवित्र हो जाता है अतः आप सबों के द्वारा उस "किरातिनी (भीलनी)" का सम्मान किया जाना चाहिए। हे ब्राह्मणों ! उसकी निन्दा से ही आप सबों का यह अनिष्ट हुआ है, मेरी निन्दा से नहीं हुआ। मैं तो सदैव आप सबों का हित करता हूँ। मेरी निन्दा तो मैं सहन कर ही लेता।

भगवान् के ऐसे वचनों को सुनकर मुनियों को बड़ी ग्लानि हुई किन्तु क्षमा मांगने का साहस कौन करे ? अतः सबों ने महर्षि अगस्त्य को ही आगे करके शबरीजी के पास जाकर निवेदन किया -

हे देवि मातः शबरि रामभक्ते कृपावति।
मनसा कृपयास्मभ्यं ब्राह्मणेभ्यः शुभेक्षणे॥
तव भक्त्या वशीभूतो भगवान् रघुपुङ्गवः।
अतस्त्वां जननि स्तोतुं गिरा नो पारयामहे॥
जग्राह त्वत्कृतातिथ्यं रामो भुवनदुर्लभः।
काङ्क्षतोऽस्माननादृत्य ब्राह्मणान् श्रोत्रियानपि॥
अतस्त्वं श्रोत्रियेभ्योऽपि ब्राह्मणेभ्यो वरीयसी।
त्वयोद्धृता निजकुले दश पूर्वे दशापरे॥
निवसन्त्या त्वया देवि वनमेतत् सुपावनम्।
तीर्थभूतमभून्मातः का ते स्तुतिरतः परम्॥
अजानता जानता वा यत्ते केनापि किञ्चन।
अपराद्धमभून्मातस्तत्त्वं क्षन्तुमिहार्हसि॥
पुरस्तात्तव पश्चाद्वा यत्किञ्चिदपराधजम्।
मातस्त्वदनुकम्पातस्तन्न आगोऽपगच्छतु॥
जननि त्वं सदा पूता रामभक्तिप्रभावतः।
त्वद्दर्शनेन पूयन्ते महापातकिनो जनाः॥
त्वया वशीकृतो रामः प्रेममात्रेण सन्ततम्।
मुनीनां शुद्धचित्तानां यो वै दूरतरे स्थितः॥
धन्यं तव परं प्रेम धन्यं ते ज्ञानमूर्जितम्।
धन्यं तव कुलं मातर्धन्या त्वं तत्र सम्भवा॥
विज्ञापनमिदं मातः श्रूयतां नस्त्वयाधुना।

शोणितौघवहा जाता अस्मदाश्रमगा सरित्॥
तस्यां प्रक्षालय निजौ पादौ त्वं विश्वपावनौ।
ततः सा पूतसलिला प्रकृतिस्था भविष्यति॥
(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १७२, श्लोक - ०२-१३)

हे देवी शबरी माता ! हे करुणामयी रामभक्ता ! हम ब्राह्मणों की ओर मन में कृपा को धारण करके दृष्टिपात करें। आपकी भक्ति में वश में तो स्वयं भगवान् रघुकुलश्रेष्ठ श्रीराम हो गए, अतः हे जननि ! हम अपनी वाणी से आपकी स्तुति का क्या पार पाएंगे ! जो श्रीराम पूरे विश्व के लिए दुर्लभ हैं, उन्होंने आपका आतिथ्य ग्रहण किया जबकि हम सब वेदपाठी ब्राह्मण उनके आगमन की कामना करते रहे, फिर भी उन्होंने हमारी उपेक्षा कर दी, सो आज हम वेदपाठी ब्राह्मणों से भी आप श्रेष्ठ हो गयी हैं। आपके द्वारा आपकी आगे पीछे की दस पीढियां तार दी गयीं। आपके निवास करने से यह वन भी अत्यन्त पवित्र तीर्थ हो गया है। हे माता ! इससे अधिक आपकी क्या स्तुति करें। अनजाने में अथवा जानबूझकर हमने आपके प्रति जो कुछ भी अपराध किया, आप उन्हें क्षमा करें। आपके सामने या पीठ पीछे भी हमने जो अपराध किया हो, हे माता ! आपकी कृपा से वह पाप हमसे दूर चला जाए। हे जननि ! श्रीरामभक्ति के प्रभाव से आप सदैव पवित्र हैं। आपके दर्शनमात्र से बड़े बड़े पातकी भी पवित्र हो जाते हैं। आपने मात्र अपने अखण्ड प्रेम से उन श्रीराम को वशीभूत कर लिया जो हम शुद्ध चित्त वाले मुनियों से भी दूर ही रहते हैं। आपका यह परमप्रेम धन्य है। आपका प्रकाशित ज्ञान भी धन्य है। आपने जहां जन्म लिया, वह कुल और माता भी धन्य है। हम आपके समक्ष कुछ निवेदन करना चाहते हैं, जो अब आप श्रवण करें। हमारे आश्रम की नदी रक्तवाहिनी हो गयी है। यदि आप अपने विश्वपावन चरणों को उसमें धो दें तो वह पुनः अपने मूल स्वरूप में लौटकर पवित्र जल वाली हो जायेगी।

शबरीजी दासी नहीं हैं अर्थात् शूद्रा नहीं हैं, ऐसा कुछ श्लोकों का जो अर्थ लगाते हैं, वे अपने मन से इसमें दासी का अर्थ शूद्रा लगाकर फिर उसका निषेध करते हुए शबरीजी को ब्राह्मणी सिद्ध करने का कुप्रयास ही करते हैं। जहाँ जहाँ दास शब्द आए, क्या वहाँ मात्र शूद्र ही अर्थ लगता है और जहाँ जहाँ राज शब्द आए क्या वहाँ आप उसे क्षत्रिय घोषित कर देंगे ? फिर तो इस अनुसार शान्तनुप्रसङ्ग के दाशराज और शृङ्गवेरपुर के निषादराज को भी आप क्षत्रिय घोषित कर दीजिए ? दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः के आधार पर हनुमान् जी को शूद्र घोषित कर दीजिए ? वस्तुतः "दास्यते दीयते भूतिमूल्यादिकं यस्मै सः" इस भाव से सवैतनिक सेवा करने वाला दासकर्म वह नहीं करती है, शास्त्रों में वर्णित पञ्चदशविध दासों में उनकी गणना नहीं है, अपितु स्वाभाविक शूद्रस्वकर्मगत परिचर्या आदि करती हैं, यह अर्थ समझना चाहिए - परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् (श्रीमद्भगवद्गीता)। अतः भगवान् वाल्मीकि जी ने भी उन्हें परिचारिणी ही लिखा है -

तेषां गतानामद्यापि दृश्यते परिचारिणी।
श्रमणी शबरी नाम काकुत्स्थ चिरजीविनी॥

अब मूल प्रसङ्ग पर वापस लौटते हैं। जब अगस्त्य मुनि के नेतृत्व में ऋषियों ने शबरीजी से उपर्युक्त क्षमायाचनापूर्वक निवेदन किया तो इतने बड़े बड़े ऋषियों को प्रणाम करता हुआ देखकर शबरीजी भय और लज्जा से भर गयीं एवं ऋषियों को रोकते हुए उत्तर दिया -

अलं मे श्लाघया विप्रा अधमाहं च योनितः।
अतीवेदमनर्हञ्च यन्मां यूयं नमस्यथ॥
यूयं हि श्रोत्रियश्रेष्ठा ज्ञानविज्ञानभाजनाः।
तपोधनाः सर्ववर्णनमस्कार्या द्विजातयः॥
अपकृष्टतमे जन्तौ महद्भिर्विहिता नतिः।
आयुः श्रियं यशो हन्ति तस्य नास्तीह संशयः॥
अहं दीनतमा लोकेऽधमा जात्या च कर्मणा।
कथं नु योग्यतां याता यन्मां नमथ वाडवाः॥

रामस्तु भगवान् साक्षादकिञ्चनजनप्रियः।
स चेन्न दीने कृपयेद्गतिः स्यात्तस्य तर्हि का॥
अचिन्त्यैव कृपा तस्या रामस्य परमात्मनः।
नापेक्षते कुलं शीलं धनं योग्यत्वमेव च॥
विपरीतमिदं मन्ये यत्पादरजसा मम।
ब्राह्मणानां श्रोत्रियाणां शुद्ध्येयुः सदनानि वः॥
स्वत एव विशुद्धानि नित्यं सद्मानि वो द्विजाः।
यत्राभिगमनाज्जन्तुः सकुलः पूयतेतराम्॥
किं मां नयथ धर्मज्ञा उपहासं जगत्त्रये।
भवदुच्छिष्टकवलेऽप्यनर्हा नीचयोनिजाम्॥
दत्तञ्च कृपया मह्यं युष्माभिर्दर्शनं द्विजाः।
तद्ब्रूत भूरिशर्माणो हितं किं करवाणि वः॥
(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १७२, श्लोक - २१-३०)

हे ब्राह्मणों ! मेरी प्रशंसा करना बन्द करें। मैं अधमयोनि की हूँ। आपलोग जो मुझे प्रणाम कर रहे हैं, यह बहुत गलत है। आप तो ज्ञान-विज्ञान में निष्णात श्रेष्ठ वेदपाठी ब्राह्मण हैं। आप जैसे तपस्वी ब्राह्मण सभी वर्णों के द्वारा प्रणम्य हैं। महान् लोग यदि अधमजन्मा जन्तुओं को प्रणाम करते हैं तो इससे उस जन्तु के आयु, ऐश्वर्य और यश का नाश हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। मैं इस संसार में सर्वाधिक दीन हूँ, जाति और कर्म से भी अधम हूँ। भला ब्राह्मण मुझे प्रणाम करें, ऐसी योग्यता हमने कब प्राप्त कर ली ? श्रीरामजी तो साक्षात् भगवान् हैं, अकिञ्चन भक्तों से प्रेम करते हैं, यदि उन्होंने मुझ दीन पर भी कृपा कर दी तो इससे क्या हो गया, यदि वे कृपा नहीं करेंगे तो दीनों की क्या गति होगी ? यह तो उन परमात्मा श्रीराम की चिन्तनातीत कृपा है जो कुल, शील, धन और योग्यता की अपेक्षा नहीं रखती। मैं इसे सर्वथा विपरीत मानती हूँ कि आप वेदपाठी ब्राह्मणों के घर मेरे चरणों की धूल से पवित्र किए जाएंगे। हे ब्राह्मणों ! आपके घर तो सदैव स्वभावतः पवित्र हैं जहाँ जाने मात्र से व्यक्ति अपने पूरे कुल के साथ पवित्र हो जाता है। हे धर्मज्ञों ! आप तीनों लोकों में मुझे हंसी का पात्र क्यों बना रहे हैं ? मैं "नीच योनि में उत्पन्न" आपका जूठन खाने के लायक भी नहीं हूँ। आप शीलवान् ब्राह्मणों ने मुझपर कृपा करके दर्शन दिया है, अतः मैं आपका क्या हित सम्पादन करूँ, सो बताएं।

इत्युक्त्वा शबरी दीना कुम्भयोनेर्महामुनेः।
चरणावग्रहीद्दूरादस्पृश्यामीति शङ्कया॥
ततस्तामाह भगवान् कुम्भयोनिर्महाशयः।
हा रामभक्ते भवती कथं नुत्यास्ति न द्विजैः॥
यस्याः प्रेम्णा वशीभूतो भगवान् रघुपुङ्गवः।
साक्षात्परात्परः सैष यया ज्ञातश्च सेवितः॥
उत्तिष्ठ देवि ते शीलं लोकोत्तरसुपेशलम्।
किरातिनि शुभं भूयात्तव साधुतमाकृते॥
यथा वदन्त्यमी मातर्ब्राह्मणास्ते गृहागताः।
तथैव क्रियतां देवि न विलम्बस्व सम्प्रति॥
त्वत्पादक्षालनाद्देवि शुद्धिमेष्यति सा सरित्।
अमीषां चाश्रमस्थानं पुनीहि रामसेवके॥
प्रतिबद्धक्रिया एते सर्व एव द्विजातयः।
अनुतिष्ठन्तु कर्माणि तत्पुण्यं च लभस्व भोः॥
इति निर्बन्धतस्तेषां रामभक्ता किरातिनी।

सा तथैवाकरोत्साधुर्यथा तैरभिकाङ्क्षितम्॥
(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १७२, श्लोक - ३२-३९)

इस प्रकार कहती हुई अत्यन्त नम्रता से वह शबरी महामुनि कुम्भज अगस्त्य जी के चरणों में गिर पड़ी किन्तु मैं "अछूत" हूँ, इस आशंका से उसने महर्षि के चरणों का स्पर्श न करके दूर से ही प्रणाम किया। भगवान् अगस्त्य महाशय ने ऐसा देखकर कहा - "हा ! हा ! हे रामभक्ते ! आप भला ब्राह्मणों के लिए पूजनीया क्यों नहीं हैं ? जिसके प्रेम के वशीभूत स्वयं परात्पर रघुश्रेष्ठ भगवान् श्रीराम हो गए हैं, जिन्होंने श्रीराम की सेवा की हो, रामतत्त्व का ज्ञान प्राप्त किया हो। हे देवि ! आप उठिए, आपका शील इस लोक का नहीं, लोकोत्तर है, अत्यन्त श्रेष्ठ है। 'हे किरातिनि ! (भीलनी) !' आप साधुओं की भी साधु हैं, आपका शुभ हो। हे माता ! ये ब्राह्मण अपने घरों से आपके पास आकर जो निवेदन कर रहे हैं, उसमें बिना विलम्ब किए, वैसा ही तत्काल करें। आपके चरणों को धोने से ही वह नदी पुनः शुद्ध होगी। हे रामसेवके ! आप इनके आश्रमों को पवित्र करें। ये सभी द्विजाति अपने धर्मकर्म में पुनः लग सकें, जिसके बाद जो सत्कर्म ये करेंगे, उसका पुण्य आपको भी प्राप्त होगा।" उनके ऐसा कहने वाले श्रीरामजी की भक्ता उस 'किरातिनी (भीलनी)' ने - ठीक है, ऐसा कहकर उनके अभीष्ट को पूर्ण करने के लिए वैसा ही किया।

शबरीजी के भक्तिमाहात्म्य और समादर से ऋषियों का भक्तापवाददोष शमित हुआ, शबरीजी के चरणों के प्रक्षालन से उनकी नदी शुद्ध हुई, अग्निहोत्र जागृत हुआ एवं ब्रह्मतेज पुनः प्रकाशित हो गया और सबों ने शबरीजी की महिमा का बखान किया। कुछ धूर्त कहते हैं कि शबरीजी ब्राह्मणी ही थीं किन्तु ऋषियों को उनकी वास्तविक जाति ज्ञात नहीं थी, अतः श्रीरामजी ने ऐसा किया। किन्तु पूरे प्रकरण के आदिमध्यावसान में ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है अतः इसके बाद हम इस प्रसङ्ग के तीन उपसंहारक श्लोकों का प्रमाण देते हैं। ब्रह्मदेव कहते हैं -

सा स्तूयमाना मुनिभिः समन्तादगस्त्यमुख्यैर्द्विजसत्तमैस्तैः।
विलज्जमाना मनसा किराती ततो निजां पर्णकुटीं जगाम॥
माहात्म्यं रामभक्तायाः शबर्याः सुमहात्मनः।
य एतच्छृणुयान्नित्यं सोऽपि दुःखात्प्रमुच्यते॥
जात्या निषिद्धा क्रिययापि हीना किरातवंशप्रभवापि सा स्त्री।
सीतापतेर्भक्तिभरप्रभावाद्बभूव मान्या नितरां मुनीनाम्॥
(भुशुण्डि आदिरामायण, दक्षिण खण्ड, अध्याय - १७२, श्लोक - ४९-५१)

अगस्त्य आदि श्रेष्ठ मुनियों के द्वारा वन्दिता होती हुई एवं इतने बड़े बड़े ऋषि हमारी स्तुति कर रहे हैं, इस बात से मन ही मन बहुत लज्जित होती हुई वह 'किराती (भीलनी)' अपनी कुटिया में आ गयी। जो अत्यन्त महान् आत्मा वाली रामभक्ता शबरी का यह माहात्म्य प्रतिदिन सुनता है, वह भी दुःखों से मुक्त हो जाता है। जाति से निषिद्ध, शास्त्रोक्त क्रिया से हीन और "किरातों के वंश में जन्म लेकर भी" वह स्त्री सीतापति श्रीरामजी की पूर्ण भक्ति के प्रभाव से सभी मुनियों के लिए भी सम्माननीया हो गयी।

स्वामी रामदास जी के शिष्य स्वामी हंसदास जी के शिष्य स्वामी अमरदास जी लिखते हैं -
मुकुन्दो गोविन्दो जनकतनयालालितपदः
पदं प्राप्ता यस्याधमकुलभवा चापि शबरी ।
गिरातीतोऽगम्यो विमलधिषणैर्वेदवचसा
रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम्॥

श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्य के पन्द्रहवें अध्याय में कुलालजातीय भक्त ने भी यही कहा है कि प्रभो ! मैं न तो विदुर हूँ और न ही शबरी, फिर आप मुझ शूद्रजन्म वाले के घर में क्यों आए हैं ?

किमर्थमागमो देव गृहं मे शूद्रजन्मनः।

न चाहं विदुरो देवो न चाहं शबरी प्रभो॥

इस संसार में मानवोचित सीमा में सर्वज्ञ कोई नहीं है। रामायण मीमांसा में स्वामिश्री करपात्रीजी ने भुशुण्डि रामायण के इतने सुस्पष्ट प्रमाणों की घोर उपेक्षा करके शबरीजी को ब्राह्मणी घोषित कर दिया और यह भी कह दिया कि उन्होंने जूठे फल नहीं खिलाए। या तो भुशुण्डि रामायण के उपर्युक्त श्लोक उनके संज्ञान में तब तक नहीं आए थे किन्तु जैसा कि उन्होंने भुशुण्डि रामायण का नाम उद्धृत किया है तो इन श्लोकों को छिपा कर, बिना इनका उल्लेख किए स्वयं ब्रह्मदेव, श्रीराम, महर्षि अगस्त्य आदि की वाणी से सिद्ध भीलनी शबरीजी को ब्राह्मणी सिद्ध करने का उन्होंने छल ही किया है। स्वामिश्री करपात्रीजी अथवा पण्डित गङ्गाधर पाठकजी के महनीय कृत्यों अथवा विद्वत्ता से हम भली प्रकार अवगत हैं किन्तु जो बातें ब्रह्मदेव और महर्षि अगस्त्य ने कहीं, स्वयं श्रीरामजी ने कहीं, उन भिल्लपुरन्ध्री, किरातिनी, किराती, किरातवंशप्रभवा, भिल्लजातिजा, भिल्लसुन्दरी, भिल्ली आदि शब्दों को हम ब्राह्मणी के अर्थ में स्वीकार नहीं कर सकते। जैसे अपने कुतर्क को सत्य घोषित करने के लिए रामभद्राचार्य ने जैसे विवस्त्रा को विशिष्टवस्त्रा अथवा राजपुत्रौ को ब्राह्मणपुत्रौ सिद्ध करने का कुप्रयास किया था, वैसे ही कदाचित् अतिमीमांसा से कोई उपर्युक्त सम्बोधनों का अर्थ ब्राह्मणी लगा बैठे तो अर्थसामान्यता से हम उसके ही युक्तिसूत्रादि के आधार पर ब्राह्मण को किरातवंशप्रभूत कह दें तो आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

स्वामिश्री करपात्रीजी यदि भुशुण्डि रामायण के प्रकरण में मौन रह गए तो उनका निजी प्रमाद है, न कि ब्रह्मदेव की वाणी की अप्रामाणिकता। वे भी मनुष्य ही थे, उन्हें सर्वज्ञ घोषित करना अतिमानुषी भावाविष्ट शिष्यों का अवगुण है। शबरी प्रकरण में इतने महत्वपूर्ण विषय पर मौन क्यों रह गए ? इतना ही नहीं, अग्निपुराण, पद्मपुराण, विष्णुधर्म पुराण आदि में शुद्धोदनपुत्र के अवतार होने के स्पष्ट वर्णन के बाद भी क्यों नहीं माने ? पंचम पीठ के रूप में काशी सुमेरु क्यों बनाए जबकि कांची वालों को नहीं मानते रहे ? प्रश्न तो बहुत हैं, किन्तु लोगों को तो अपने गुरु को सर्वज्ञ बताने की होड़ मची रहती है। चाहे इसके लिए भगवान् वेदव्यास, वाल्मीकि, अगस्त्य, ब्रह्मदेव सबको झुठलाना पड़े किन्तु स्वामिश्री करपात्रीजी ने लिख दिया तो वो नहीं खण्डित हो सकता, फिर चाहे किसी सम्पादक भगवतीप्रसाद सिंह की सम्पादकीय तक को प्रमाण मानकर स्वयं ब्रह्मदेव के कथनों को भी सीमित कर दिया जाए। कुछ प्रोफेसर को तो नारायणं पद्मभवं का उद्घोष करने के बाद भी स्वयं नारायण और पद्मभव के ही कथन पर विश्वास नहीं है। उनके लिए स्वामिश्री करपात्रीजी की बात प्रमाण हो जाती है किन्तु उनकी ही परम्परा के आद्याचार्य श्रीनारायण और श्रीपद्मभव की बात अश्रद्धेय हो जाती है। हमारे लिए स्वामिश्री करपात्रीजी की मात्र वही वाणी प्रमाण है जिसके पास शास्त्रबल उपलब्ध है। ब्रह्मसिद्ध सूरदासजी और नाभाजी के भक्तमाल पर भी श्रद्धा नहीं किन्तु करपात्रीजी ने जो कह दिया वही इनके लिए अन्तिम सत्य हो गया तो हम ऐसी वाणी को स्वीकार नहीं कर सकते जो अतिमीमांसा से व्याप्त होकर असिद्ध को सिद्ध करने के बाद भी स्पष्ट अनेकानेक शास्त्रप्रमाणों से स्वयं निरस्त हो जाती हो। किसी को बुरा लगे तो लगता रहे, मनस्तोषण हेतु शास्त्र नहीं बदल सकते। वेदों से लेकर हनुमान चालीसा तक का प्रामाण्य स्वीकार करने वाले स्वामिश्री करपात्रीजी स्वयं भुशुण्डि रामायण को प्रामाणिक मानते थे, उनकी शास्त्रनिष्ठा जिस स्तर की थी, आज उनके समक्ष यह सब प्रमाण रखे जाते तो वे बिना किसी दुराग्रह के सहर्ष इन्हें स्वीकार करके हमारा समर्थन करते। अतः उपयुक्त खण्डद्वय में प्रस्तुत इस लेख के माध्यम से हमने शबरीजी के भीलनी होने और भगवान् श्रीरामजी के प्रति उच्छिष्टनिवेदन की प्रेमातिरेकावस्था की चिरप्रसिद्ध कथा का शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया है।

यद्येकेन प्रमाणेन सिद्धं भवति सर्वतः।
तत्किं प्रमाणभेदेन साधितेन प्रयोजनम्॥
(पराख्यतन्त्र, द्वितीय पटल, श्लोक - ७४)

जब एक ही प्रमाण से सबकुछ सिद्ध हो जाता है तो अलग अलग प्रमाणों के भेद को साधने का क्या प्रयोजन है ? अतः भुशुण्डि आदिरामायण के इतने स्पष्ट शास्त्रप्रमाणों को बिना किसी पूर्वाग्रह और हठधर्मिता के स्वीकारने और अपनी भूल को सुधारने का औदार्य शास्त्रनिष्ठ आचार्यों को प्रदर्शित करना चाहिए।

समानगोत्रप्रवर में विवाह के दोष का शाकद्वीपीयों में अपवाद

श्रीमद्भागवत के निमियोगीश्वर संवाद तथा श्रीमद्भगवद्गीता के ज्ञानकर्मसंन्यासयोग के अनुसार कर्म, अकर्म और विकर्म, यह तीन भेद हैं, जिनमें बड़े बड़े विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं।

कर्माकर्म विकर्मेति वेदवादो न लौकिकः।
वेदस्य चेश्वरात्मत्वात्तत्र मुह्यन्ति सूरयः॥
(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध - ११, अध्याय - ०३, श्लोक - ४३)

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥
(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय - ०४, श्लोक - १७)

वेदों के द्वारा निर्दिष्ट कृत्य को कर्म कहते हैं। निषिद्ध कृत्य को अकर्म कहते हैं। निर्दिष्ट कृत्य में मनमानी को विकर्म कहते हैं, अतः बहुत सूक्ष्मता से इनका विचार करना चाहिए क्योंकि कर्म की गति बड़ी गहन है - गहना कर्मणो गतिः।

कर्म को छोड़ने से भी दोष है एवं अकर्म को करने से भी दोष है। विकर्म को और भी निन्द्य समझना चाहिए। जीवेम शरदः शतम् के अनुसार सौ वर्षों की सामान्य वेदोक्त आयु प्राप्त करने वाला मनुष्य भी विकर्म के कारण अल्पकाल में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

मानुषः शतजीवीति पुरा वेदेन भाषितम्।
विकर्मणः प्रभावेण शीघ्रञ्चापि विनश्यति॥
(गरुडपुराण, प्रेतकाण्ड, अध्याय - २४, श्लोक - १०)

भगवती गीता में देवी पार्वती कहती हैं कि श्रुतिस्मृति (एवं उनके तत्तदंशों का स्वशैली में व्याख्यान करने वाले अन्य ग्रन्थों) के द्वारा प्रतिपादित विषय धर्म हैं। इससे इतर शास्त्रों के कथन धर्माभास हैं। बाहर से देखने पर धर्म के समान लगते हैं, किन्तु वस्तुतः धर्म होते नहीं, अतः वैदिकों के द्वारा अग्राह्य हैं।

श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं यत्स धर्मः प्रकीर्तितः।
अन्यशास्त्रेण यः प्रोक्तो धर्माभासः स उच्यते॥
(श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, स्कन्ध - ०७, अध्याय - ३९, श्लोक - १५)

सत्पुरुष धर्म एवं धर्माभास के मध्य धर्मानुबन्ध की भी चर्चा करते हैं। सामान्यतः बाहर से अधर्म के समान लगने पर भी अन्दर से जो धर्म हो, वह धर्मानुबन्ध है। बाहर से धर्म के समान लगने पर भी अन्दर से जो अधर्म हो, वह धर्माभास है।

धर्म के ज्ञान हेतु क्रमशः वेद, फिर अन्य धर्मशास्त्र और अन्त में लोकाचार का आश्रय लेना चाहिए, ऐसा महाभारत के आश्वमेधिक पर्व में कहते हैं -

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।
द्वितीयं धर्मशास्त्राणि तृतीयं लोकसंग्रहः॥

मनुस्मृति भी इस बात से सहमति व्यक्त करती है। इन विषयों के धर्मबोध में अस्पष्टता होने पर मीमांसा शास्त्र से उसका समाधान करना चाहिए, यथा आचार्य कुमारिलभट्ट का कथन है -

धर्मे प्रमीयमाणे हि वेदेन करणात्मना।

इतिकर्तव्यताभागं मीमांसा पूरयिष्यति॥

धर्माचरण को वर्णभेद, आश्रमभेद, क्षेत्रभेद, कालभेद और उद्देश्यभेदादि से कई अनुशासनों में बद्ध किया गया है। प्रत्येक क्रिया प्रत्येक वर्ण, आश्रम, क्षेत्र, काल और उद्देश्य में समान ही हो, यह आवश्यक नहीं है। बिना कर्ता की स्पष्टता के, दूध का व्यापार करना न धर्म है और न अधर्म है। वैश्य के द्वारा करने पर यही क्रिया धर्म बन जाती है और ब्राह्मण के द्वारा किए जाने पर अधर्म। कुछ कृत्य क्षेत्र के आश्रय से भी विहित और निषिद्ध बन जाते हैं। 'दक्षिणे मातुली कन्या उत्तरे मांसभक्षणम्' आदि के आश्रय से दक्षिण में मामा की पुत्री से विवाह और उत्तर में मांसभक्षण का क्षेत्राचार से समर्थन करते हैं। यद्यपि यह भी शुद्ध धर्म नहीं है किन्तु कालक्षेप की शिष्टसम्मत विप्रतिपत्ति से उस क्षेत्र के लोगों के लिए ग्राह्य हो जाता है। दक्षिण के इस लोकाचार के सम्बन्ध में महर्षि बौधायन का कथन है -

अब्रह्मचारिदाराद्यैः सार्द्धं भोजनकर्म च।
मातुलादिसुतायाश्च विवाहः शिष्टसम्मतः॥

उत्तर के लोकाचार के सम्बन्ध में महर्षि वेदव्यास का कथन है -

समुद्रयानं मांसस्य भक्षणं शास्त्रजीविका।
सीधुपानमुदीच्यानामविगीतानि धर्मतः॥

ऐसे ही यद्यपि सामान्यतः स्त्रियों के लिए शङ्ख बजाने का निषेध शास्त्रों में वर्णित है, क्योंकि इससे लक्ष्मी की हानि होती है, यथा श्रीमद्देवीभागवत में कहते हैं -

स्त्रीणां च शङ्खध्वनिभिः शूद्राणां च विशेषतः।
भीता रुष्टा याति लक्ष्मीस्तत्स्थलादन्यदेशतः॥
(श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, स्कन्ध - ०९, अध्याय - २३, श्लोक - २७/२८)

यही श्लोक थोड़े भेद के साथ ब्रह्मवैवर्तपुराण के प्रकृतिखण्ड, अध्याय - २० के श्लोक - ३१ (कुछ प्रतियों में ३०) में भी प्राप्त होता है। किन्तु ऐसे ही क्षेत्राचार की शिष्टसम्मत विप्रतिपत्ति से "प्राच्यां स्त्रीशङ्खवादनम्" के आधार पर पूर्वदिशा में स्थित असम, बंगाल की स्त्रियां शङ्खवादन करती हैं।

सामान्यतः शास्त्रसिद्धान्त है कि अपने समान गोत्र वाली कन्या से विवाह नहीं करना चाहिए। यदि विवाह करके उससे सन्तान की उत्पत्ति कर ली तो उस सन्तान की चाण्डाल के समान संज्ञा जानकर उनके ही मध्य छोड़ दे और गुरुतल्पगमन का प्रायश्चित्त (चान्द्रायण आदि भी) करके उस सगोत्रा पत्नी का मातृभाव से पालन करें -

न सगोत्रां न समानार्षप्रवरां भार्यां विन्देत।
(बृहद्विष्णुस्मृति, अध्याय - २४, आज्ञा - ९)

परिणीय सगोत्रां तु समानप्रवरां तथा।
त्यागं कृत्वा द्विजस्तस्यास्ततश्चान्द्रायणञ्चरेत्॥
(स्कन्दपुराण, ब्रह्मखण्ड-धर्मारण्यखण्ड, अध्याय - २१, श्लोक - १०)

सगोत्रायां प्रजां जातां चण्डालेषु विनिक्षिपेत्।
गुरुतल्पव्रतं कृत्वा तां रक्षेज्जननीमिव॥
(संस्काररत्नमाला, भाग - ०१, द्वादश प्रकरण)

यह तो अज्ञानता से सगोत्रविवाह हेतु कहा। जानबूझकर सगोत्रविवाह वाले को वृद्धयम ने तो और भी कठोर प्रायश्चित्त बताते हुए

प्राणत्याग करने कहा है - सपिण्डापत्यदारेषु प्राणत्यागो विधीयते। किन्तु शिष्टसम्मत विप्रतिपत्ति में कुछ क्षेत्रभेद से अधर्म भी धर्म का तथा धर्म भी अधर्म का विक्षेपधारक हो जाता है।

जैसे हमने महर्षि बौधायन के वचनों से बताया कि यद्यपि मामा की पुत्री से विवाह निषिद्ध है किन्तु दक्षिण में शिष्टसम्मत विप्रतिपत्ति से उस स्थान के लोगों के लिए यह मान्य हो जाता है, अन्य जनों के लिए नहीं, इसी का समर्थन देवगुरु बृहस्पति भी करते हैं -

उद्रूह्यते दाक्षिणात्यैर्मातुलस्य सुता द्विजैः।
मत्स्यादाश्च नराः पूर्वे व्यभिचाररताः स्त्रियः॥

कर्म भी श्रुतिसम्मत न्याय्य और श्रुतिविरुद्ध वैपरीत्यभेद से व्यवहारप्रभक्त हो जाता है - न्याय्यं वा विपरीतं वा (श्रीमद्भगवद्गीता) अतः स्मृतिकार देवल स्पष्ट करते हैं -

यस्मिन्देशे त्वनाचारो न्यायदृष्टः सुकल्पितः।
स तस्मिन्नेव कर्तव्यो नान्यदेशे स ईरितः॥
यस्मिन्देशे पुरे ग्रामे त्रैविद्ये नगरेऽपि वा।
यो यत्र विहितो धर्मस्तं धर्मं न विचारयेत्॥

जो अधर्म जिस देश में न्यायसम्मत हो, भली प्रकार से स्थापित हो, उस देश में ही वह कृत्य उसके निवासी करें, अन्य जनों के लिए कदापि नहीं। जिस देश, पुर, ग्राम, अपनी अपनी वेदशाखाओं में, नगर आदि में जो धर्म जैसा बताया गया हो, उसका वैसा ही, अन्यथा विचार किए बिना पालन करना चाहिए। शास्त्रे सिद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयम्।

चतुर्वर्गचिन्तामणिकार आचार्य हेमाद्रि, निर्णयसिन्धुकार आचार्य कमलाकरभट्ट, ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्डकार पण्डित ज्वालाप्रसादमिश्रप्रभृति आचार्यों ने शास्त्रालोडन करके मगाख्य शाकद्वीपीय ब्राह्मणों को दिव्य ब्राह्मण की संज्ञा के साथ स्वीकार किया है। भविष्यपुराण के ब्राह्मपर्व में जब गौरमुख मुनि ने "मगो दिव्यो द्विजोत्तमः" कहा तब श्रीकृष्णपुत्र साम्ब ने महर्षि वेदव्यास से "दिव्येति ते कथं प्रोक्ताः", ऐसा प्रश्न किया। महर्षि वेदव्यास ने बहुत विस्तार से शाकद्वीपीय ब्राह्मणों में मगत्व, भोजकत्व, वाचकत्व, दिव्यत्वादि का विस्तार से निरूपण किया है, जो भविष्यपुराण, साम्बपुराण, ग्रहयामलतन्त्र आदि में द्रष्टव्य है।

साम्ब को शापभोग से कुष्ठ होना, उनका सुमन्तु, गौरमुख एवं वेदव्यासजी के अनुग्रह तथा मार्गदर्शन से सूर्याज्ञा प्राप्त करके शाकद्वीप में जाकर दिव्यता से युक्त सूर्यांश शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का आनयन करके जम्बूद्वीप में लाना और सूर्यसम्बन्धी अनुष्ठान से शापमुक्त होना, यह सब इतिहास सुप्रसिद्ध हैं, अतः उनका उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझता हूँ। महर्षि शातातप कहते हैं -

मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रां तथैव च।
समानप्रवराञ्चैव त्यक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥

अपने मामा की पुत्री एवं मातापिता के समानगोत्रप्रवर की कन्या से विवाह यदि हो जाए तो उसका परित्याग करके चान्द्रायणव्रत करे। किन्तु जैसे मामा की पुत्री से विवाह करना सामान्यतः निषिद्ध होने पर भी बौधायन, बृहस्पति, देवल आदि के शिष्टसम्मत विप्रतिपत्तिमीमांसक वचनों के आश्रय से दाक्षिणात्यों के लिए मातुलीकन्या का ग्रहण मान्य हो जाता है, वैसे ही शाकद्वीपीय ब्राह्मणों हेतु पुरभेदप्राधान्यता से सगोत्रविवाह शिष्टसम्मत विप्रतिपत्ति में ग्राह्य हो जाता है, जबकि अन्य ब्राह्मणों में यह अपवाद नहीं।

दिव्य शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के जम्बूद्वीप में आने के बाद ही उनका द्वीप नैमित्तिक रूप से प्रलयीभूत हो गया था, फलतः शाकद्वीपीयों के मात्र बहत्तर पुरों में विभक्त अष्टादशकुल ही शेष बचे थे। कुलरक्षण हेतु माता सत्यवती के आदेश को धर्मानुबन्ध मानते हुए महर्षि वेदव्यासजी ने नियोगविधि से आशीर्वादात्मक गर्भाधान करके पुत्रोत्पादन किया क्योंकि कुलधर्म और जातिधर्म को किसी भी प्रकार बचाना चाहिए, अन्यथा घोर नरक में जाना पड़ता है -

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत॥
(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय - ०१, श्लोक - ४०)

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम॥
(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय - ०१, श्लोक - ४४)

अब कुलधर्म क्या है, इसमें उपर्युक्त श्लोकों के व्याख्यानांश में स्वामिश्री मधुसूदन सरस्वती लिखते हैं - कुलधर्मा असाधारणाश्च। कुलधर्म असाधारण होता है, सबों पर साधारणतः लागू नहीं अपितु मात्र उस कुल पर लागू होता है। स्वामिश्री आनन्दगिरि ने अपनी टीका में लिखा - वंशप्रयुक्ताश्च धर्माः। कुलधर्म वह है, जो उस वंशमात्र में प्रयुक्त है। स्वामिश्री गोपालानन्दमुनि स्पष्ट करते हैं - कुलधर्माः - कुलपरम्परया समागताः स्वासाधारणा धर्माश्च। अपनी कुलपरम्परा से प्राप्त मात्र अपने लिए विहित असाधारण धर्म को कुलधर्म कहते हैं। कुलधर्म पालनीय है -

उत्कृष्टजातिशीलानां गुर्वाचार्यतपस्विनाम्॥
गोत्रस्थितिस्तु या तेषां क्रमादायाति धर्मतः।
कुलधर्मं तु तं प्राहुः पालयेत्तं तथैव तु॥
(बृहत्कात्यायनस्मृति, श्लोक - ८४-८५)

स्मृतिकार कात्यायन का कथन है - उत्कृष्ट कुल, जाति और शील वाले गुरु, आचार्य एवं तपस्वियों की जो गोत्रस्थिति धर्मानुसार कालक्रम से आती है, उसे कुलधर्म कहते हैं एवं उसका "उसी रूप में पालन" करना चाहिए।

स्वद्वीपनाशान्तर बचे खुचे अष्टादश पुण्यात्मा शाकद्वीपीय परिवारों के चित्त में अपने समाज के संरक्षण की चिन्ता व्याप्त होने पर उन्होंने शाकद्वीप में चली आ रही गोत्रस्थिति के आश्रय से यह विचार किया कि शाकद्वीपीयों के विवाह में 'पुर' की प्रधानता होगी, गोत्र की नहीं। चूंकि मगसंज्ञक शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का सृजन स्वयं भगवान् सूर्य ने निक्षुभा देवी के माध्यम से किया था, फलतः वे वंशविस्तार हेतु आर्षगोत्रमर्यादा में अनन्य नहीं थे। शाकद्वीपीयों में पुर की प्रधानता होती है। पुर क्या है ?

आरान्तानि तु विंशति श्रुतियुतार्कान्तानि च द्वादशा -
दित्यान्तानि च मण्डलान्तकिरणान्तान्तानि च द्वादशः।
तान्येतानि पुराणि तत्र वसतां षट्कर्मणां सिद्धिता
शौचाचारवशीकृता जनपदाः साक्षाद्रविं मेनिरे॥०१॥
उर्वारं प्रथमं द्वितीयमभितः पुण्यं खनेट्वारकं
छेर्यारं तु तृतीयकञ्च मखपारं तुर्यकं पञ्चमम्।
विख्यातञ्च पुरारमुग्रभवनं षष्ठं बुधैः सेवितं
देकुल्यारमतोऽथ सप्तमभलुन्यारं जगुः पण्डिताः॥०२॥
(मगतिलक, तृतीय खण्ड, द्वासप्ततिपुरवर्णनम् 'पाण्डुलिपि')

चौबीस आरान्त, बारह अर्कान्त, बारह आदित्यान्त, बारह मण्डलान्त एवं बारह किरणान्त, ऐसे बहत्तर पुरों में शाकद्वीपीय ब्राह्मण विभाजित हैं। इन्हीं बहत्तर पुरों में रहते हुए शाकद्वीपीय ब्राह्मण विप्रोचित षट्कर्म (यज्ञ करना-कराना, दान देना-लेना, पढ़ना-पढ़ाना) में सिद्धहस्त होकर पवित्र आचरण के साथ रहते हुए साक्षात् सूर्यवत् प्रतीत होते थे। उदाहरणस्वरूप - आरान्तों में प्रथम उर्वार, द्वितीय खण्टवार, तृतीय छेर्यार, चतुर्थ मखपार, पञ्चम पुरार, षष्ठ दे'व'कुल्यार एवं सप्तम भलुन्यार होते हैं। इसी प्रकार अन्यों को भी

कुलधर्मशासक ग्रन्थों में वर्णित किया गया है।

'उर्वार' से प्रारम्भ करके 'वौर्यार' पर्यन्त शाकद्वीपीयों के चौबीस आरान्त पुर होते हैं। 'उल्वार्क' से प्रारम्भ करके 'उल्लूञ्चार्क' पर्यन्त शाकद्वीपीयों के बारह अर्कान्त पुर होते हैं। 'वरुणादित्य' से प्रारम्भ करके 'देवहुलासादित्य' पर्यन्त शाकद्वीपीयों के बारह आदित्यान्त पुर होते हैं। 'परिशामण्डल' से प्रारम्भ करके 'वटसारमण्डल' पर्यन्त शाकद्वीपीयों के बारह मण्डलान्त पुर होते हैं। 'पञ्चहाकरण' से प्रारम्भ करके 'कौशिककरण' पर्यन्त शाकद्वीपीयों के बारह करणान्त/किरणान्त पुर होते हैं। मैं स्वयं शाकद्वीपीयों की पुरव्यवस्था के प्रथम समूह आरान्त के दूसरे प्रकार खण्टवार पुर से सम्बन्धित हूँ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के कुलाचार में वर्णित शिष्टसम्मत विप्रतिपत्ति मीमांसा के आधार पर "ततो निवेशितं तेषां मया साम्ब पुरं स्मर, इत्यादि सूर्यवाक्येन शाकद्वीपे यौनसम्बन्धेन मगैरधिष्ठितानि यानि पुराणि आर्यावर्ते च तथाभेदेनाधिष्ठितानि यानि पुराणि तत्तत्पुरभेदमाश्रित्यैव मगानां विवाहो न तु गौणवशिष्ठादिगोत्रभेदमादायेति बोद्ध्यम्।" आदि कुलधर्मोपदेशक मगतिलकादि शिष्टकुलवृद्धसम्मत विप्रतिपत्युपदेष्टा ग्रन्थों के विधान से समझना चाहिए कि पुरभेदाश्रित वैवाहिक विधि के कारण "यदि पुरभेद हो रहा हो" तो शाकद्वीपीयों में सगोत्रविवाह का दोष नहीं लगता है, शेष ब्राह्मणों के सापेक्ष यह एक अपवाद के रूप में मान्य है। फिर भी पुर, गोत्र, प्रवर सब भिन्न हो, सपिण्डसम्बन्ध-हेतुसम्बन्ध आदि से इतर वरकन्या हों तो सर्वोत्तम है। यदि न हों तो स्वकुलवृद्धगृहीत पूर्वोक्तविधान से पुरभेदाश्रित सगोत्रीय विवाह मात्र शाकद्वीपीय ब्राह्मणों हेतु सामान्यतः ग्राह्य हो जाता है।

विनय झा का मानना है कि उनकी पोस्ट पर किसी कलियुगी व्यक्ति का सन्दर्भ देकर कुतर्क न किया जाए अतः आशा करता हूँ कि वे सत्ययुग के अथवा कम से कम प्राक्कलि तो होंगे ही। मैंने इससे पूर्व उनके सन्दर्भ में समर्थन/विरोध में कभी कुछ कहा नहीं है किन्तु यदि उन्हें ये पच नहीं रहा है, तो अस्तु। उन्हें यह भी लगता है कि मैं अपने कहे को ही प्रमाण मानता हूँ, जबकि यह बात मुझसे जुड़ा कोई भी व्यक्ति जानता है कि मैंने जो भी लिखा या कहा है, उसे प्रमाण नहीं बताया। ऐसा नहीं है कि मैं कह रहा हूँ अतः प्रमाण है, अपितु मैंने सदैव यही कहा है कि अमुक शास्त्रवाक्य में इन कारणों से ऐसी बात का उल्लेख है, अतः मैं उसके आधार पर ऐसा कह रहा हूँ। मैं अपने कथन के आधार पर शास्त्रों को नहीं चलाता अपितु शास्त्रों के आधार पर अपनी बात कहता हूँ।

विनय झा की प्राचीन वृत्ति रही है कि ये शास्त्रीय सिद्धान्त को यथावत् स्वीकार न करके छद्म आर्य समाजी के समान उसमें मानवीकरण करके बताते हैं। उन्होंने सातों द्वीप, कुलपर्वत, समुद्र, किंवा चौदहों भुवनों को भी अमेरिका से जापान के मध्य फंसा रखा है। मैं तो कहता हूँ कि यत्पिण्डे तदण्डे से इन्हें स्वयं को ही विश्वोदर घोषित करके ब्रह्माण्ड को अपने पेट में स्थित सिद्ध कर देना चाहिए। देवताओं के दिव्य लीलाओं और इतिहास की समझ न होने के कारण इन्होंने कई बार ऐसा लेखन किया कि अमुक टापू या कबीले या सभ्यता के लोग इतने ईसा पूर्व में ऐसा मानते थे तो इस देवता या स्वरूप की कल्पना कर ली, आदि आदि। कुल मिलाकर धार्मिक चरित्रों के ऊपर जैसा मूर्खतापूर्ण लेखन देवदत्त पटनायक अथवा अमीश त्रिपाठी का है, कुछ वैसा ही विनय झा का भी मैं समझता हूँ।

तकनीक, ज्योतिष, शब्दशास्त्र एवं अन्यान्य विषयों के ये पण्डित तो हैं ही, इसमें मुझे समस्या नहीं है किन्तु पन्नों का पण्डित होना और शब्दब्रह्म का आराधक होना, दोनों में बहुत भेद है। हमने जो शास्त्रज्ञान प्राप्त किया, चाहे जितना भी किया, उसका एक बड़ा भाग मन्त्रपूत देवाराधन एवं पूर्वजन्मार्जित है तथा बहुधा मेरे साथ ऐसा होता है कि इह जन्मन्यनधीत विषय भी इच्छावश्यकतानुसार इष्टप्रसादवशादधीत हो जाते हैं। देवतत्त्वों की लीला, अवतार और कथा योगमाया के आवरण के कारण मूढ़जन बिना इष्टकृपा के नहीं समझ पाते। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं -

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥

विनय झा ने मुझपर कटाक्ष करते हुए शास्त्रों की प्रामाणिकता पर इस उदाहरण के साथ प्रश्नचिह्न उठाया है कि महाभारत में एक स्थान पर वर्णित है कि महिषासुर का वध कुमार कार्तिकेय ने किया तथा महाभारत में ही दूसरे स्थान पर वर्णित है कि देवी दुर्गा ने किया।

जनसामान्य की दृष्टि में विनय झा लगभग सर्वज्ञ की श्रेणी में आने लगे हैं और उनके द्वारा प्रसारित इस भ्रम से बहुत दुष्परिणाम होंगे अतः मैं अन्य विषय पर तो अभी नहीं, किन्तु महिषासुर के विषय में शास्त्रीय रहस्यों को अवश्य प्रकाशित करूँगा।

मुझे एक व्यक्ति ने बताया कि सम्भवतः विनय झा ऐसा मानते हैं कि हड़प्पा की सभ्यता के लोग महिषासुर की पूजा करते थे, जिनका विनाश किसी कार्तिकेय या दुर्गा ने किया तो कह दिया गया कि कार्तिकेय और दुर्गा ने महिषासुर को मारा। विनय झा के कई लेखों में नाग, किन्नर, किम्पुरुष, असुर आदि साधनागम्य मानवोत्तर योनियों को भी कबीला बता कर प्रस्तुत कर दिया गया है। मुझे हंसी आती है इस बात पर कि मात्र दो महिषासुर की बात सुनकर विनय झा ने ऐसा भ्रम पाल किया, उन्हें जब और भी महिषासुरों के बारे में ज्ञात होगा तो वे क्या करेंगे, प्रक्षिप्तवाद के समर्थन के अलावा ?

सर्वप्रथम उस महिषासुर की बात करते हैं जो विश्वप्रसिद्ध है। ब्रह्मदेव के मानस पुत्र मरीचि हुए जिनके पुत्र महर्षि कश्यप का विवाह दक्ष प्रजापति की तेरह (कश्यपाय त्रयोदश) अथवा ग्रन्थान्तर से चौदह पुत्रियों से हुआ था जिनमें एक का नाम दनु भी था। कश्यप एवं दनु के संयोग से एक बार दो श्रेष्ठ दानवों की उत्पत्ति हुई, रम्भ एवं करम्भ। जैसा कि वेदव्यास जी ने श्रीमद्देवीभागवत में वर्णन किया है -

दनोः पुत्रौ महाराज विख्यातौ क्षितिमण्डले।
रम्भश्चैव करम्भश्च द्बावास्तां दानवोत्तमौ॥

इन दोनों भाईयों ने सन्तान की प्राप्ति की इच्छा से तपस्या करना आरम्भ किया, जिसमें रम्भ अपने चारों ओर अग्निमण्डल स्थापित करके एवं करम्भ सरोवर में प्रविष्ट होकर तपस्या करता रहा। इनकी तपस्या से आशंकित देवराज इन्द्र ने सरोवर में तपस्यारत करम्भ का वध कर दिया जिसके वियोग में रम्भ अग्निमण्डल के समक्ष आत्महत्या का प्रयास करने लगा। उस समय अग्निदेव ने उसे रोका और वरदान मांगने कहा एवं रम्भ ने देवता, मनुष्य और दानवों से अवध्य त्रिलोकविजेता पुत्र का वरदान मांग लिया -

यदि तुष्टोऽसि देवेश देहि मे वाञ्छितं वरम्।
त्रैलोक्यविजयी पुत्रः स्यान्नः परबलार्द्दनः॥

इसी रम्भ का पुत्र महिषासुर था जिसका वध भगवती ने किया और यही रम्भ (उसी कल्प के) अगले जन्म में रक्तबीज भी बना जहाँ इसका वध भी भगवती ने ही किया। इतनी कथा लगभग सभी जानते ही हैं, अब जो रहस्यकथा है, उसका वर्णन करते हैं। रम्भ को अग्निदेव ने पुत्र का वरदान दे तो दिया था किन्तु रम्भ फिर भी दीर्घकाल तक तपस्यारत ही रहा और उसने भगवान् महादेव की आराधना की।

आराधितो महादेवो रम्भेण सुरवैरिणा।
चिरेण स च सुप्रीतस्तपसा तस्य शङ्करः॥

महर्षि और्व ने कालिकापुराण में वर्णन किया है कि भगवान् महादेव ने रम्भ को वरदान मांगने हेतु आदिष्ट किया तो उसने तीन जन्मों तक आप मेरे पुत्र बनें, ऐसा वरदान मांग लिया।

अपुत्रोऽहं महादेव यदि ते मय्यनुग्रहः।
मम जन्मत्रये पुत्रो भवान् भवतु शङ्कर॥

भगवान् महादेव ने ऐसा ही वरदान दिया और तीनों जन्मों में महिषासुर के रूप में अपने एक अंश से अवतरित हुए। यह रम्भ दैत्य भी तीनों कल्पों की सृष्टि में तीनों बार रम्भ के ही नाम से आया -

त्रिषु जन्मसु पुत्रोऽभूत् रम्भस्य भगवान् शिवः।
सृष्टित्रयं स रम्भोऽपि रम्भ एव व्यजायत॥

मूलतः देवताओं के अभिमान को दूर करने और शक्तितत्त्व की महिमा को प्रकाशित करने हेतु ही भगवान् शिव ने महिषासुर के रूप में आसुरी अवतार लिया है, ऐसा समझना चाहिए। भगवान् शिव ने भगवती को कहा भी है कि मेरे द्वारा यह जो महिषासुर का स्वरूप धारण किया है, इसका पूर्वापर कालानुसार योगबल से आप संहार कर दें -

मदीयो माहिषः कायस्त्वया देवि जगन्मयि।
हन्तव्यः सततं योगयुक्तः पूर्वे परेऽपि च॥

महिषासुर को अज्ञान का और देवी को ज्ञानबुद्धि का प्रतीक जानना चाहिए और ज्ञान से अज्ञान का निग्रह होता है, यही इस लीला का शैक्ष्य है। वराहपुराण में स्पष्ट किया भगवान् ने -

अथवा ज्ञानशक्तिः सा महिषोऽज्ञानमूर्त्तिमान्।
अज्ञानं ज्ञानसाध्यन्तु भवतीति न संशयः॥

महिषासुर को बल का दर्प तो था ही, उसमें वरदान के अनुसार कामरूप सिद्धि भी थी, वह जैसा चाहे, वैसा स्वरूप बना लेता था क्योंकि रम्भ ने अग्निदेव से ऐसा ही पुत्र मांगा था -

ततोऽब्रवीद्वचो रम्भो वरं चेन्मे ददासि हि।
त्रैलोक्यविजयी पुत्रः स्यान्मे त्वत्तेजसाधिकः॥
अजेयो दैवतैः सर्वैः पुम्भिर्दैत्यैश्च पावक।
महाबलो वायुरिव कामरूपी कृतास्त्रवित्॥

तो एक बार इसने अत्यन्त सुन्दरी रमणी का स्वरूप बनाया और कात्यायन मुनि के आश्रम के निकट चला गया। उस स्थान पर कात्यायन के शिष्यगण तपस्यारत थे। महिषासुर ने जो मायामयी स्त्री का रूप बनाया था, उसे देखकर वे मोहित हो गए और उनकी तपस्या भंग हो गयी, जिससे क्रुद्ध होकर कात्यायन मुनि ने महिषासुर को यह शाप दिया कि तुम्हारा वध किसी स्त्री के हाथों ही होगा। कालिकापुराण में स्वयं महिषासुर ने यह बताया है -

यस्मात्त्वया मे शिष्योऽयं मोहितस्तपसश्च्युतः।
कृतस्त्वया स्त्रीरूपेण तत् त्वां स्त्री निहनिष्यति॥

अन्य मत्स्यपुराण, देवीभागवत आदि ग्रन्थों के आधार पर वर्णन है कि महिषासुर को ब्रह्मदेव ने एक बार स्वयं वरदान भी दिया है कि उसका वध स्त्री के अतिरिक्त कोई और न कर सके - योषिद्वध्यः पुरोक्तोऽसि साक्षात् कमलयोनिना अथवा अवध्यः सर्वभूतेभ्यस्त्वान्तु योषिद्धनिष्यति।

प्रथम रम्भकल्प में महिषासुर का उद्धार जब हुआ तो उसके वध हेतु भगवती ने उग्रचण्डा का अवतार लिया। दूसरे कल्प में उसका उद्धार भद्रकाली के स्वरूप में किया है। तीसरे कल्प में कात्यायनी के नाम से किया है और तीनों कल्पों का सम्मिलित स्वरूप दुर्गा अथवा महिषमर्दिनी के नाम से विख्यात है। प्रथम और द्वितीय कल्प में सब ठीक ही था किन्तु तीसरे कल्प के समय अपनी मृत्यु से पूर्व महिषासुर ने भगवती की स्तुति की और कहा कि ये कब तक चलेगा ? फिर देवी दुर्गा ने उसे सम्पूर्ण रहस्य बताया। महिषासुर ने वरदान मांगा कि यज्ञ में मेरे नाम से भी भाग निश्चित हो एवं मेरा मोक्ष हो तब भगवती ने कहा कि पहले के जन्मों में तो तुमने ऐसा कुछ मांगा नहीं था, साथ ही यज्ञ में भाग सबों का पूर्वनिश्चित होता है, मैं अलग से कहाँ दूँ ? किन्तु तुमने मांगा है तो तुम मेरे चरणों के नीचे निवास करो और मेरे गण के रूप में स्वर्ग के देवता तथा पाताल के राक्षसों से पूजित होकर देवीसम्बन्धी यज्ञभाग को प्राप्त करो। कालिकापुराण के साठवें अध्याय में भगवती ने महिषासुर को कहा -

उग्रचण्डेति या मूर्तिर्भद्रकाली ह्यहं पुनः।

यया मूर्त्या त्वां हनिष्ये सा दुर्गेति प्रकीर्तिता॥
एतासु मूर्तिषु सदा पादलग्नो नृणां भवान्।
पूज्यो भविष्यति स्वर्गे देवानामपि रक्षसाम्॥
आदिसृष्टावुग्रचण्डामूर्त्या त्वं निहितः पुरा।
द्वितीयसृष्टौ तु भवान् भद्रकाल्या मया हतः॥
दुर्गारूपेणाधुना त्वां हनिष्यामि सहानुगम्।
किन्तु पूर्वं न गृहीतस्त्वं मया पादयोस्तले॥
अधुना प्रार्थितवरो गृहीतः पूर्वकामयोः।
गृहीतव्यश्च पश्चात् त्वं यज्ञभागोपभुक्तये॥

फिर भगवती ने पिछले जिन दो जन्मों में महिषासुर को उग्रचण्डा और भद्रकाली के रूप में मारा था, उनका भी दर्शन कराया और महिषासुर ने प्रणाम भी किया।

उग्रचण्डा भद्रकाली देव्या मूर्तिद्वयं तथा।
महिषः प्रणनामाशु दृष्ट्वा विस्मयमागतः॥

जब भगवती इस जन्म में महिषासुर को मार रही थीं तो पूर्वदेहों का दर्शन करके उसका मन भय, चिन्ता और अवसाद से व्याप्त हो गया, प्राणत्याग के समय उसे खून की उल्टियां होने लगीं -

वमद्रक्तं महाकायं दृष्ट्वा पूर्वतनुं स्वकम्।
भयं प्राप्यासुरः सोऽथ शुशोच च मुमोह च॥

किन्तु फिर भी स्वयं को संभाल कर उसने यह वरदान मांगा कि यज्ञभाग के उपभोग हेतु मेरा शरीर बचा रहे, मेरा पुनर्जन्म न हो और देवताओं से मेरा कोई वैर न रहे।

यथाहं न सुरैः सार्धं करिष्ये वैरमद्भुतम्।
तथा मां कुरु भो देवि न जन्म प्रलभे यथा॥

तब भगवती ने कहा कि पूर्वकाल के निश्चित (शापवरदानादि) विधान के अनुसार अभी तो मैं तुम्हारा वध करूंगी ही किन्तु मेरे और भगवान् शिव के (अंशभूत) चरणों का स्पर्श करने से तुम्हें पुनः यज्ञभाग को प्राप्त करने हेतु स्वस्थ शरीर प्राप्त होगा और देवताओं से तुम्हारा वैर भी नहीं रहेगा। आगामी तीस हजार करोड़ एवं एक सौ आठ (लक्षणा में अनन्त) कल्पों तक तुम्हारा पुनर्जन्म नहीं होगा।

आराधिताऽहं भवता वरो दत्तो मया तव।
वध्यश्च त्वं ममैवेह नात्र कार्या विचारणा॥
यत्वया प्रार्थितं चापि सर्वैः सुरगणैः सह।
विरोधो मे सदा मा भूदिति चापि भविष्यति॥
मत्पादतलसंस्पर्शाच्छरीरं तव दानव।
यज्ञभागोपभोगाय विशीर्णं न भविष्यति॥
तव जीवात्मभिः प्राणाः सर्व एव महासुरः।
हरस्य पादसंयोगाच्चिरं स्थास्यति केवलम्॥
कल्पकोटिसहस्राणि त्रिंशत्वं महिषासुर।
शतानि चाष्टावन्यानि जन्म ते न भविष्यति॥

एक तो लोगों को यही नहीं पता कि महिषासुर थे कितने। फिर उसमें देवी दुर्गा ने जिसे मारा वो महिषासुर कितने जन्मों तक आता रहा और मारा जाता रहा। उसमें भी अब एक और भी गुप्त रहस्य बताता हूँ। यह रम्भपुत्र महिषासुर तो शिवावतार था, तीन जन्मों तक देवी के हाथों उद्धृत होता रहा। इसके अतिरिक्त एक दूसरा महिषासुर भी था जिसका वध भगवती दुर्गा ने ही किया है किन्तु वह भिन्न है। शिवावतार रम्भपुत्र त्रिजन्मा महिषासुर (जो विश्वप्रसिद्ध है) ने तीन मन्वतर तक राज्य किया है, कालिकापुराण के साठवें अध्याय में उसने स्वयं भगवती से कहा -

मन्वन्तरत्रयं यावदासुरं राज्यमुत्तमम्।
अकण्टकं मया भुक्तमनुतापो न विद्यते॥

किन्तु विष्णुकल्प में जो महिषासुर हुआ, उसने स्वायम्भुव तथा स्वारोचिष, दो ही मन्वतर तक राज्य किया है और फिर देवी के हाथों उसका उद्धार हुआ है। भविष्यपुराण के प्रतिसर्गपर्व में वर्णन है कि आपव नाम के एक ब्राह्मण वाममार्गी विधि से देवी भद्रकाली की आराधना करते थे जिन्हें देवी ने वरदान में वरुण का पद दिया था। अर्थात् वरुणदेव पहले आपव नामक भद्रकाल्युपासनारत ब्राह्मण थे। उन्हीं आपव ने विष्णुकल्प के महिषासुर, रुद्रकल्प के ब्रह्माण्डरावण और ब्रह्मकल्प के मुरासुर का वर्णन किया है। संक्षेप में समझें कि -

१) तीन मन्वतर तक राज्य करने वाले शिवावतार महिषासुर का वध रम्भकल्प में भगवती ने किया और विष्णुकल्प में दो मन्वतर तक राज्य करने वाले महिषासुर को भी उन्होंने ही मारा। इस प्रकार अनेक महिषासुर हुए।

२) पाद्मसारस्वतादिकल्प वाले दशमुख लंकापति रावण का वध श्रीरामजी ने किया, जो प्रसिद्ध है और उन्हीं के काल में अद्भुतरामायण में वर्णित पुष्करद्वीप वाले शतानन रावण का वध श्रीसीताजी ने किया। किन्तु रुद्रकल्प वाले एक दूसरे सहस्रानन (एक हज़ार मुख वाले) ब्रह्माण्डरावण का वध भी सीताजी ने ही किया है जिसका वर्णन शैवरामायण एवं भविष्य पुराण में मिलता है। उसकी उत्पत्ति रुरोदमान भगवान् रुद्र के ही मुख से हुई थी। इस प्रकार अनेक रावण भी हुए। एक तो नीलमत पुराण में वर्णित काश्मीरी रावण भी किसी काल में हुआ था।

३) श्वेतवाराह कल्प में नरकासुर का प्रहरी मुर नामक असुर हुआ जिसका वध भगवान् श्रीकृष्ण ने किया और मुरारि कहलाए, जो प्रसिद्ध है। ब्रह्मकल्प में तालजङ्घासुर का पुत्र भी मुर हुआ जिसका वध भगवती ने (कुमारी सप्तहायनी) सात वर्ष की कन्या कुमारी का रूप धारण करके किया।

प्रमाण हेतु आपवकृत भद्रकालीस्तुति के मूल श्लोक भविष्यपुराण के प्रतिसर्गपर्व, अध्याय सोलह से ग्रहण करें -

आपव उवाच
विष्णुकल्पे पुरा चासीद्दानवो महिषासुरः।
कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथैर्वाजिगजैर्युतः॥
त्रैलोक्यं स्ववशे कृत्वा महेन्द्रस्स तदाभवत्।
स्वारोचिषान्तरः कालो गतो राज्यं प्रकुर्वतः॥
×××××××××××
रुद्रकल्पे पुरा चासीद्रुदच्छम्भुमुखाद्दिवि।
रावणश्च सहस्रास्यो जातो ब्रह्माण्डरावणः॥
×××××××××××
ब्रह्मकल्पे पुरा चासीत्तालजङ्घान्वयोद्भवः।
मुरो नाम महादैत्यो ब्रह्मणो बलदर्पितः॥
×××××××××××

इस प्रकार आपने अब तक दो प्रकार के महिषासुर जाने। एक तो रम्भकल्प का त्रिजन्मा त्रिमन्वतरराज्यकर्ता महिषासुर और दूसरा

विष्णुकल्प का द्विमन्वतरराज्यकर्ता महिषासुर। इतना ही नहीं, मय दानव और रम्भा का भी एक पुत्र महिषासुर था। ब्रह्माण्डपुराण, मध्यभाग के अध्याय ०६ में -

मयस्य जाता रम्भायां पुत्राः षट्च महाबलाः॥
मायावी दुन्दुभिश्चैव पुत्रश्च (वृषश्च) महिषस्तथा।
कालिकश्चाजकर्णश्च कन्या मन्दोदरी तथा॥

मयदानव ने रम्भा के गर्भ से मायावी, दुन्दुभि, महिष, कालिक और अजकर्ण, इन पुत्रों को तथा मन्दोदरी नाम वाली कन्या, इन छः सन्तानों को जन्म दिया। वायुपुराण के उत्तरार्ध, अध्याय ०७ में भी इस मयपुत्र महिषासुर का उल्लेख मिलता है किन्तु वहाँ वृष नामक एक और पुत्र का वर्णन है, जिसके अनुसार छः पुत्र और एक पुत्री की बात सिद्ध होती है। एक महिषासुर के पिता का नाम रम्भ और एक की माता का नाम रम्भा। आनन्द ही आनन्द। वैसे यह मयपुत्र महिषासुर बहुत प्रसिद्ध नहीं हुआ। इसके भाई मायावी और दुन्दुभि को वानरराज वालि ने मारा था एवं इसकी बहन मन्दोदरी का विवाह दशमुख लंकापति रावण से हुआ था।

अब हम उस महिषासुर की चर्चा करेंगे जिसे कुमार कार्तिकेय ने मारा था। यह महिषासुर तारकासुर का सहयोगी था। इसकी वंश परम्परा का भी अवलोकन करें। महर्षि कश्यप की पत्नी दिति से हिरण्यकशिपु का जन्म हुआ, जिसकी कयाधू नामक पत्नी से ह्राद, अनुह्राद, संह्राद एवं प्रह्राद, ये चार पुत्र हुए एवं सिंहिका नाम की कन्या हुई। इसमें अनुह्राद की सूर्या नाम वाली पत्नी के पुत्र पुलोमा, बाष्कल और महिषासुर पुत्र हुए -

अनुह्रादस्य सूर्यायां बाष्कलो महिषस्तथा।
(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध - ०६)

अनुह्रादस्य सूर्यायां पुलोमा महिषस्तथा।
(शिवपुराण, उमासंहिता)

अब यह महिषासुर तारकासुर का सहयोगी था। तारकासुर का भी संक्षिप्त परिचय जान लें। महर्षि कश्यप की पत्नी दिति ने देवराज इन्द्र के वध की कामना से एक पराक्रमी पुत्र को प्राप्त करने हेतु एक वर्ष का व्रत किया था जिसे खण्डित करने हेतु आत्मरक्षा में देवराज ने योगबल से दिति के गर्भ में पहले रहे भ्रूण के पहले सात और फिर और सात-सात, ऐसे उनचास टुकड़े कर दिए थे। ये उनचास टुकड़े देववत्सर कल्प में लक्ष्मीपुत्र देवसख (उपैतु मां देवसखः) और कालान्तर में मरुद्गण के नाम से विख्यात हुए तथा इन्द्र के मित्र बने। उस समय दिति ने तो कुछ नहीं कहा किन्तु इन्द्र के प्रति उनका वैर कम नहीं हुआ अतः उन्होंने फिर से तपस्या की और वज्राङ्ग/वज्राङ्गद नामक पुत्र को प्राप्त किया। इस वज्राङ्ग ने इन्द्र को स्वर्ग में जाकर बांध दिया और पैर से घसीटते हुए दिति के पास लाकर मारने की चेष्टा की तो महर्षि कश्यप ने इन्द्र को बचाने हेतु कहा कि अपमान भी मृत्यु के ही समान है अतः इन्द्र अपमानित होने से मृतक ही हैं, सो इन्हें छोड़ दिया जाए।

पिता की बात मानकर वज्राङ्ग ने इन्द्र को मुक्त कर दिया और स्वयं अपनी पत्नी वराङ्गा के साथ तपस्या करने पर्वत पर चला गया किन्तु इन्द्र इस अपमान को भूल न सके और उन्होंने बन्दर, सर्प, सियार आदि का रूप धारण करके बहुत प्रकार की माया का प्रयोग करके तपस्यारत वज्राङ्ग को क्षति पहुंचाने का प्रयास किया जिससे दुःखी होकर वज्राङ्ग की पत्नी वराङ्गा, जो ब्रह्मदेव की मानसी कन्या भी थी, उसने उस पर्वत को शाप देने का विचार किया। पर्वतराज ने शापभय से साकार विग्रह धारण करके कहा कि इसमें उसका दोष नहीं, यह इन्द्र का कुचक्र है, तब वराङ्गा रोने लगी। अपनी पत्नी को रोता हुआ देख कर वज्राङ्ग ने पूछा तो उसने कहा कि उसे एक ऐसा पुत्र चाहिए तो दुःखों से उसे तारे। तब वज्राङ्ग ने ब्रह्मदेव की उपासना की एवं ब्रह्मदेव ने कहा कि पुत्र ! तुम मेरी और तपस्या मत करो, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हें ऐसे महाबली पुत्र का वरदान दूंगा जो दुःख से तुम्हारा तारणहार बनेगा और तारक नाम वाला होगा -

अलं ते तपसा वत्स मा क्लेशे दुस्तरे विश।

पुत्रस्ते तारको नाम भविष्यति महाबलः॥
(मत्स्यपुराण, अध्याय - १४७, श्लोक - १७)

पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड में भी यह वृत्तान्त है। पराक्रमी तारकासुर के जन्म लेते ही उसे कुजम्भासुर और महिषासुर आदि ने दानवराज के पद पर अभिषिक्त कर दिया -

जातमात्रस्तु दैत्येन्द्रस्तारकश्चण्डविक्रमः।
अभिषिक्तोऽसुरैः सर्वैः कुजम्भमहिषादिभिः॥
(मत्स्यपुराण, अध्याय - १४७, श्लोक - २७)

मत्स्यपुराण में ही कहते हैं -

वज्राङ्गो नाम दैत्योऽभूत्तस्य पुत्रस्तु तारकः।
सुरानुद्वासयामास पुरेभ्यः स महाबलः॥

फिर यह तारकासुर तपस्या करता है, शिवजी के औरस पुत्र से ही मेरा वध हो, ऐसा वरदान मांगता है और महिषासुर के साथ मिलकर बहुत उत्पात मचाता है। तब देवताओं की प्रार्थना पर भगवान् नारायण यह भविष्यवाणी करते हैं -

सा शङ्करात् स्वतेजोंऽशं जनयिष्यति यं सुतम्।
स हनिष्यति दैत्येन्द्रं महिषं सपदानुगम्॥
(वामनपुराण, अध्याय २१, श्लोक - २०)

वह देवी (पार्वती) भगवान् शिव के अंश से जिस पुत्र को जन्म देगी, वह दैत्यराज महिषासुर को उसके सहयोगियों के साथ मारेगा। पर्वतराज हिमालय को भी महर्षि पुलस्त्य ने यही बताया कि भगवान् शिव से ही तुम पार्वती का विवाह करना। उनसे जो पुत्र होगा, वही तारकासुर और महिषासुर को मारेगा -

यस्त्वस्यां भूतपतिना पुत्रो जातो भविष्यति।
स हनिष्यति दैत्येन्द्रं महिषं तारकं तथा॥
(वामनपुराण, अध्याय - ५२, श्लोक - ५८)

कुमार कार्तिकेय ने इसी तारकासुर के सहयोगी अनुह्लादपुत्र महिषासुर को मारा है - सतारकं हि महिषं विदध्वं निहतं रणे (वामनपुराण)। सेनापति के रूप में भी अभिषेक के बाद वामनपुराण में यही कहा गया है -

सेनायाः पतिरस्त्वेष देवगन्धर्वकिन्नराः।
महिषं घातयत्वेष तारकं च सुदारुणम्॥

भगवान् नारायण ने कुमार कार्तिकेय के विजय और महिषासुर के वध की कामना से आशीर्वाद भी दिया -

श्रृणु स्वस्त्ययनं पुण्यं यत्प्राह भगवान् हरिः।
स्कन्दस्य विजयार्थाय महिषस्य वधाय च॥

कुमार कार्तिकेय की इस महायुद्ध में रक्षा हो, तारकासुर से वे सुरक्षित रहें, इस हेतु भगवान् शिव ने अपने पुत्र कार्तिकेय को श्रीरामरक्षास्तोत्र से अभिमन्त्रित किया, ऐसा आनन्दरामायण में महर्षि वाल्मीकि ने वर्णन किया है। कुमार कार्तिकेय के प्राकट्य से पूर्व देवताओं ने सेनापति के रूप में मान्धातापुत्र महाराज मुचुकुन्द को नियुक्त किया था। जब देवासुरसंग्राम में महाराज मुचुकुन्द ने

तारकासुर को मारने हेतु ब्रह्मास्त्र चलाने का निश्चय किया तो देवर्षि नारद ने उन्हें रोकते हुए बताया कि इसकी मृत्यु मनुष्य से नहीं, शिवपुत्र कुमार के हाथों ही होगी -

एनं हन्ता कुमारश्च कुमारोऽयं शिवात्मजः॥
तस्माद्भवद्भिः स्थातव्यमैकपद्येन युध्यताम्।
तिष्ठ त्वं चायतो भूत्वा मुचुकुन्द महामते॥
(स्कन्दपुराण, माहेश्वरखण्ड/केदारखण्ड, अध्याय - २९)

कुमार कार्तिकेय से युद्ध के समय महिषासुर का जो वर्णन है, जैसे जम्भ और कुजम्भ के साथ मिलकर वह सेना के आगे खड़ा था, उसके रथ में ऊंट, हाथी और घोड़े लगे थे, उसके झंडे में सियार का चिह्न था, आदि विस्तार में मत्स्यपुराण, पद्मपुराण आदि में द्रष्टव्य हैं -

तेषामग्रेसरो जम्भः कुजम्भोऽनन्तरस्ततः।
महिषः कुञ्जरो मेघः कालनेमिर्निमिस्तथा॥
××××××××××××
महिषस्य तु गोमायुं केतोर्हैमं तदाभवत्।
××××××××××××
रथस्तु महिषस्योष्ट्रैर्गजस्य तु तुरङ्गमैः॥
××××××××××××

तारकासुर के सहयोगी इस महिषासुर का सेवक पातालकेतु नामक दैत्य था, जो गालव मुनि का आश्रम में शूकर का स्वरूप धारण करके उत्पात करने के कारण कुमार कार्तिकेय के हाथों दण्डित होकर भागा था। इसने ही जाकर तारकासुर और महिषासुर के वध का समाचार सुनाकर अन्धकासुर आदि को भड़काया था। सात दिनों की ही अवस्था वाले कार्तिकेय से युद्ध होने के बाद तारकासुर तो मर गया -

तस्मात्तु स समुद्भूतो गुहो दिनकरप्रभः।
स सप्तदिवसो बालो निजघ्ने तारकासुरम्॥
(मत्स्यपुराण, अध्याय - १४६, श्लोक - ११)

किन्तु महिषासुर जाकर क्रौंच पर्वत में छिप गया जिसका भेदन पर्वत के साथ ही अपनी शक्ति से कुमार कार्तिकेय ने कर दिया, ऐसा वर्णन मत्स्यपुराण आदि में है।

हत्वा कुमारो रणमूर्ध्नि तारकं प्रगृह्य शक्तिं महता जवेन।
मयूरमारुह्य शिखण्डमण्डितं ययौ निहन्तुं महिषासुरस्य॥
××××××××××××××
एवं तवोक्तं महिषासुरस्य वधं त्रिनेत्रात्मजशक्तिभेदात्।
क्रौञ्चस्य मृत्युः शरणागतार्थं पापापहं पुण्यविवर्धनञ्च॥

जैसे महाभारत में दोनों ही महिषासुरों का वर्णन है, वैसे ही शिवपुराण की उमा संहिता में भी रम्भपुत्र और अनुह्लादपुत्र, दोनों महिषासुरों का वर्णन है -

अनुह्लादस्य सूर्यायां पुलोमा महिषस्तथा।
एवं
आसीद्रम्भासुरो नाम दैत्यवंशशिरोमणिः।
तस्माज्जातो महातेजा महिषो नाम दानवः॥

महाभारत में वर्णित कार्तिकेय-महिषासुरयुद्ध का वर्णन विष्णुधर्मोत्तरपुराण में भी प्राप्त होता है -

ततः प्रादुरभूत्तत्र देवदेवस्त्रिलोचनः॥
अभ्यषिञ्चत्कुमारं च ब्रह्मणा सहितः प्रभुः।
सेनापत्येन देवानां सोऽभिषिक्तस्तदा प्रभो॥
जघान महिषं नाम दानवं देवकण्टकम्।
महिषेन समान्वीर्ये जघानायुतशोऽपरान्॥
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण, खण्ड - ०१, अध्याय - २३३, श्लोक - १५-१७)

इस प्रकार पूरे प्रसङ्ग का विस्तार से अध्ययन करने के बाद निम्न वंशावली प्राप्त होती है -

१) महर्षि कश्यप की पत्नी दनु से उत्पन्न हुए रम्भ ने महिषी के द्वारा तीन कल्पों के जन्मों में शिवांश महिषासुर को जन्म दिया जिसका वध देवी माँ ने उग्रचण्डा, भद्रकाली और कात्यायनी दुर्गा के रूप में किया। साथ ही एक अन्य विष्णुकल्पोक्त महिषासुर का भी वध किया।

२) महर्षि कश्यप की पत्नी दिति से उत्पन्न हुए हिरण्यकशिपु के पुत्र अनुह्लाद ने सूर्या के गर्भ से दूसरे महिषासुर को जन्म दिया, जो दिति से ही उत्पन्न वज्राङ्ग के पुत्र तारकासुर का सहयोगी था एवं इन दोनों का वध कुमार कार्तिकेय ने किया।

विनय झा बहुत विषयों में उच्चस्तरीय विद्वान् अवश्य हैं किन्तु सभी बातों को चमड़े की आंखों से ही देखना और समझना चाहते हैं। उनके लिए सातों द्वीप, लोक भुवन, सब यहीं हैं। उनके लिए देव, गन्धर्व, नाग, किन्नर, असुर, यह सब कबीले थे। यह सिद्ध करता है कि वे शब्दपण्डित तो हैं किन्तु साधनाबली न होने से तत्वपण्डित नहीं हैं, फलतः पूरे रहस्य और पूर्वापरविचार के बोध के बिना ही, मात्र एक ही ग्रन्थ में वर्णित दो विषयों को देखकर भ्रमित हो, दुराग्रह करने लगते हैं। निग्रह सम्प्रदाय शाक्तों की ही एक आगमशाखा के अन्तर्गत स्थित है। स्कन्दपुराणोक्त स्कन्दस्तुति में निग्रहो निग्रहाणाञ्च नेता त्वं सुरनन्दन इतिवचनों से भी हमने भगवान् कार्तिकेय की आराधना की है। फलतः स्वपरम्परा में निग्रहकारिणी भगवती दुर्गा एवं निग्रहकर्ता भगवान् कार्तिकेय के द्वारा निहत महिषासुरद्वय का क्या रहस्य है, इसे हमने संक्षेप में प्रकाशित किया है ताकि लोगों के मन में व्याप्त विरोधाभासी भ्रम का कुछ शमन हो सके।

उपनिषद गङ्गा एक सीरियल आता था, उसमें अठारहवें एपिसोड में सम्भवतः बताया कि अत्रि स्मृति के 141वें श्लोक में जन्मना जायते शूद्रः वाला श्लोक है। मुझे ज्ञात नहीं था क्योंकि मैं उतना सीरियल आदि नहीं देखता। फिर बताया कि स्कन्दपुराण में भी यह श्लोक है, जबकि स्कन्दपुराण में -

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते॥
शापानुग्रहसामर्थ्यं तथा क्रोधः प्रसन्नता ॥ (स्कंद पु० नागर खण्ड अध्याय २३९ श्लोक ३१)

ऐसा वर्णन तो है किन्तु

ब्राह्मणो हि महद्भूतं जन्मना सह जायते ॥
लोके लोकेश्वराश्चापि सर्वे ब्राह्मणपूजकाः ॥
स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड, अध्याय १०६ श्लोक ३१)

को भी देखना चाहिए।

किन्तु जो स्कन्दपुराण या अत्रिस्मृति के नाम से श्लोक प्रचारित किया जा रहा है, वह मुझे अभी तक नहीं मिला। किसी को मिला हो तो

पूरे सन्दर्भ के साथ बताएं।

तो जब आज प्रद्युम्न यादव जी ने मुझसे "उपनिषद गङ्गा" के एपिसोड 18 के आधार पर श्लोक की अत्रिस्मृति से सम्बन्धित प्रामाणिकता पूछी। मेरे पास अत्रिस्मृति, विष्णुस्मृति, कात्यायनस्मृति आदि की दो दो स्मृतियां हैं, तो मैंने दोनों प्रकार की अत्रिस्मृति में देखा। एक मे तो कुछ नहीं मिला, एक में मिला किन्तु श्लोक 141 में नहीं, श्लोक 138 में। और जो मिला, उसे आप संलग्न चित्र में देखें, जन्मना जायते शूद्रः तो है ही नहीं उसमें, जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः कहा है। श्रीमद्भागवत में भी जन्मना ब्राह्मणो श्रेयान् सर्वेषां प्राणिनामिह कहा है स्वयं भगवान् ने। पुनश्च, उसमें जो श्लोक है, उसकी संगति स्वामी विद्यारण्य महाराज के वेदान्त पंचदशी की कल्याण पीयूष व्याख्या में निम्न श्लोक से भी बैठती है।

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयस्संस्कारैर्द्विज उच्यते ।
विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते॥

दिनाङ्क — मार्गशीर्ष शुक्ल द्वितीया (वि० सं० २०७९) X 25/11/2022
पत्राङ्क — ०८/२०२२

चित्रकूटस्थ तुलसीपीठाधीश्वर स्वामिश्री रामभद्राचार्य महोदय !

पूर्व में आपके द्वारा व्यासपीठ पर अनधिकृतरूप से आरूढ होकर उत्तरकाण्ड प्रसङ्ग, गोपीवस्त्रापहरण, लक्ष्मण-शेषावतार, वालिवध, स्यमन्तक-कोहिनूरप्रभृति अनेक सुसिद्ध विषयों पर पूर्व के टीकाकारों को 'अशिक्षित गधा' कहते हुए, परम्पराविरुद्ध जाकर उनकी अशास्त्रीय व्याख्या की गयी तथा मान्य पूर्वाचार्यों के एवं स्वयं श्रीमज्जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य भगवान् के शास्त्रसम्मत सिद्धान्तों के स्पष्ट विरुद्ध जाकर सम्प्रदायोक्त असन्दिग्ध शास्त्रों को प्रक्षिप्त बताने का जो कुकृत्य किया गया है, उसके विरुद्ध मैंने जब लेखन और वक्तव्य आरम्भ किया तो आपने मुझे मेरी "माता के दूध की चुनौती देकर " शास्त्रार्थ हेतु ललकारा था। आपने खुले मञ्च से कई बार मेरा नाम लेकर कहा कि "मेरे शिष्यों से शास्त्रार्थ करो"। पुनः आपने स्वयं भी शास्त्रार्थ करने की बात कही थी। आपने शास्त्रार्थ हेतु काशी में काशी विद्वत् परिषत् एवं काशी शास्त्रार्थ परिषत् को निर्णायक घोषित किया था। मैंने भी आपकी उस चुनौती को स्वीकार करके कहा था कि काशी विद्वत् परिषत् के अतिरिक्त भी अन्य मान्य विद्वज्जन निर्णायक मण्डल में रहें तथा वीडियो रिकॉर्डिंग के साथ एवं लिपिबद्ध संरक्षण के साथ भी मैं शास्त्रार्थ हेतु तैयार हूँ। आपके द्वारा दी गयी चुनौती को मैंने एक मास पूर्व ही स्वीकार किया था। स्वयं को सर्वज्ञकल्प समझकर आपने निरन्तर जो धर्मविरुद्ध शास्त्रवाक्यविहिंसन किया है, उससे सम्पूर्ण सनातन धर्मावलम्बी आहत हुए हैं। आपने शास्त्रार्थ की तिथि अभी तक निश्चित नहीं की है, उसकी सार्वजनिक घोषणा करें और काशी विद्वत् परिषत् आदि से भी उसकी सम्मति लेकर शास्त्रार्थ की उद्घोषणा कराएं। यदि एक मास के बाद भी आप शास्त्रार्थ की तिथि सार्वजनिक नहीं करते हैं तो उस स्थिति में मैं "आपके अशास्त्रीय प्रलापों का मेरे द्वारा दिए गए शताधिक शास्त्रवाक्यप्रमाणों से निग्रह हो गया है एवं मुझसे शास्त्रार्थ करने का साहस आपमें विद्यमान् नहीं," इस प्रकार आपके पराजय की सार्वजनिक उद्घोषणा कर दूंगा। वेदमन्त्रों को बदलने की बात कहकर, हिन्दुओं के वर्णाश्रम को मिटाने की बात कहकर तथा स्वयं को अपने मञ्च से महर्षि वाल्मीकि से भी बड़ा घोषित करवाने के बाद "भूतल पर मेरा निग्रह कोई नहीं कर सकता" तथा "बृहस्पति भी शास्त्रार्थ में नहीं पराजित कर सकते", आदि गर्वोक्तियों के दण्डस्वरूप शास्त्रीय मर्यादानुसार विहित दण्डप्रायश्चित्तादि के लिए भी आप स्वयं उत्तरदायी होंगे एवं आपको पुनः किसी भी प्रकार से सामनीति के द्वारा अपना पक्ष रखने का अवसर प्रदान नहीं किया जाएगा।

आपका शुभेच्छु
निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु

प्रति – स्वामिश्री रामभद्राचार्य, चित्रकूट एवं श्रीकाशीविद्वत्परिषत्, काशी

प्रश्नकर्ता आचार्य मण्डन मिश्र – आदरणीय ! भगवान् विष्णु के चार आयुधों में से पद्म का नाम क्या है? शंख – पांचजन्य, चक्र – सुदर्शन, गदा – कौमोदकी, किन्तु पद्म का नाम क्या है आदरणीय ? मार्गदर्शन करें।

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु – भगवान् विष्णु के हाथ में स्थित पद्म का नाम अस्त्रालोक्य है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण के खण्ड – ०३, अध्याय – ०८, श्लोक - ०७ में कहते हैं – करेऽस्य कमलं प्रोक्तं तथास्त्रालोक्यसंज्ञितम्। अतिरिक्त सूचना हेतु बता दूँ कि बलराम जी के हल का नाम ललाम एवं मूसल का नाम सानन्द/आनन्द है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में ही कहते हैं – हलो ललाम इत्युक्तः सानन्दं मुसलं स्मृतम्। विष्णुपञ्जर के अनुसार हल का नाम सौनन्द भी है।

गरुड़पुराण के विष्णुपञ्जरस्तोत्र में वर्णित पद्म का नाम अनुघोष्य है –
पाञ्चजन्यं महाशङ्खमनुघोष्यं च पङ्कजम्॥
(गरुडपुराण, आचारकाण्ड, अध्याय – १३, श्लोक – ०६)

इसी में मूसल का नाम शातन बताया गया है –
मुसलं शातनं गृह्य पुण्डरीकाक्ष रक्ष माम्॥
(गरुडपुराण, आचारकाण्ड, अध्याय – १३, श्लोक – ०४)

वामनपुराण के विष्णुपञ्जरस्तोत्र में वर्णित पद्म का नाम अन्तर्बोध्य है, मूसल का नाम शातन ही वर्णित है –

पाञ्चजन्यं महाशङ्खमन्तर्बोध्यं च पङ्कजम्।
(वामनपुराण, अध्याय – १७, श्लोक – ३१)

मुसलं शातनं गृह्य पुण्डरीकाक्ष रक्ष माम्।
(वामनपुराण, अध्याय – १७, श्लोक – २९)

पद्मिनी देवी की कृपा से मुझे श्रीसूक्त की जो दिव्यवृत्ति प्राप्त हुई थी, उसमें पद्मवर्णाधिकार के अन्तर्गत "पद्यमानं सरिद्धारावत्प्रवहज्जगन्मिनोति तस्मात् कालः पद्मः" इस परिभाषा के अनुसार नदी के प्रवाह के समान गतिशील जगत् को नष्ट करने से काल को पद्म कहते हैं। अतएव भगवान् विष्णु के हाथ में स्थित पद्म को संहारकारक कालरूपी अस्त्र ही समझना चाहिए, इस प्रकार उसका नाम अस्त्रालोक्य है।
